भुवन प्रदीप

लेखक
डॉ. श्रीभगवान तिवारी
सेवानिवृत्त रीडर एवं अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग,
भवन्स सोमानी कॉलेज, मुम्बई
एवं
स्नातकोत्तर लेक्चरर एवं शोध-निर्देशक, हिन्दी-विभाग,
मुम्बई विश्वविद्यालय, मुम्बई

प्रकाशक
अनन्त प्रकाशन
पी–41, कृष्ण विहार
दिल्ली–110086

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

ISBN : 978-81-904026-6-8

सर्वाधिकार : सुरक्षित

प्रकाशक : अनन्त प्रकाशन
पी-41, कृष्ण विहार
दिल्ली-110086

मूल्य : 550.00 रुपये

संस्करण : सन् 2014

आवरण : प्रवीण राज

मुद्रक : विशाल कौशिक प्रिंटर्स, दिल्ली-110093

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

समर्पण

स्वर्गीया पत्नी लीला तिवारी
की
मधुर स्मृति में

—श्रीभगवान तिवारी

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

भुवन प्रदीप

भुवन प्रदीप एक ऐतिहासिक उपन्यास है। इसमें सतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग एवं कलियुग के प्रथम चरण की स्मरणीय एवं मानवीय गरिमा की गाथाएँ समाहित हैं। यह उपन्यास अतीत के गौरव एवं तथागत ज्ञान का ही बोध नहीं कराता अपितु कलियुग के पापाचार एवं भ्रष्टाचार से मुक्त होने का मार्ग भी प्रशस्त करता है।

'भुवन प्रदीप' में भगवान बुद्ध के जीवन-काल के विभिन्न परिदृश्यों एवं राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों का यथार्थ एवं मार्मिक अभिव्यंजन हुआ है। समस्याओं एवं विसंगतियों को केवल रेखांकित ही नहीं किया गया है अपितु उनके निस्सरण का उपाय और मार्ग भी अप्रत्यक्ष रूप से दर्शाया गया है।

भगवान बुद्ध मध्यम मार्ग के आविष्कर्ता थे। भोग की पराकाष्ठा एवं कष्टदायक शारीरिक प्रतारणा के वह समर्थक नहीं थे। वे शरीर को पौष्टिक आहार देने के हिमायती थे। इस उपन्यास में अष्टांगिक मार्ग का विवेचन भी है और साधना के व्यावहारिक पक्ष का निदर्शन भी है। शील, समाधि और प्रज्ञा का सतत अभ्यास करते-करते साधक मुक्तावस्था तक पहुँच जाता है। मन उसके वश में हो जाता है। वह इन्द्रियों का दास नहीं रहता, इन्द्रियाँ स्वयं उसकी दासी हो जाती हैं।

'भुवन प्रदीप' सत्य का परिचय कराकर पाठक के मन में मैत्री, करुणा एवं मुदिता का उद्रेक कर अपरिग्रह की प्रेरणा देता है।

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

प्राक्कथन

'द्रोणाचार्य' की संरचना के बाद मेरे मन में भगवान बुद्ध के जीवन एवं लोकोपयोगी कार्यों पर उपन्यास लिखने का सद्विचार जागृत हुआ। बड़ा ही कल्याणकारी और शुभ विचार था। बड़ी खुशी हुई क्योंकि मैं विपश्यना का एक साधक हूँ।

सपना देखना तो आसान है पर सपने को साकार करने के लिए दृढ़ इच्छाशक्ति, लगन, निष्ठा एवं सतत प्रयास की आवश्यकता होती है। उपन्यास लिखने के लिए बुद्धकालीन परिस्थितियों एवं बुद्ध के बचपन से लेकर परिनिर्वाण काल तक घटनाओं की सम्यक् जानकारी प्राप्त करना आवश्यक था। क्या करता? इतिहासकारों, दार्शनिकों तथा लेखकों द्वारा रचित बुद्ध-विषयक ग्रंथों का एकाग्रचित होकर अध्ययन करता रहा। चितैकाग्रता के कारण अनेक घटनाएँ मानस-पटल पर अंकित हो गईं।

उपन्यास-लेखन के लिए केवल अच्छी स्मरणशक्ति ही नहीं अपितु उर्वर उद्भावना भी आवश्यक है। एक बार जो संकल्पना मेरे मन में बैठ जाती है, उसे पूरा करने के लिए मैं तुरन्त कार्यरत हो जाता हूँ।

कागज और कलम लेकर जब कुर्सी पर बैठा तो सर्वप्रथम मैंने विपश्यना-साधना के पुनर्प्रतिष्ठापक आचार्य सत्यनारायण गोयनका जी को मन ही मन सादर प्रणाम किया और भगवान बुद्ध को याद करता हुआ लेखन कार्य में जुट गया। कारयित्री प्रतिभा अपना कमाल दिखलाती रही।

प्रेरणा-स्रोत ठाकुर दयाशंकर सिंह के सौजन्य से विपश्यना-शिविरों में बराबर आता-जाता रहा पर विपश्यना-केन्द्रों से लौटने के बाद मैं तुरन्त लेखन में जुट जाता था। सफलता प्राप्ति के लिए प्रयास सातत्य आवश्यक है। लगातार दो वर्षों के कठिन परिश्रम के बाद 'भुवन प्रदीप' अस्तित्वान हो उठा।

राजकुमार सिद्धार्थ जब तक सामान्य जीवन बिताते रहे तब तक अंग्रेजी वाक्य-संरचना की तरह उन्हें एक वचन में बिम्बित किया गया है पर प्रव्रज्या ग्रहण करने के बाद वह समाज में सर्वोच्च हो गए। अतः प्रव्रजित सिद्धार्थ को आदर सूचक शब्द के साथ बहुवचन में शब्दांकित किया गया है।

अंत में मैं सम्यक संबुद्ध को नमस्कार करता हूँ–

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

"नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्माससम्बुद्धस्य ॥

भगवान बुद्ध को नमन करने के बाद मैं अतीत और भविष्य के साथ-साथ वर्तमान के बुद्धों की भी वन्दना करता हूँ–

ये च बुद्धा अतीता च, ये च बुद्धा अनागता।
पच्चुपन्ना च ये बुद्धा, अहं वन्दामि सब्बदा।

–श्रीभगवान तिवारी

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

संकल्प

सत्यान्वेषण की ललक
कितनी उत्कट होती है
औरों से नहीं
स्वयं से पूछो
सत्य के दीवाने को
अन्तिम सत्य की खोज के लिए
अपनी अनुपम रमणी, कोमल शिशु,
राजपाट, सिंहासन, वैभव
सब कुछ पलभर में त्यागना पड़ता है।

रोहिणी-तट

हिमालय की दक्षिणी उपत्यका उत्यन्त ही रम्य और आकर्षक रही है। इस मनोहर भू-भाग को प्रकृति ने अपना सारा वैभव लुटा दिया है। जहाँ देखो, वहाँ धरती धानी साड़ी पहनकर इठलाती नजर आती थी। आस-पास में प्राचीन-काल में घना जंगल था। जहाँ अशोक, शाल, देवदारु, शीशम, चीड़, पीपल, बरगद, पाकड़, गूलर, कैथ, बेल, नीम, महुआ, बेर आदि के पेड़ लहरा रहे थे। बेलें पेड़ों पर पसर कर वितान ताने हुई थीं। सारी पृथ्वी कास, कुश, सरपत और हरी-भरी घासों से आच्छादित थी।

वनस्थली के मध्य से सदानीरा रोहिणी नदी क्षिप्रगति से प्रवाहित हो रही थी। आज भी यह नदी विद्यमान है। उस समय इसका पानी इतना उज्ज्वल, पारदर्शी और पवित्र था कि उसमें कोई भी मनुष्य अपनी परिछाईं देख सकता था। नदी के तट पर पहुँचते ही मन मयूर नाचने लगता था। नदी के जल में रोहू, गिरई, मंगुर, पढ़िना आदि मछलियाँ कूदा करती थीं।

नदी के तट के पेड़ों पर काक, शुक, खंजन, मैना, चातक, कबूतर, पेंडुकी, पपीहा, गौरैया आदि पक्षियाँ चहचहाया करते थे। रात के समय चकवा-चकवी और टिटिहरी का क्रंदन सुनाई पड़ता था।

वनों के अन्दर बाघ, शेर, चीते, तेंदुए, हाथी, वन-सूअर, रीछ, हिरन,

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

नीलगाय, खरगोश आदि जानवर विचरण करते थे। अतः क्षत्रिय एवं शिकारी इनकी खोज में घात लगाए बैठे रहते थे।

तटवासी और सामाजिक व्यवस्था

रोहिणी के दोनों तट की मिट्टी अत्यन्त उर्वर एवं उपयोगी थी। जहाँ हिमालय पर देव, गंधर्व, किन्नर, नाग आदि जातियां निवास करती थीं वहाँ रोहिणी नदी के दोनों तटों पर मानव जाति का बोल-बाला था। वन-प्रदेश में कोल, भील, गोंड, निषाद, शबर आदि वनजातियाँ जीवन-यापन करती थीं।

नदी के एक तट पर कोलिय वंश का आधिपत्य था और दूसरे तट पर शाक्य-वंश का अधिकार था। इनका मुख्य व्यवसाय कृषि और पशु-पालन था। समाज को सुचारु रूप से संचालित करने के लिए श्रम को आधार मानकर वर्ण-व्यवस्था अस्तित्वान हो उठी थी। इसे वर्णाश्रम भी कहा जाता था। कर्म के अनुसार मानव जाति को चार वर्णों में विभक्त कर दिया गया था—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और दास।

ब्राह्मण का कार्य पठन-पाठन, धार्मिक अनुष्ठान और विवाह आदि था। क्षत्रिय का कार्य तंत्र-संचालन, देश-रक्षा और समाज को अनुशासित करना था। वैश्य व्यापार और कृषि करते थे। इन्हें लक्ष्मीपति भी कहा जाता था। चौथे वर्ण में दास आते थे। आर्य लोग जैसे स्वाति घाटी से सिंधु घाटी होते हुए पूर्व की ओर बढ़े, वैसे-वैसे यहाँ के मूल निवासियों को अपने अधिकार में करते गए। क्षत्रिय और वैश्य उनसे सेवा तो लेते थे पर पेटभर भोजन भी नहीं देते थे। वस्त्र का तो सवाल ही नहीं था। दास पण्य थे। उनका क्रय-विक्रय खूब होता था।

श्रम-विभाजन के आधार पर जो वर्ण-व्यवस्था बनाई गई थी, वह स्वस्थ विचारों पर अधिष्ठित थी। जिस प्रकार शरीर को सुचारु रूप से संचालित करने के लिए मुँह, बाँह, जाँघ और पैर का रहना आवश्यक होता है, उसी प्रकार समाज को समुन्नत बनाने के लिए ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों और दासों का सहयोग आवश्यक था। पर ऋग्वैदिक-काल की समाप्ति के साथ वर्ण-व्यवस्था संकीर्ण हो गई। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य अपने को द्विजात्य और दास को शूद्र कहने लगे। समाज में क्षत्रियों और ब्राह्मणों में प्रतिद्वंद्विता चलने लगी। राजशक्ति क्षत्रियों के हाथ में थी। अतः ब्राह्मणों को उनके सामने झुकना पड़ता था। समाज में क्षत्रियों के वर्चस्व को बढ़ाने के लिए ब्राह्मणों को यह उद्घोषणा करनी पड़ी कि, "राजा ईश्वर का प्रतिनिधि है। अतः राजा की आवाज ईश्वर की आवाज है।"

आर्थिक दृष्टि से ब्राह्मण उसी प्रकार विपन्न थे जिस प्रकार शूद्र। पर, ब्राह्मण

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

जहाँ अपने स्वाभिमान के ताक पर रखकर यजमानी करता था और दान लेता था वहाँ शूद्रों में स्वाभिमान था। वे पसीने की कमाई से ही अपनी जीविका चलाते थे।

समाज सदैव अर्थाश्रित रहा है। अतः जिसके पास धन रहता, शक्तिशाली समझा जाता था। बुद्धकाल पूर्व और बाद में भी जहाँ शासन का नियामक राजा और गणाध्यक्ष होता था वहीं लक्ष्मीपति का समाज में वर्चस्व था। ब्राह्मण राजा की और वैश्यों की फिरकी था। दासों की तरह ब्राह्मणों को भी सम्पन्न वर्ण नचाया करता था।

कपिलवस्तु

रोहिणी नदी के पावन तट पर जहाँ पर सांख्यदर्शन के प्रवर्तक कपिलमुनि का आश्रम था, वहीं पर एक ऐतिहासिक नगर बस गया और उनके नाम पर उस नगर को लोग कपिवस्तु नाम से पुकारने लगे।

रोहिणी हर साल जलप्लावन कर अपने तटवर्ती भागों में उर्वर मिट्टी बिछा देती थी। अतः तटवासी जमकर खेती करते थे। खेतों के मालिक अधिकतर शाक्यवंशी हुआ करते थे। जैसे-जैसे जनसंख्या में वृद्धि होती गई, वैसे-वैसे शाक्य जंगल काटकर खेत बनाने लगे। वर्ष में वे दो बार फसल तैयार करते थे। खरीफ की फसल वर्षा ऋतु के प्रारम्भ होते ही बोयी जाती थी और कार्तिक अगहन तक काट ली जाती थी। इस काल में किसान धान, गन्ना, साँवाँ, मक्का, बाजरा, कोदो, टाँगुन, गन्ना, पटसन, पटवा, मूँग, उड़द, अरहर आदि फसलें बोते थे।

शरत् का आगमन होते ही रबी की फसलों की बुआयी प्रारम्भ हो जाती थी। कार्तिक में रबी की फसल बोयी जाती थी और चैत-बैसाख तक काट ली जाती थी। इस समय गेहूँ, जौ, चना, मटर, आलू आदि की बुआयी होती। ये सभी अन्न चैत-बैशाख में पककर तैयार हो जाते थे।

रोहिणी नदी के तटवर्ती खेतों के स्वामी अधिकांशतः शाक्य थे। ऐतिहासिक दृष्टि से उन्हें सूर्यवंशी ठाकुर माना जाता था। उनके पूर्वज गौतम ऋषि की संतान थे। अतः उन्हें गौतम गोत्रीय माना जाता था। वे बहुत वीर और बहादुर थे।

जयसेन

शाक्य लोग प्रजातंत्र के पक्षधर थे। अतः वे मिल-जुलकर गण-तंत्रात्मक शासन व्यवस्था चलाते थे। गण राज्य में जो व्यक्ति वीर, दूरदर्शी, बुद्धिमान तथा सहृदय होता था, जनता उसे अपना राजा चुनती थी।

शाक्यों में एक बहुत प्रतापी एवं वीर पुरुष हुआ। उसका नाम था जयसेन।

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

उसकी अपूर्व नेतृत्व क्षमता को देखकर शाक्यों ने उसे कपिलवस्तु का राजा बना दिया। वह केवल शौर्यवान एवं निपुण ही नहीं था अपितु वाग्मी भी था।

जयसेन ने कपिलवस्तु को अपनी राजधानी घोषित किया। उसके सद्प्रयास और कूटनीतिक चाल से अल्पकाल में ही कपिलवस्तु शिक्षा, व्यापार और संस्कृति का प्रमुख केन्द्र बन गया। व्यापारी मैदानी भागों तथा विदेशी सामग्री को हिमालय पर ले जाया करते थे और वहाँ से बहुमूल्य जड़ी-बूटियाँ मैदानी भागों में ले आकर बेचा करते थे। अतः जयसेन की सूझ-बूझ और व्यापारियों की दूरदर्शिता से कपिलवस्तु तराई क्षेत्र का एक सम्पन्न नगर बन गया। व्यापारी देश-विदेश की रमणियों, दासों तथा दासियाँ को यहाँ ले आकर सामन्तों, राजाओं एवं श्रेष्ठियों के हाथों बेचा करते थे।

कपिलवस्तु के आस-पास शाक्य-गण-राज्य थे। अतः उनके ऊपर किसी बड़े राजा का आधिपत्य नहीं था। उनके द्वारा अधिकृत क्षेत्र को जनपद न कहकर गण-राज्य कहा जाता था। शाक्य जन-तंत्र में अनेक छोटे-छोटे राज-परिवार थे। कबीले थे कबीले। शाक्य लोग अपने-अपने क्षेत्र के मुखिया (राजा) को श्रद्धा और सम्मान की दृष्टि से देखते थे।

जयसेन के शौर्य और सम्पन्नता को देखकर रोहिणी नदी के दूसरे तट के गणाध्यक्ष ने अपनी पुत्री सुलक्षणी का उनके साथ विवाह करवा दिया। सम्पन्नता तो थी ही। जयसेन बड़े ठाट-बाट से अपना वैवाहिक जीवन बिताने लगे। पति-पत्नी के संसर्ग से नव माह बाद सुलक्षणी ने एक पुत्ररत्न को जन्म दिया। जयसेन राजा तो था ही। बड़े धूमधाम से जन्मोत्सव मनाया गया। राजा ने गण के सभी सदस्यों को प्रीतिभोज भी दिया।

नामकरण

बरही के दिन जब जन्मोत्सव सम्पन्न हो गया तो जयसेन ने अपने पुरोहित और कर्मनिष्ठ ब्राह्मणों को अपने पास बुलाया और बोला, "भूदेवो! मैं आप लोगों से कुछ निवेदन करना चाहता हूँ। आज्ञा हो तो, बोलूँ।"

"भूधन! आप तो हमारे ही नहीं, सारी प्रजा के ईश्वर हैं। आपका जो आदेश होगा, पूरा किया जायेगा।"

"ब्राह्मणो! मेरे पुत्र का नामकरण करना है।"

"राजन्। रानी को सुपुत्र के साथ बुलवाइए।"

"ठीक है।" जयसेन ने दासी को रनिवास में भेजकर शिशु सहित रानी को बुलावाया।

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

रानी ने राज-कक्ष में प्रवेश कर अपने शिशु को पुरोहित के करकमलों पर रख दिया। पुरोहित ने शिशु को गौर से देखा। शिशु का दाढ़ सिंह-सा था। पुरोहित बहुत प्रसन्न हुआ। उसने रानी से पूछा, "महारानी! शिशु का जन्म किस मुहूर्त में हुआ?"

"पुरोहित जी! शिशु का जन्म कार्तिक की पूनम की ब्राह्म मुहूर्त में हुआ है।"

"अहा! आपका पुत्र महाप्रतापी होगा। जरा इसके दाढ़ पर गौर कीजिए।"

"पुरोहित जी! इसका दाढ़ तो सिंह के समान है।"

"तो प्रभु का नाम लेकर आज से आप लोग होनहार शिशु को 'सिंहहनु' के नाम से पुकारें।"

सभी पंडित बोल उठे, "जयसेन महाराज की जय। सुलक्षणी देवी की जय। गौतम गोत्र के भावी राजकुमार सिंहहनु की जय, शाक्य गण-राज्य की जय, जम्बूद्वीप की जय।"

गुरुकुल

कपिलवस्तु से कुछ दूर एक रम्य वनस्थली थी। वहाँ पर एक बहुत बड़ा शिवाला था। यहीं पर त्रिकालदर्शी, वेदविज्ञ, आचार्य-संहिता तथा आध्यात्मवादी महर्षि देवल का गुरुकुल था। कुछ लोग उन्हें असित ऋषि कहते थे। बड़ा ही ख्याति प्राप्त गुरुकुल था। इस गुरुकुल में दास-पुत्रों को छोड़कर बाकी सभी वर्णो के पुत्रों को, शस्त्रास्त्र, राजनीति, ज्योतिष, व्याकरण, औषध-विज्ञान शास्त्र एवं औषध-निर्माणशास्त्र की शिक्षा दी जाती थी। धनाढ्य और निर्धन सभी के बच्चे साथ-साथ अध्ययन करते, भोजन करते, खेलते और रहते थे। किसी प्रकार का भेदभाव नहीं था। शिक्षा निःशुल्क थी।

सिंहहनु की शिक्षा

जब सिंहहनु पाँच वर्ष का हुआ तो जयसेन ने देवल ऋषि को उसकी शिक्षा का उत्तरदायित्व सौंप दिया। अठारह वर्ष की आयु में सिंहहनु शस्त्र-शास्त्र विशारद होकर कपिलवस्तु वापस आ गया। गुरुकुल त्याग के समय देवल ऋषि ने उसे खूब आशीर्वाद दिया। आशीष वचन देते हुए वह बोले, "राजकुमार सिंहहनु! तुम सूर्यवंश का पताका ऊँचा अवश्य करोगे।"

सिंहहनु का विवाह और परिवार

शिक्षा प्राप्त करके जब सिंहहनु घर वापस आया तब उसकी उम्र अठारह साल की हो गई थी। यह समय उसके गृहस्थाश्रम में प्रवेश का समय था। जयसेन अपने

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

गण का मुखिया था। धन-धान्य से सम्पन्न था। उसके पास मित्रों और पंडितों की कमी नहीं थी। अपने पुत्र की शादी दूसरे गण-राज्य में करना चाहता था। उस समय उत्तर भारत में गण-राज्य स्वतंत्र थे और उन पर किसी जनपदीय राजा का अधिकार न था। वे स्वयं अपने गण का एक मुखिया चुनते थे और शासन-सूत्र उसी के हाथ में होता था। कपिलवस्तु पर शाक्य लोगों का प्रभुत्व था तो मल्ल लोगों का पावा और कुशीनारा पर। लिच्छवि वैशाली के थे और विदेह मिथिला के, कोलिय रामगाम के थे और बुलि अल्लकल्प के। कालाम का सम्बन्ध केसपूत, मौर्यों का सम्बन्ध कलिंग और पिप्पल वन से तथा भग्ग लोगों का सम्बन्ध सिसुमागिरि से था।

जयसेन के पुरोहित लड़की की खोज के लिए गणराज्यों में घूमने लगे। संयोग की बात है, वह रामगाम पहुँच गए। जब वह कोलिय-गण के गणाध्यक्ष के पास पहुँचे तो वह बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने अपनी मनोहर कन्या कच्चाना से जल और मीठा मँगवाकर पंडित जी को जलपान करवाया। कच्चाना की उम्र उस समय पन्द्रह साल की थी। देखते ही पंडित जी लट्टू हो गये। गणाध्यक्ष से बोले, "राजन्! आपकी सुपुत्री विवाह योग्य हो गई है। जल्दी से इसका हाथ पीला करवाइये।"

"पंडित जी! आप दस घर के भौंरे हैं। कोई लड़का बताइए।"

पुरोहित जी पलभर सिर पर हाथ रखकर सोचते रहे और फिर बोल उठे, "रामगाम के शिरोमणि! है एक लड़का।"

"पंडित जी! परिचय तो दीजिये।"

"कोलियराज! कपिलवस्तु के प्रधान जयसेन का लड़का है। बड़ा होनहार है। नाम है सिंहहनु।"

"उम्र क्या है?"

"अठारह साल! अभी गुरुकुल की शिक्षा समाप्त कर घर आया है।"

"पंडितजी! क्या आप जयसेन और मेरे सम्बन्ध में अगुआई कर सकते हैं?"

"बेशक! आपकी लड़की का नाम कच्चाना है और जयसेन के सुपुत्र का नाम सिंहहनु है। जरा गणना करके देखता हूँ कि दोनों का दाम्पत्य-जीवन कैसा रहेगा।"

"पंडित जी! हम रघुवंशी क्षत्रिय हैं। आप ब्राह्मण हैं। अच्छी तरह विचार कीजिए।"

थोड़ी देर पंडित आँख बन्द कर ध्यानमग्न रहे। पाँच मिनट बाद आँख खोले। चेहरा दमक उठा। बोले, "राजन्! अहो रूपाः, अहो गुणाः। दाम्पत्य-ज़ीवन

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

सुखी रहेगा और सिंहहनु और कच्चाना के संसर्ग से पाँच संतानें पैदा होंगी। तीन पुत्र और दो पुत्रियाँ।"

"पंडित जी! आप तो भूदेव हैं। देवलकुल में पैदा हुए हैं। आपकी वाणी शत-प्रतिशत सही होगी। एक प्रश्न और पूछना है।"

"फरमाइए?"

"पंडित जी! इस समय गणराज्यों के इर्द-गिर्द सोलह जनपद हैं जिन पर राजाओं का अधिकार हैं। वे गणराज्यों को छिन्न-भिन्न कर अपने राज्य का विवर्धन करना चाहते हैं। हमें उनसे बड़ा भय है।"

"कौन से जनपदीय राज्य हैं?"

"अंग, मगध, काशी, कोसल, वज्जि (बूज्जि), मल्ल, चेदि, वत्स, कुरु, पंचाल, मत्स्य, सौरसेन, अष्मक, अवन्ति, गन्धार, कम्बोज। क्या सिंहहनु उनसे गणराज्यों की रक्षा कर सकेगा?"

"हाँ। पर सभी गणराज्यों को संगठित होना पड़ेगा। संघे शक्ति कलियुगे।" मिल-जुलकर नेतृत्व की बागडोर सिंहहनु को देनी पड़ेगी।

"ठीक है। जयसेन का संबंध कपिवस्तु के शाक्यों के राज-परिवार से है और वह शाक्यों का मुखिया है। उसे राजा कहा जाता है। यह सम्बन्ध मुझे स्वीकार है।"

"राजन्! तो मेरे साथ चलिये। विवाह का शुभ-मुहूर्त दोनों राजाओं के सामने निकाल लिया जाये।"

"पंडित जी! आप ठीक कहते हैं। चट मँगनी, पट विवाह।"

"चलिए।"

दोनों जब कपिलवस्तु पहुँच तो जयसेन बहुत प्रसन्न हो गया। विवाह की लगन तय हो गई। कच्चाना और सिंहहनु परिणय-सूत्र में बँध गये। कच्चाना माता-पिता से अपार धन लेकर ससुराल आई। दोनों का दाम्पत्य-जीवन सुखपूर्वक बीतने लगा।

एक दिन स्नान, पूजा, अर्चना करने के बाद कच्चाना अपने पतिदेव से बोली, "प्रियवर! गुण से रूप की, सदाचार से कुल की, सफलता से विद्या की और भोग से धन की शोभा होती है।"

"और पत्नी से पति की।"

सिंहहनु की बातों से कच्चाना को गुदगुदी उत्पन्न हुई और वह मुस्कराने लगी। सिंहहनु को अपारं खुशी हुई। वह नारी प्रशंसा पर उतर आया।

कच्चाना का गुलाब-सा कोमल हाथ पकड़कर बोला, "प्रिये! जिस समय स्त्री

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

का हृदय शुचिता एवं मैत्री का आगार बन जाता है, उस समय उससे बढ़कर और अधिक कोमल वस्तु संसार में नहीं रह जाती है।"

कच्चाना बोली, "प्रियवर! आप तो मानवीय गुणों के भण्डार हैं। जानते हैं, पुरुष किसे कहा जाता है?"

"हाँ, जो सद्गुणों से पूर्ण है, जो अपनी इन्द्रियों पर संयम रखता है। सुख-दुख को एक समान समझता है। मुक्त हृदय से दान करता है वही पुरुष।"

"अब तुम बताओ नारी कौन हो?"

"प्रियवर! नारी सृष्टि की अधिष्ठात्री है। वह सबको प्रिय है और सबकी जननी है। उसे जो कुछ करना है, वह पुत्री, बहन, पत्नी और माता के पवित्र उत्तरदायित्व के अन्तर्गत आ जाता है।"

पत्नी की बात सुनकर सिंहहनु बोला, "प्रिये! तुम्हारी गणना तो पंचकन्याओं में होनी चाहिए।"

"प्रियवर! पंचकन्याओं के नाम क्या हैं?"

"नहीं बताऊँगा।"

औत्सुक्य के कारण वह सिंहहनु का पैर दबाने लगी और उसकी आँखों पर अपनी आँखें गड़ाए रही। सिंहहनु प्रसन्न हो गया और बोला, "प्रिये! अहल्या, द्रौपदी, कुंती, तारा और मंदोदरी—यह पाँच नारियाँ क्वारी कन्या के समान पवित्र मानी जाती हैं।"

"प्रियवर! क्या द्रौपदी सिद्धि प्राप्त थी?"

"हाँ! तभी तो उसके श्राप से कौरव-कुल का विनाश हुआ?"

पति के सान्निध्य में आमोद-प्रमोद से रहते-रहते कच्चाना गर्भवती हो गई। राजरानी तो थी ही। तरह-तरह के फल और पौष्टिक आहार उसे मिलने लगे। एक दिन देवलोक से एक सिद्ध महापुरुष आया। कच्चाना ने श्रद्धा, प्रेम, सम्मान एवं निश्छल भाव से उनकी आव-भगत की। देवपुरुष का हृदय गद्गद हो गया। बोले, "कच्चान! तुम्हें पति सिंहहनु के साथ मैं कुछ वरदान देना चाहता हूँ।"

पति-पत्नी हाथ-मुँह धोकर उनके सामने बैठ गए। देवपुरुष पलभर ध्यान लगाए बैठे रहे और पुनः आँख खोले और बोले, "राजन्! कच्चाना की कोख से लड़का पैदा होगा और एक नया की कीर्तिमान स्थापित करेगा।"

"प्रभुवर! मेरा यह छोटा-सा राज्य देश के उत्तर-पूर्व के कोने में स्थित है। यह स्वतंत्र है। पर राजा महाकोसल की निगाह इस पर लगी हुई है। क्या मेरा भावीपुत्र उनसे कपिलवस्तु का राज्य बचा सकेगा।"

"कोसल नरेश कपिलवस्तु को अपने शासन-क्षेत्र में शामिल तो अवश्य कर

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

लेंगे पर वह आपके होने वाले पुत्र से मित्रवत व्यवहार करेंगे।"

नौ माह बाद कच्चाना ने एक मनोहर पुत्र को जन्म दिया।

नवजात पुत्र का नामकरण-संस्कार

बरही के दिन सिंहहनु ने सभी गणराज्यों के राजाओं को प्रीतिभोज पर बुलाया। कोसल नरेश भी इस समारोह में आए। संगीत, नृत्य और वेदोच्चारण के साथ यह समारोह संपन्न हुआ। प्रीतिभोज के बाद सभी गणाध्यक्ष और कोसल नरेश आसनासीन हुए। सिंहहनु अपने गोद में शिशु को लेकर बारी-बारी से सभी राजाओं और महाराज कोसल को दिखलाया। सभी अपनी-अपनी गोद में शिशु को लेते गए और चूमचामकर आशीर्वाद देते गए।

इसके बाद पंडितों की सभा हुई और उन लोगों ने ग्रहों और नक्षत्रों पर विचार कर सिंहहनु से कहा, "राजन्! आप अपने पुत्र का नाम शुद्धोधन रखें।"

सिंहहनु ने महाराजा कोसल से पूछा, "महाराज! आपका क्या विचार है?"

"सिंहहनु! पंडित त्रिकालदर्शी होते हैं। उनका निर्णय ईश्वर का निर्णय है। शिशु को आज से शुद्धोधन कहकर पुकारा जाएगा।"

नामकरण के बाद महाराज कोसल नरेश की अनुमति लेकर समारोह विसर्जित कर दिया गया। सभी लोग कोसल नरेश को सिर झुकाकर अपने-अपने राज्य वापस चले गए।

सिंहहनु की अन्य संतानें

सिंहहनु की पत्नी अत्यन्त ही स्वस्थ, बलिष्ठ एवं रूपवती थीं। प्रथम पुत्र की उत्पत्ति के बाद वह पति का संसर्ग सुख प्राप्त करती रहीं। अतः उसकी कोख से क्रमशः धौतोदन, शुक्लोदन, शाक्योदन तथा अमितोदन का जन्म हुआ। इतना ही नहीं, अमिता एवं प्रमिता नाम की दो कन्याओं ने भी कच्चाना की कोख को पवित्र किया।

शुद्धोधन का बचपन

सिंहहनु और कच्चाना दोनों अपनी संतानों पर विशेष ध्यान देते थे। संस्कारों की नींव बचपन में पड़ती है। अतः दोनों अपने पुत्रों और पुत्रियों को सही दिशा की ओर मोड़ने का प्रयास करते थे। बच्चे संस्कृत और पाली का सही उच्चारण कर सकें, इस हेतु सिंहहनु ने दोनों भाषाओं को पढ़ाने के लिए दो प्रतिष्ठित अध्यापकों की नियुक्ति कर दी थी।

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

बच्चों को व्यायाम कराने तथा कुश्ती सिखाने के लिए अलग से शिक्षक नियुक्त कर दिए गए थे। जब शुद्धोधन छः वर्ष के हुए तो सिंहहनु ने उन्हें शास्त्रास्त्र और राजनीति का ज्ञान कराने के लिए गुरुकुल में भेजने का विचार किया।

असित ऋषि का आश्रम

असित ऋषि ज्योतिष, व्याकरण, दर्शन, वेदों, उपनिषदों, अश्वारोहण, मल्लविद्या एवं संगीत-विद्या में माहिर थे। इन विद्याओं को छात्रों को सिखाने में वह विशेष रुचि रखते थे। उनका आश्रम एक झील के किनारे बना हुआ था। आश्रम के आस-पास की मिट्टी अत्यन्त ही उर्वर थी। अतः वे कुछ जमीन में छात्रों के भरण-पोषण के लिए खेती करवाते थे। खेतों में जौ, गेहूँ, धान, चना, मटर, अरहर, ईंख, आलू आदि फसलें उगाई जाती थीं।

झील के आस-पास अनेक प्रकार की जड़ी-बूटियाँ स्वतः उत्पन्न होती थीं। ऋषिवर उनसे रोगियों का निदान करते थे। संग्रह से उन्हें घृणा थी। उनके मन में मानव-सेवा की उत्कट इच्छा थी। अतः चाहे राजा हो या रंक, वह किसी से एक पैसा शुल्क ग्रहण नहीं करते थे।

उनके पास एक बहुत बड़ा उद्यान था जिसमें ताड़, शाल, अशोक, दाड़िम, खजूर, कचनार, आँवला, हर्रा, बहेड़ा, नींबू, अमरूद, सेब, शहतूत, नारंगी, नाशपाती, अन्नास, जामुन, करौंदा, सहिजन, नीम, महुआ, आम, इमली, कटहल, बड़हल आदि के पेड़ राहगीरों तथा छात्रों को अपनी छटा, हरीतिमा और फलों की महिमा दिखलाकर मोह लेते थे।

ऋषिवर के आश्रम के सन्निकट ही एक विशाल चारागाह था जिसमें सदैव हरी-भरी घासें रहती थीं। चूँकि उनका युग विशेष रूप से कृषि और पशुपालन का युग था। अतः वह अपने शिष्यों को इन दोनों व्यवसायों में दक्ष बनाने का हर संभव प्रयास करते थे। पशुओं की देखभाल और शुश्रूषा वे स्वयं अपने शिष्यों के सांथ करते थे। पशुशाला में अधिकतर गायें, भैंसें और बकरियाँ थीं। हाँ, क्षत्रियों के पुत्रों को घुड़सवारी भी सिखलानी पड़ती थी। अतः उन्होंने घोड़ों के रहने के लिए एक अश्वशाला का प्रबन्ध भी कर रखा था। घोड़ों की देखरेख अधिकतर दास किया करते थे। ऋषिवर उन्हें श्रद्धां और सम्मान की दृष्टि से देखते थे। उनमें इंसानियत कूट-कूटकर भरी हुई थी। अतः वह गरीब-अमीर तथा ब्राह्मण और दलित को एक समान देखते थे।

असित के आश्रम के प्रांगण में एक विशाल शिवालय था जिसमें उन्होंने

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

शिवलिंग की प्रतिष्ठा की थी। शिवरात्रि, अधिकभास तथा सोमवार को वहाँ नर-नारियों, युवक-युवतियों की अपार भीड़ एकत्र हुआ करती थी। शिवलिंग पर जो उपहार चढ़ता था, उसे भी वह विद्यार्थियों की भलाई के लिए खर्च कर देते थे।

शुद्धोधन की शिक्षा

धीरे-धीरे शुद्धोधन सात वर्ष के हो गए। घर पर उनकी प्रारम्भिक शिक्षा हुई थी तो अवश्य पर धनुर्विद्या, राजनीति, रणनीति और समाजशास्त्र आदि का सम्यक ज्ञान बिना गुरुकुल में गए संभव नहीं था। इन सबके ज्ञान के बिना विशाल गणराज्य का नेतृत्व, शासन और आन्तरिक तथा बाहरी शत्रुओं से अपने राज्य की रक्षा करना कठिन हो जाता है। अतः सिंहहनु ने कच्चाना से इस सन्दर्भ में विचार-विमर्श किया। वह पति के प्रस्ताव से गद्‌गद हो गई।

सिंहहनु के हाथ पर हाथ रखकर बोली, "राजन्! शास्त्र तथा शस्त्रास्त्र की शिक्षा के सन्दर्भ असित ऋषि सभी प्रजातंत्रात्मक प्रदेशों में चर्चा के विषय बने हुए हैं। अतः मेरी तो यही नेक सलाह है कि सभी राजकुमारों को उन्हीं की छत्रच्छाया में भेज दिया जाए।"

"प्रिये! ऋषिवर केवल वेदों, सांख्य दर्शन, योग, वेदान्त, मीमांसा, न्याय, वैशेषिक (छः शास्त्र) के ज्ञाता नहीं अपितु त्रिकालदर्शी भी हैं।"

"प्राणेश्वर! यह संसार वास्तव में एक महान ग्रंथ है जो इस पढ़ नहीं सकता है, उसके लिये व्यर्थ है।"

"प्रिये! तुम्हारी जैसी गृहस्वामिनी पाकर मैं धन्य हो गया हूँ। सचमुच तुम प्रत्युत्पन्न नारी हो। अच्छा यह बताओ कि ऋषिवर के यहाँ किसी को भेजकर राजमहल में बुलवा लिया जाये या मैं स्वयं बच्चों को लेकर उनके आश्रम में जाऊँ?"

"स्वामी! आप कितने अहमक हैं। आपके अन्दर शासन की बू कुंडलिनी मारकर बैठी हुई है। संसार में गुरु ईश्वर से भी बड़ा होता है। आध्यात्मिक जगत में वह भक्त को परमात्मा का साक्षात्कार करवाता है और लौकिक जगत में अपने शिष्य को ज्ञान और शील से मंडित करता है। असित ऋषि तो ऐसे ऋषि हैं जो प्रत्येक छात्र को निःशुल्क शिक्षा प्रदान करते हैं। अतः विनम्र बनो। बच्चों को साथ लेकर असित-आश्रम में स्वयं जाओ और कुलपति के चरणों में समर्पित होकर बच्चों का सारा उत्तरदायित्व उन्हें सौंप दो।"

"प्रिये! तुम्हारा सुझाव बिल्कुल सच है। नम्रता और मधुर भाषण दोनों ही मनुष्य के आभूषण हैं।"

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

"प्राणेश्वर! संतान को पढ़ाना माता-पिता के जीवन का सबसे बड़ा पुनीत कार्य है। विद्या धर्म का रक्षक है। क्योंकि इसके द्वारा ही मनुष्य को धर्म और अधर्म का ज्ञान होता है।"

"ठीक है। सारथी को बुलवाता हूँ। बच्चों को शीघ्र तैयार कर दो।"

सारथी आज्ञा पाते ही राज-कक्ष के द्वार पर आ गया। पुत्रों को रथ में बैठाकर सिंहहनु गुरुकुल की ओर चल पड़े। थोड़ी देर में रथ आश्रम के सिंहद्वार पर पहुँच गया। सारथी को वहीं रोककर सिंहहनु बच्चों के साथ असित ऋषि के कार्यालय में पहुँच गए। ऋषिवर आसन छोड़कर 'कपिलवस्तु के शाक्यराज की जय हो, जय हो, जय हो' कहते हुए सिंहहनु को खूब भेंटे। जब वह शाक्यराज से अलग हुए तो बच्चों ने उन्हें साष्टाँग प्रणाम किया।

पिता और पुत्रों को आसन देकर ऋषिवर बोल उठे, "राजन्! बच्चों को हमारे गुरुकुल में प्रवेश दिलवाना चाहते हो क्या?"

"गुरुवर! इसी हेतु तो यहाँ आया हूँ।"

"ठीक है। जल-जलपान कीजिए। आज से आपके पुत्रों के पठन-पाठन का सारा उत्तरदायित्व मैं वहन करूँगा।"

"गुरुवर! बच्चों के रहने और खाने-पीने की क्या व्यवस्था करूँ?"

"राजन्! यह गुरुकुल है। यहाँ शुल्क लेना वर्ज्य है। सभी छात्र सेवा और परिश्रम द्वारा स्वयं अर्जन-सर्जन कर लेते हैं।"

"धन्यवाद! अब घर जाने की आज्ञा दें?"

"तथास्तु।"

सिंहहनु के चले जाने के बाद असित ऋषि ने अन्य छात्रों को अपने पास बुलवाया और सिद्धोधन तथा उनके भाइयों से परिचय करवाया। पहले भर्ती हुए छात्रों ने नये छात्रों का प्रेमपूर्वक स्वागत किया। शुद्धोधन के रूप-रंग, बोलचाल, और अनुपम व्यक्तित्व से सभी अत्यधिक प्रभावित हुए।

दूसरे दिन पढ़ाई का कार्य प्रारम्भ होने के पहले ऋषिवर ने यह प्रार्थना करवाई—

॥ हरि ॐ तत्सत् परमात्मने नमः ॥

देवं नंदनंदनं वंदे

	बोधवचनानि	बोधदायक वचन
1.	सत्यं वद।	सत्य बोलो।
2.	धर्मं चर।	धर्म का आचरण करो।
3.	मातृदेवो भव।	माता को देव मानो।

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

4.	पितृदेवो भव।	पिता को देव मानो।
5.	आचार्य देवो भव।	आचार्य को देव मानो।
6.	अतिथि देवो भव।	अतिथि को देव मानो।
7.	स्वाध्यान्मा प्रमदः।	स्वाध्याय में प्रमाद मत करो।
8.	श्रद्धया देयम्।	श्रद्धा से दान दो।

देव मानो से तात्पर्य यह है कि आज्ञापालन करो।

ऋषिवर मानवतावादी थे। वे वसुधैव कुटुम्कम् के समर्थक थे। अतः बचपन से ही अपने छात्रों को मानव-कल्याण और विश्व-शान्ति की प्रतिष्ठा के लिए यह प्रार्थना करवाते थे–

सर्वेऽत्र सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित दुःखमाप्नुयात्॥

अर्थात् संसार के सभी लोग सुखी हों, सभी प्राणी दुःख-व्याधि से मुक्त रहें। सभी लोगों का कल्याण हो। किसी को कोई दुःख न हो।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

प्रार्थना के बाद प्रतिदिन पठन-पाठन का कार्य प्रारम्भ होता था। शुद्धोधन ब्राह्म मुहूर्त में उठ जाता था और नहा-धोकर संध्योपासना के बाद शिव मन्दिर में वेलपत्र और जल चढ़ाता था। पूजा-पाठ करके वह प्रतिदिन गुरुवर का चरणरज लेता था।

शुद्धोधन मनोहर, मृदुभाषी, प्रतिभाशाली, शीलवान, विनम्र, धर्मपरायण, सत्यवादी और आज्ञाकारी था। अतः असित ऋषि उसे बहुत अधिक प्यार करते थे। शुद्धोधन संकल्पशील, निष्ठावान, एकाग्रचित्त और लगनशील था। अतः लक्ष्य-वेधन की जो कला गुरुवर सिखला देते थे, एक बार में ही बाण-वेध कर अपना लक्ष्य पूरा कर लेता था। मल्लयुद्ध में उसका कोई सामना नहीं करता था। वेद-पाठ और कर्मकाण्ड के प्रति उसके मन में अपार श्रद्धा हो गई। शस्त्रास्त्र तथा शास्त्र के सम्यक् अध्ययन के बाद वह राजनीति तथा मानवधर्म सीखने का योग्य पात्र बन गया।

एक दिन जब ऋषिवर संध्योपासना के बाद अपनी पुष्पवाटिका में सूर्यस्नान कर रहे थे तो उन्हें प्रसन्नमुद्रा में देखकर वह उनके पास पहुँचा और उन्हें प्रणाम कर सामने बैठ गया। थोड़ी देर तक ऋषिवर उसके भव्य ललाट को देखते और पढ़ते रहे। फिर मुस्कराते हुए बोले, "शुद्धोधन! तुम तो सभी शास्त्रों, धनुर्विद्या तथा मल्लक्रीड़ा में निष्णात हो गए। अब तुम्हारा अध्ययन-काल समाप्त हो गया। अब घर जाकर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करो।"

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

"पर? गुरुवर!"

"पर क्या? साफ-साफ कहो?"

"गुरुवर! अब कुछ जीवन की सफलता के लिए व्यवहार की बातें समझाइए।"

"शुद्धोधन! समय का सदैव ध्यान रखना चाहिए। आज का काम कल पर नहीं छोड़ना चाहिए। सही समय पर सही काम ही सफलता की कसौटी है।"

"धन्यवाद गुरुवर। गुरुवर संसार में सबसे बड़ी वस्तु क्या है?"

"प्रियवर! संतोष। मन में संतोष होना स्वर्ग की प्राप्ति से बढ़कर है। इस संसार में संतोष से बड़ा और दूसरा सुख नहीं है। यदि मनुष्य के मन में संतोष की भलीभाँति प्रतिष्ठा हो जाए तो उसे परमसत्य की अनुभूति होने में देर नहीं लगती।"

"गुरुवर! आपका कहना बिल्कुल सही है। प्रकृति-वैभव को निहारकर मैं देखता हूँ कि प्रकृति सदैव मुस्कराती रहती है। पल-पल उसमें परिवर्तन होता है पर मनुष्य रोता रहता है। वही उदास भी है और हताश भी है। क्योंकि उसकी कामना पूरी नहीं होती। यह कामना ही उसे सुखी नहीं रहने देती। अतः कामना को विरमित करके संतोष करना चाहिए।"

"प्रियवर! संतुष्ट मनवाले के लिए सभी दिशाएँ सुखमयी बन जाती हैं।"

"मुक्ति कैसे मिलती है?"

"कामनाओं के त्याग से, लोभ के विसर्जन से। पर, मुक्ति अकेले में नहीं मिलती, मिलती तो सबके साथ ही। अतः प्रत्येक मनुष्य को केवल अपनी ही उन्नति से संतुष्ट नहीं रहना चाहिए बल्कि सबकी उन्नति में ही अपनी उन्नति समझनी चाहिए।"

"गुरुवर! आपके गुरुकुल के शान्त परिसर में मुझे ज्ञान-विज्ञान का सम्यक् परिचय मिल गया। अब घर जाने की आज्ञा दें।"

"सहर्ष आज्ञा है।"

"गुरुदेव! गुरुदक्षिणा में क्या दूँ!"

"मैं ब्राह्मण हूँ। अपरिग्रही हूँ। मुझे कुछ नहीं चाहिए। भगवान तुम्हें सुखी रखें।"

भाइयों को साथ लेकर शुद्धोधन कपिलवस्तु लौट आया। उसे अपने बीच पाकर माता-पिता अतिप्रसन्न हो गए।

देवदह के राजा अञ्जन

प्राचीन-काल में उत्तर-पूर्व भारत में शाक्य राज्य-क्षेत्र के अन्तर्गत देवदह नाम का एक नगर था। यह नगर लुंबिनी के उत्तर में स्थित है। आजकल यह दक्षिणी मध्य

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

नेपाल में पड़ता है। यहाँ के लोगों का राजा अञ्जन कोलिय था। उसकी पत्नी का नाम सुलक्षणा था। उसका रूप-सौष्ठव अनुपम था। आँखें बड़ी-बड़ी, नुकीली और रंग गोरा था। वह शुभ लक्षणों से ओतप्रोत थी। इसीलिए उसके माता-पिता ने उसे सुलक्षणा नाम से अभिहित किया।

देवदह एक हरा-भरा, धन्य-धान्य से भरा-पूरा एवं खुशहाल प्रदेश था। यहाँ के निवासी कोलिय थे। वे वीर, संकल्पशील, परिश्रमी एवं संगठित थे। यहाँ भी प्रजातंत्रात्मक गणराज्य था। अञ्जन वीर और मिलनसार था। अतः इस प्रदेश के लोगों ने उसे अपना मुखिया चुनकर राजा की पदवी से विभूषित किया।

अञ्जन के पास बड़े-बड़े उर्वर खेत थे जिसमें अनेक प्रकार के अन्न उगाये जाते थे। खेती के साथ-साथ वह पशुपालन भी करते थे। पशुओं को चरने के लिए उसने कई चारागाह रख छोड़े थे जिनमें नाना प्रकार की घासें लहलहाया करती थीं।

जिस मनुष्य को अनुशासित, हँसमुख, मनोहर, स्नेहशील, विनम्र, मृदुभाषी, सदाचारी और पतिव्रता पत्नी मिल जाती है, उसका लौकिक ही नहीं अपितु पारलौकिक जीवन भी सुखमय हो जाता है। सुलक्षणा ऐसी ही पत्नी थी। जब से पितृगृह छोड़कर वह देहदह आई, अञ्जन का धन और यश दिन दूना, रात चौगुना बढ़ता गया।

सुलक्षणा अत्यन्त ही उदार महिला थी। वह मुक्त हृदय से अन्न और द्रव्य से गरीबों और भिखारियों की झोली भर देती थी। उसके दरवाजे से कोई भी याचक कभी खाली हाथ नहीं गया। पति की लाड़ली जो ठहरी। उसका हाथ कौन पकड़ता?

पर्व-त्यौहारों पर व्रत-उपवास रखती थी। ब्राह्मणों एवं संन्यासियों को आमंत्रित कर अपने हाथों से छप्पन-भोग कराती। मनचाही दक्षिणा पाकर पुरोहित जी बाग-बाग हो उठते थे। उसके दान और धर्म की सर्वत्र चर्चा होती रहती थी।

वह पति की कामनाओं को समर्पित भाव से पूर्ण करती। जब पतिदेव आप्यायित हो जाते, तभी वह संगच्युत होती थी। संसर्ग-सुख लूटते-लूटते वह गर्भवती हो गई। एक दिन शय्या-विहार करते हुए उसने अञ्जन से पूछा, "प्रियवर! संतानोत्पत्ति कैसे होती है?"

"प्रिये! जब रति-क्रिया करते समय नर का वीर्य स्खलित होकर नारी के क्षेत्र में गिरता है और नारी का रज क्षरित होकर उसी क्षेत्र में स्थिर हो जाता है तो पुरुष का शुक्राणु और नारी-रज का संमिश्रण हो जाता है और नारी के गर्भ में भ्रूण की संरचना होती है।"

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

"तब?"

"नौ माह बाद संतानोत्पत्ति होती है।"

"संतान की रूप-रेखा शारीरिक बनावट कैसे निर्धारित होती है?"

"संतान माता-पिता का प्रतिरूप होता है।"

"तब तो यह एक प्रकार का पुनर्जन्म है।"

"तुमने सही कहा। संतान के रूप में ही माता-पिता का पुनर्जन्म होता है।"

"तब तो जीवन के कर्मानुसार पुनर्जन्म की जो कल्पना की गई है, वह धारणा मिथ्या है।"

"मृत्यु के बाद पुनर्जन्म की परिकल्पना केवल मृगमरीचिका है।"

"प्रियवर! आप तो बहुत बड़े मनोवेत्ता जान पड़ते हैं।"

महाप्रजापति का जन्म

नौ महीने बाद सुलक्षणा ने कमल-पुष्प की पंखुड़ियों-सी कोमल एक कन्या को जन्म दिया। जंगल की आग की तरह वह समाचार सारे देवदह नगर में फैल गया। सभी वर्णों की महिलाएँ अञ्जन के महल के प्राँगण में एकत्र हो गईं। कोलिय गण के सेनापति भी पधारे। आज-कल की तरह उस समय भी लड़कियों के जन्म पर सोहर (एक प्रकार का गीत) गाने तथा नाचने की प्रथा न थी। अतः नाचने-गाने का कार्य तो नहीं हुआ पर अञ्जन ने प्रथम कन्या के जन्म के उपलक्ष्य में ब्राह्मणों और भिखारियों को खुले हृदय से अन्न और वस्त्र दान किए। उनके सद्व्यवहार से सभी वर्णों के लोग प्रसन्न हो गए।

सुलक्षणा के आग्रह पर अञ्जन ने कन्या के नाम संस्कार का आयोजन कर अपने पुरोहित काल देवला को बुलवाया। पुरोहित ने विधिवत मंत्रोच्चार के साथ हवन आदि किया। सारा परिवेश हवन-सामग्री के धूम से गमक उठा। सर्वत्र पवित्रता एवं आह्लाद का वातावरण प्रसरित हो गया।

सुलक्षणा दासी के साथ कन्या को गोद में लेकर आई और पंडित जी को नमन कर बोली, "पंडित जी! इस कन्या का नामकरण करना है?"

"पुरोहित जी ने कन्या को अपनी गोद में ले लिया और उसके ललाट और हथेलियों को गौर से देखा। पंडित जी हस्त-रेखा और लालट को देखकर शत-प्रतिशत सही भविष्यवाणी करते थे। कन्या को प्रणाम कर बोले, "देवि! आपने जो इस कन्या को जन्म दिया है, उससे आप भी जन्म-मरण के चक्कर से मुक्त हो जाएँगी और सारा संसार अविद्या छुटकारा पा जाएगा।"

"पंडित जी! बुझनी मत बुझाइए। अच्छी तरह समझाइए?"

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

"देवि! यह कन्या बड़ी होकर अपनी सौत की कोख से जन्मे शिशु का पालन-पोषण करेगी और वह बड़ा होकर विष्णु की तरह संसार का उद्धार करेगा?"

"तो पंडित जी! भविष्य में यह जो कार्य करेगी, उसी के अनुसार इसका नामकरण कीजिए?"

"जो आज्ञा!"

पंडित जी ने खूब गुन-धुन कर कहा, "देवि! इसका नाम महाप्रजापति रखा जाएगा।"

पुरोहित की भविष्यवाणी सुनकर अञ्जन बहुत प्रसन्न हुए पर उनकी पुत्रैषणा बलवती हो गई। अतः हाथ जोड़कर बोले, "गुरुवर! क्या इसकी पीठ पर पुत्र जनमेगा?"

राजा का प्रश्न सुनकर पुरोहित चुप हो गए। असमंजस में पड़ गये। उनका मुँह उतर गया। पर क्या करते? पुरोहित जो ठहरे। यजमान का उत्तर तो देना ही था। बोले, "राजन्! इसके बाद सुलक्षणा की कोख से फिर कन्या जनमेगी और उसी के पुत्र का पालन-पोषण महाप्रजापति को करना पड़ेगा।"

सुलक्षणा बोली, "पंडित जी! क्या दोनों का विवाह एक ही राजा से होगा?"

"देवि! लक्षण तो यही बताते हैं।"

अचानक अञ्जन बोल उठे, "वृथा न जांहि देव-रिषि वाणी।"

महामाया का जन्म

समय बीतते देर नहीं लगती। हँसी-खुशी में समय का पता नहीं चलता है। दो वर्ष के अन्तराल के बाद सुलक्षणा का पैर फिर भारी हो गया। आश्विन मास था। पितृपक्ष बीत गया और नवरात्र प्रारम्भ हो गया। श्रद्धालु महिलाएँ दुर्गा माता की पूजा-अर्चना में तल्लीन हो गईं। जहाँ देखो वहाँ भक्तगण ढोल, मृदंग और हारमोनियम बजा-बजाकर दुर्गा-गीत अलापने लगे। आश्विन-शुक्ला दशमी (विजयदशमी) को सुलक्षणा की कोख से दूसरी कन्या का जन्म हुआ। एक ओर कन्या का जन्म और दूसरी ओर दशहरा का पावन पर्व, लोग खुशी से झूम उठे।

नवजात कन्या मखमल-सी कोमल, उत्फुल्ल कमल-पुष्प-सी मनोहर, गौर वर्ण थी। वृद्धा, प्रौढ़ा तथा युवती, जिस किसी ने नवजात शिशु कन्या को देखा, लहालोट हो गयीं। छोटे-छोटे बच्चे, लड़कियाँ लोगों की चोटी में बाँधने के लिए हाथ में जरई लिए हुए थे। अञ्जन को समझने में विलम्ब नहीं हुआ। बच्चों से अपनी चोटी में जरई बँधवाकर उन्होंने प्रत्येक बच्चे को चाँदी के सिक्के दिये बच्चे

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

खुशी से उछल पड़े और बोले, "राजन्! आपकी जय हो, दुर्गा मइया की जय हो। आज हम देवदह में आयोजित रामलीला और मेला देखेंगे और अपने लिए आवश्यक सामान खरीदेंगे।"

बरही के दिन सुलक्षणा के आग्रह पर प्रीतिभोज का आयोजन किया गया और बिरादरी के साथ-साथ ब्राह्मणों को भी भोजन के लिए आमंत्रित किया गया। सौभाग्य से सिंहहनु के साथ देवल ऋषि भी आ गए। लोगों ने आसन छोड़कर कपिलवस्तु के राजा की जयकार तथा ऋषिवर को प्रणाम किया। खा-पीकर सब लोग तो चले गए पर अञ्जन ने सिंहहनु को रोक लिया।

दूसरे दिन प्रातःकाल जब सब लोग स्नान-ध्यान और पूजापाठ से निवृत्त हुए तो कन्या को गोद में लेकर अञ्जन देवल ऋषि के सामने आए। कन्या को देखकर सिंहहनु और ऋषिवर मुग्ध हो गए। सिंहहनु मन ही मन सोचने लगे कि कितनी अनुपम कन्या है! इसका और शुद्धोधन का साथ कल्याणकारी रहेगा।

ऋषिवर ने कन्या को गोद में लेकर क्या कहा, "कन्या के लक्षण तो अद्वितीय हैं!"

"ऋषिवर! इस कन्या का कोई उत्तम नाम रख दें?"

"देवदह-नरेश! विजयदशमी के दिन राम ने रावण को पराजित कर सीता मइया को मुक्त किया था। सीता मइया साधारण नारी नहीं, अपितु आद्यशक्ति हैं, योगमाया हैं। योगमाया से मिलता-जुलता नाम महामाया है। अतः सुलक्षणा की लाड़ली का नाम महामाया रहेगा।" नामकरण सुनते ही एकत्रित जन कह उठे, "महामाया की जय।"

जयकार सुनकर सुलक्षणा भी हाथ जोड़े हुए सामने आ गई। विनम्रतापूर्वक बोली, "मुनिवर! आप तो महान तपस्वी एवं भविष्यवक्ता हैं। जरा हाथ देखकर इसके भविष्य का बखान कर दीजिए।"

"महादेवी! महामाया की हस्तरेखाएँ विलक्षण हैं। इसका नाम तो मानव-इतिहास में अमर रहेगा।"

"कैसे?"

"इसकी कोख से ऐसे महामानव का जन्म होगा जो अविद्या को समाप्त कर पददलितों का उद्धार कर संसार को नये आलोक से उद्भासित करेगा किन्तु....।"

"मुनिवर! किन्तु का निवारण कीजिए?"

"पुत्र को जन्म देने के सात दिन के भीतर ही यह जन्म-मरण के आवागमन से मुक्त हो जाएँगी।"

"नवजात शिशुबालक का पालन-पोषण कौन करेगा?"

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

"आपकी बड़ी लड़की महप्रजापति।"

"मुनिवर! पुरोहित जी की भी तो यही भविष्यवाणी है।"

शुद्धोधन द्वारा नया कीर्तिमान

कपिलवस्तु के शाक्य शुद्धोधन को अपने गण (प्रजातंत्र) का राजा बनाना चाहते थे। क्योंकि वह वीर, योद्धा एवं नामचीन पहलवान भी था।

सावन का महीना था। सर्वत्र हरियाली ही हरियाली थी। धान की रोपाई हो गई थी। शाक्य कोलिय, लिच्छवि, मल्ल आदि बेचैनी से नागपंचमी की प्रतीक्षा कर रहे थे। सौभाग्य से श्रावण-शुक्ला पंचमी का शुभ पर्व आ ही गया। सर्वत्र पेड़ों पर झूले पड़ गए। लड़कियाँ झूले पर झूलती हुई कजरी आलाप रही थीं और लड़के पेग मार रहे थे। नागपंचमी को प्रातःकाल उठकर गाँव की लड़कियाँ तालाबों और नदियों में अपनी-अपनी गुड़ियों को सिरा रही थीं और लड़के डंडे से मार-मार उन्हें पानी में डुबो रहे थे।

महाराज कोसल नरेश मल्लयुद्ध के बड़े शौकीन थे। उन्होंने नगर के बाहर वनस्थली में एक लम्बा-चौड़ा अखाड़ा बनवा रखा था। जहाँ नगर के बड़े-बड़े पहलवान दण्ड-बैठक के उपरान्त मल्लयुद्ध किया करते थे।

नागपंचमी के पावन पर्व पर महाराज कोसल नरेश ने श्रावस्ती में अपने अखाड़े में अन्तर राजकीय मल्लयुद्ध प्रतियोगिता का आयोजन किया था और इस प्रतियोगिता में भाग लेने अपने आस-पास के सभी गण-राज्यों तथा अपने प्रजातंत्र जन के नामचीन पहलवानों को साथ लेकर अखाड़े पर उपस्थित होने का आग्रह किया था। अतः कपिलवस्तु के शाक्य, देवदह के कोलिय, कुशीनारा के मल्ल, वैशाली के लिच्छवि आदि गण राज्यों के मुखिया अपने पहलवानों को लेकर यहाँ उपस्थित हुए। कुशीनारा का नरसिंह मल्ल लँगोट और जाँघिया पहनकर अखाड़े में आकर दहाड़ने लगा। महाराज कोसल-नरेश ने खड़ा होकर उच्चस्वर में घोषणा की जो पहलवान नरसिंह पहलवान से लड़ना चाहता है, वह अखाड़े में आकर उनसे हाथ मिलाए।

जब कोई पहलवान आगे न आया तो पलभर में लँगोट पहनकर ताल ठोंक कर शुद्धोधन ने नरसिंह से हाथ मिलाया। दोनों एक-दूसरे से गुँथ पड़े। आधे घंटे तक दाँव-पेंच चलता रहा। अचानक बिजली की तरह कड़ककर शुद्धोधन ने धोबी पाट मारकर नरसिंह मल्ल को चित कर दिया। शाक्य और उनके मुखिया सिंहहनु की खुशी का ठिकाना न रहा।

कोलिय गण के प्रधान अञ्जन ने शुद्धोधन के शौर्य और सुगठित शारीरिक

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

सौष्ठव देखकर मन ही मन यह निश्चय किया कि महाप्रजापति और महामाया के लिए कपिलवस्तु का राजकुमार उचित वर होगा।

महाराज कोसल नरेश ने सिंहहनु की पीठ थपथपाते हुए शाक्यों से आग्रह किया, "आगे चलकर सिंहहनु का उत्तराधिकारी शुद्धोधन को ही चुनना। कोसल सदैव आप लोगों की सहायता के लिए कटिबद्ध रहेगा।"

महाप्रजापति और महामाया की शिक्षा

महाप्रजापति और महामाया जब क्रमशः आठवें और पाँचवें वर्ष की देहली पर पहुँची तब अञ्जन ने उन्हें पढ़ाने के लिए अपने पुरोहित जी को बुलवाया। पुरोहित जी कोलिय गण के मुखिया के सामने आकर बोलने लगे, "अञ्जन महाराज की जय! अञ्जन महाराज की जय! अञ्जन महाराज की जय।"

अञ्जन ने प्रणाम कर कुशासन की ओर संकेत करते हुए कहा, "पंडित जी आसन ग्रहण कीजिए।"

आसन ग्रहण कर पुरोहित जी बोले, "राजन्! क्या आज्ञा है!"

"पंडित जी! दोनों कन्याओं को शास्त्र और गाँधर्व-विद्या में पारंगत बनाना है।"

"राजन्! राजकुमारियों को संस्कृत, पाली का ज्ञान जहाँ आवश्यक है वहाँ वीणा-वादन, संगीत और नृत्य सीखना भी आवश्यक है।" "पुरोहित जी! शास्त्र-ज्ञान और संगीत तथा नृत्य सिखाने का भार आप ही के ऊपर रहेगा।"

"ठीक है।"

वयःसंधि पर पहुँचते-पहुँचते दोनों राजकुमारियाँ संस्कृत, पाली, पाककला तथा गाँधर्व विद्या में निष्णात हो गईं।

रोहिणी-तट पर स्थित विशाल शिवालय

फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी थी। शिवरात्रि का महापर्व था। इस महान पर्व के शुभ अवसर पर रोहिणी तट पर शिवालय के पास विशाल भीड़ एकत्र हुई थी। देवदह और कपिलवस्तु के नर-नारी, कुमार-कुमारियाँ व्रत रखकर नदी के पावन जल में नहा-नहाकर टोकरी में धतूरे का पुष्प, फल, बेर, मिष्ठान्न, अबीर रखकर एवं ताँबे के लोटे में गोदुग्ध लेकर शिवलिंग का अभिषेक कर चढ़ा रहे थे। घंटे बजा-बजाकर शिव बाबा का गान कर रहे थे।

इस पावन पर्व पर सिंहहनु और कच्चाना अपने पाँचों पुत्रों तथा दोनों बेटियों के साथ आए थे। देवदह-प्रधान भी अपनी पत्नी सुलक्षणा और दोनों पुत्रियों को

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

लेकर आए हुए थे। दोनों राज-परिवार शिवालय के गर्भ-गृह में पुजारी को सूचित करके रुद्राभिषेक की तैयारी में जुट गए। मंदिर के प्रधान ने राजाओं के रुद्राभिषेक के लिए पाँच-पाँच पंडितों को नियुक्त कर दिया। शाक्य-राजकुमार शुद्धोधन सबसे आँख बचाकर महाप्रजापति और महामाया के रूप-लावण्य को टकटकी लगाकर देखने लगा। उसके कौतूहल को भाँपने में अञ्जन की पुत्रियों को देर न लगी पर उच्च संस्कार में पली होने के कारण दोनों ने शुद्धोधन की ओर आँख उठाकर न देखा। दोनों आँखें नीचे किये थीं फिर भी शुद्धोधन उनकी आँखों के आगे नाचता रहा। लाख कोशिश करने के बाद दोनों का हृदय शाक्य-राजकुमार को देखने के लिए लालायित हो उठा।

जैसे शरीर बिना कहे अपने वश में नहीं रहता है वैसे कुँआरी कन्याएँ अनायास मनोहर युवक पर मोहित हो जाती हैं। प्रेम-स्फुरण हुआ। दोनों ने शुद्धोधन पर आँखें गड़ा दीं। बस क्या? आँखें चार हुईं। मनोहर राजकुमार का मन दोनों पर बस गया। हृदय-हृदय का मिलन हुआ। यह था दोनों कुमारियों और शाक्य राजकुमार का प्रथम प्यार। राजकुमार ने संकेत द्वारा बता दिया कि तुम दोनों को मैं चाहता हूँ। कच्चाना और सुलक्षणा ने राजकुमार और दोनों कुमारियों के आँखों द्वारा किए गए प्रेम-संलाप को देख लिया।

स्वयंवर

सूर्यवंशी और चन्द्रवंशी राज-परिवार में स्वयंवर की परम्परा प्राचीन-काल से चली आ रही थी। अञ्जन ने अपनी दोनों पुत्रियों के लिए उत्तम वर चयन करने के लिए स्वयंवर रचा। इस स्वयंवर समारोह में पधारने के लिए उन्होंने सभी गण-राज्यों के राजकुमारों को आमंत्रित किया। निश्चित तिथि पर सभी राजकुमार उपस्थित हुए। शुद्धोधन चुप कैसे बैठता। वचनबद्ध जो था।

एक बरगद की चोटी पर एक उल्लू को डोरे से बाँध दिया गया था। देवदह नरेश ने मंच पर आकर यह उद्घोषणा की जो राजकुमार उल्लू की आँख में शर वेध कर उसे नीचे गिरा देगा, उसी को महामाया जयमाला पहनाएगी। प्रत्येक ने प्रत्यंचा पर बाण चढ़ाकर उल्लू की आँख को बेधने का प्रयास तो किया पर....। सिर नीचे कर वे लौटकर अपने आसन पर बैठ गए।

अन्त में शुद्धोधन तीर-कमान लेकर मैदान में आया। एकाग्रचित होकर जैसे उसने प्रत्यंचा से बाण छोड़ा, उल्लू कटकर धराशायी हो गया। मंच पर आगे बढ़कर महामाया ने शुद्धोधन के गले में जयमाला डाल दी। बेचारी महाप्रजापति हाथ में जयमाला लिये संकोचवश खड़ी रही पर शुद्धोधन ने स्वयं उसके पास जाकर अपना

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

सिर झुका लिया। मुस्कराते हुए महाप्रजापति ने उनके गले में जयमाला डाल दी।

विवाह

अञ्जन ने सिंहहनु के महल पर जाकर विवाह की तिथि निश्चित की। विवाह में सिंहहनु ने केवल एक ही शर्त रखी कि विवाह के शुभअवसर पर काल देवल की आज्ञानुसार केवल शाकाहार होगा।

बड़े ठाट-बाट से कपिलवस्तु से बारात देवदह गई। प्रेम, सम्मान एवं समपर्ति भाव से अञ्जन ने बारातियों का स्वागत किया। भोजनोपरान्त बराती जनवासे पर चले गए और सिंहहनु दूल्हे और परिवार को लेकर मँड़वे पर बैठ गया। माड़व को सोने और जवाहरात से सजाया गया था। सारा परिवेश चन्दन की सुगन्ध से गमक उठा।

पंडितों ने वैदिक मंत्रों का उच्चार किया। पाणिग्रहण संस्कार के बाद सात फेरे हुए। बुजुर्गों ने पुष्प और अक्षत की वर्षा कर दोनों वधुओं और वर को आशीर्वाद दिया।

विदाई

विवाह के तीसरे दिन महाप्रजापति और महामाया की विदाई हुई। रोते-रोते दोनों पालकियों में सवार हुईं। अञ्जन ने कई गाड़ी सोना, चाँदी, कलाराशि घोड़े, हाथियाँ और ऊँट दहेज में दिये। अपनी कन्याओं की सेवा करने के लिए देश-विदेश की सुन्दर दासियों को अञ्जन ने कपिलवस्तु भेज दिया।

परछन

कपिलवस्तु को दुल्हन की तरह सजाया गया था। सारा महल इत्र से सराबोर था। गाना-बजाना हो रहा था। जहाँ देखो वहाँ उत्साह नजर आ रहा था।

शाम होते-होते डोलियाँ कपिलवस्तु के राजमहल के द्वार पर आ गईं। उछाह भरी रानी कच्चाना ने अपनी दोनों बहुओं का परछन किया और हाथ पकड़कर उनके कमरों में पहुँचाया। सारा नगर आनन्द और उत्साह से भरा हुआ था। सभी लोग शुद्धोधन की जयकार कर रहे थे।

पुरोहित ने सायंकाल को पूजापाठ किया। सभी को प्रसाद बाँटा गया। रात को खा-पीकर जब परिवार के अन्य सदस्य अपने-अपने शयनकक्ष में चले गये तब शुद्धोधन अपनी रानियों को लेकर पुष्पों से आच्छादित अपनी शय्या पर गया।

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

आमोद-प्रमोद के साथ अभिसंयोग हो गया। सुहागरात हँसी-खुशी के साथ सम्पन्न हुई।

वैवाहिक जीवन

शुद्धोधन धन्य-धान्य से सम्पन्न, शूरवीर, यशस्वी, लोकप्रिय एवं दूरदर्शी शाक्य-गणराज्य का राजकुमार था। अतः जब सिंहहनु वृद्धत्व की ओर अग्रसर हुए तो शाक्यजनों ने सिंहहनु से परामर्श कर शुद्धोधन को अपना मुखिया अर्थात् राजा चुन लिया। राजा की पदवी से विभूषित होने पर कपिलवस्तु के राजभवन की शोभा दिन दूनी-रात चौगुनी बढ़ने लगी।

अन्तःपुर में देश-विदेश की छँटी हुई दासियों का जमघट लगा था। गणिकाएँ रात-दिन कोकिल-स्वर में मधुर गीत गाकर और अनेक अदाओं में नृत्य करके महामाया के दिल को बहलाया करती थीं। कभी-कभी महामाया स्वयं वीणा के तारों पर अँगुलियों को नचाती हुई गुन-गुनाकर शुद्धोधन को मुग्ध किया करती थीं।

लक्ष्मी पैर पसार कर राजभवन में आसन जमाए हुई थी। राजभवन का ऐश्वर्य और ठाट-बाट देखते ही बनता था। महामाया के रसोई-घर में प्रतिदिन छप्पन भोग तैयार होता था। अतः महामाया को मनोनुकूल स्वादिष्ट भोजन मिलता था।

अपने शरीर को हीरा-पन्ना तथा नगों से जटित आभूषण से अलंकृत कर रेशमी साड़ी पहने, इत्र से सराबोर महामाया पति को अपनी ओर आकर्षित करने का हर संभव प्रयास किया करती थी। राजा भी अपनी राजरानी की हर कामना को पूरा करने की भरपूर चेष्टा करता था।

पुत्रैषणा

महामाया का दाम्पत्य जीवन अत्यन्त ही सुखी था पर भाग्य की लीला को आज तक कौन जान सका है? कई वर्षों तक महामाया की कोख सूनी रही। अतः वह क्षुब्ध रहा करती थी। पुत्रैषणा हर नारी की प्रथम तथा अन्तिम कमजोरी होती है। नारी जब तक अपनी कोख से पुत्र को नहीं जन पाती तब तक वह अपने जीवन को असफल और निरर्थक समझती है। पुत्र-प्राप्ति नारी-जीवन का श्रेय-प्रेय है। महामाया सदाचारी और पतिव्रता थी। पुत्र-प्राप्ति के लिए समर्पित भाव से जप, तपं, व्रत, दान-दक्षिणा और तीर्थ-यात्रा आदि में एकाग्रमन से तल्लीन हो गईं।

शुद्धोधन पत्नी की मनोदशा से अवगत हो गए। तुरन्त उन्होंने पत्नी की

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

मनोकामना को पूर्ण करने के लिए अपने पुरोहित से विचार-विमर्श किया। शुद्धोधन दोनों हाथों की हस्त-रेखाओं और ललाट देखकर ही पुरोहित पुत्र-प्राप्ति के विषय में कुछ सकते में आ गए।

शुद्धोधन से बोले, "आपकी हस्तरेखाओं के साथ रानी की भी हस्तरेखा देखनी पड़ेगी।"

चेटी को आज्ञा देकर राजा ने महामाया को अपने कक्ष में बुलवा लिया। राजरानी को देखकर पुरोहित खड़ा हो गया और बोला, "कपिलवस्तु की रानी महामाया की जय हो, महामाया की जय हो, महामाया की जय हो।"

नमस्कार कर पंडित जी को बैठने का आदेश देकर वह पतिदेव के बाएँ सिंहासन पर बैठ गईं।

पुरोहित बोला, "महारानी! क्या आप अपनी हथेली दिखला सकती हैं?"

"अँवश्य।" रानी ने अपने हाथ की गदेली को पसार दिया।

हस्तरेखाओं को पुरोहित जी ने बड़े गौर से देखा। उसके ललाट पर एक अलौकिक आभा दृष्टिगोचर होने लगी। महामाया के देदीप्यमान चेहरे को देखकर उसे आशा की नई किरण दिखलाई पड़ी।

मुस्कराते हुए पुरोहित बोला, "महारानी! आपका जन्म सफल हो गया।"

वह बोली, "पंडित जी! आप व्यंग्य कर रहे हैं या हस्तरेखा देख रहे हैं?"

"नहीं, महारानी! मुझे अपार हर्ष हो रहा है।"

"क्यों?"

"क्योंकि आपकी कोख से एक ऐसा पुत्र पैदा होगा जो उसी प्रकार मानव-संसार के अज्ञान को दूर कर देगा, जैसे सूर्य, रात के अंधकार को विदीर्ण कर सारे संसार को आलोक से भर देता है।"

"पर, पंडित जी। पहले पैर तो भारी हो। क्या आप पुत्रकाम्या को पूर्ण करने के लिए कोई अनुष्ठान बता सकते हैं?"

शुद्धोधन की ओर देखते हुए पुरोहित बोला, "महाराज! यदि आपकी आज्ञा हो तो बताऊँ।"

"पंडित जी! अनुष्ठान सुझाइए। हम दोनों एकाग्रचित्त होकर उसे पूरा करेंगे।"

"आपको दशरथ की तरह पुत्रेष्टि यज्ञ करने की आवश्यकता नहीं है। आप सूर्यवंश के शिरोरत्न हैं। अतः पुत्र-प्राप्ति के लिए सूर्योदय काल में सूर्योपस्थान करें।"

"पंडित जी! उपासना की विधि तो बतलाएँ?"

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

"महाराज! प्रातः नित्य-क्रिया से फारिग होकर स्नान-ध्यान के उपरान्त एक ताँबे के लोटे में जल भरकर 'ॐ घृणी सूर्याय नमः' का मंत्र पढ़कर भगवान भास्कर को अर्घ दें।" महामाया से रहा न गया। बोलीं, "पंडित जी। वैसे तो मैं महाराज की अर्द्धांगिनी हूँ। फिर भी पुत्र-प्राप्ति के लिए कुछ पूजा-पाठ करना चाहती हूँ।"

"महारानी! आप केवल सोमवार को व्रत रहा करें।"

"धन्यवाद।"

शुद्धोधन बहुत प्रसन्न हो गए। बोले, "पंडित जी! मैं आपको कुछ जमीन देना चाहता हूँ।"

"नहीं, मालिक। मैं अकिंचन रहना चाहता हूँ। आपका अनुग्रह मेरे लिए सर्वोपरि है।"

आषाढ़ोत्सव

शुद्धोधन के समय उत्तर-पूर्वी भारत मूलतः कृषि प्रधान देश था। चैत्र, बैशाख और जेठ में यह क्षेत्र भयंकर गर्मी से तवे की तरह तप्त हो उठता था। इन तीन महीनों की प्रचण्ड गर्मी से वर्षा काल के आगमन पर मुक्ति मिलती थी। अतः आषाढ़ में जब सारा गगन बादलाच्छादित हो जाता था तो शाक्य और कोलिय आनन्द से झूम उठते थे। आर्द्रा नक्षत्र का श्रीगणेश होते ही उत्तरी-पूर्वी भारत में आषाढ़ोत्सव समारोह मनाया जाता था। इस उत्सव का प्रारम्भ गणों के मुखिया किया करते थे।

आर्द्रा नक्षत्र का प्रथम दिवस था। शुद्धोधन नौकरों-चाकरों तथा हलवाहों को लेकर अपने खेत पर पहुँच गए। हल की मुठिया पकड़कर बैलों को हाँक-हाँक कर हल चलाने लगे। रानियाँ, चेटियाँ और दासियाँ बाजा बजाकर नाचने-गाने लगीं। आनन्दातिरेक से आषाढ़-महोत्सव में चारु चाँद लग गया। प्रातः 9 बजे से लेकर मध्याह्न बारह बजे तक महोत्सव चलता रहा। जब लोग थककर चूर हो गए तो अपने-अपने घर लौटे।

शाक्यों का यह शुभ दिन था। महामाया ने व्रत रखा था। नहा-धोकर सूर्य भगवान को नमस्कार कर महारानी ने दीन-दुखियों को मुक्त हाथ से दान दिया। पासवर्ती तपस्वियों के आश्रम जाकर संन्यासियों को छप्पन प्रकार का भोजन कराया।

रात के समय दासियों से सारे शरीर में चन्दन मिलवाकर उबटन तैयार करवाकर मालिश करवाया। गर्म गुलाब जल में स्नान कर रेशमी परिधान धारण किया। हीरा-पन्ना आदि से जड़ित आभूषणों को पहनकर अंग-प्रत्यंग को अलंकृत किया। फलाहर करने के बाद शुद्धोधन के साथ शयनकक्ष में जाकर हाथ में वीणा

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

लेकर बैठ गई! वीणा के तारों पर उनकी गोरी अँगुलियाँ नर्तन करने लगीं। कोकिल स्वर में मधुर गीत और वीणा के उपक्वाण से कपिलवस्तु नरेश का मन मयूर नाचने लगा। वह उन्मत्त हो उठे। मुस्कराते हुए उन्होंने महामाया को अपनी कदलीनुमा बाँहों में कस लिया। महामाया ने पूर्ण रूप से समर्पण कर दिया। शुद्धोधन के अनुग्रह से दोनों में ऐक्य संस्थापित हुआ। दोनों ब्रह्मानन्द में लीन हो गए। थककर जब चूर हो गए तो संगच्युत हो गए। महामाया अपने हार्दिक आनन्द को छिपा न सकी। बोली, "महाराज! मैं आप्यायित हो गई।" थोड़ी ही देर में पति-पत्नी घोर निद्रा में निमग्न हो गए।

अद्भुत स्वप्न

ब्राह्म मुहूर्त था। महामाया स्वप्न-लोक में विचरण करने लगी। स्वप्न शुभ भी था और अद्भुत भी। स्वप्न में उसने देखा कि चारों दिशाओं के गणदेवता (आदित्य, वसु, रुद्र, मरुत् आदि) उसके शयनकक्ष में पधार कर उसकी शय्या को अपने हाथों पर उठाकर हिमालय पर ले गए और शाल-वृक्ष की छाया में रखकर पास में खड़े हो गए। वहाँ उनकी पत्नियाँ पहले से ही उपस्थित थीं। बड़े प्यार से दुलारती हुईं वे उसे मानसरोवर के तट पर ले गईं। उसके अंग-प्रत्यंग में चन्दन-लेप लगाकर पवित्र जल में अच्छी तरह स्नान करवाया। तत्पश्चात महामाया के शरीर पर किस्म-किस्म के इत्र छिड़ाकर, नाना प्रकार के आभूषणों से अलँकृत कर, रेशमी साड़ी और चोली पहनाकर, सुगंधित फूलों की मालाओं से उसे लैस कर दिया। गणदेवता फूले न समाए। अपनी-अपनी पत्नियों को शाबाशी देते हुए बोले, "तुम लोग देवलोक की नाक हो। अब महामाया पूर्णरूप से भावी दिव्यात्मा को धारण कर अपने गर्भागार को पावन कर सकती हैं।"

अचानक सुमेध जी प्रकट हो गए। देवपत्नियों ने कहा, "आदित्य देव जी! सामने देखो? सुमेध बोधिसत्व खड़े हैं।"

उनका स्वागत कर गणदेवता बोले, "बोधिसत्व जी! सामने महामाया जी खड़ी हैं। उनकी प्रार्थना कर अनुमति लें। फिर सदाचार की ओर उन्मुख हों।"

महामाया का चरणरज लेकर बोधिसत्व बोले, "मातरि! जन्म लेते-लेते मैं थक गया। सत्कर्मों ने मुझे पवित्र कर दिया है। अब मेरा अंतिम जन्म है। क्या आप मेरी माता बन सकती हैं?"

"क्यों नहीं! आप मुझे अपनी माता बनने का सौभाग्य प्रदान करें।"

अचानक नींद उचट गई और वह उठ बैठीं। बाहर पक्षियों की आवाज सुनाई पड़ी।

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

स्वप्न-विश्लेषण

प्रातःकाल महामाया ने नहाने-धोने के बाद पूजा-अर्चना की। इसके बाद उसने सूर्य भगवान को अर्घ दिया। शुद्धोधन भी सूर्योपासना से मुक्त होकर अपने विश्राम-कक्ष में आये। जलपान करने के बाद महामाया ने कहा, "महाराज! मैं आपको कुछ अंतरंग बातों से अवगत कराना चाहती हूँ।"

"प्रिये! मैं उत्सुक हूँ। सुनाओ?"

"महाराज! मैंने रात में एक विचित्र सपना देखा है।"

"स्वाभाविक है। हम लोग ऊहा-पोह के चक्कर में पड़े हुए हैं। ठीक है। सुनाओ अपना सपना?"

"महामाया ने सपने की सारी कहानी पतिदेव को सुना दी।"

स्वप्न अद्‌भुत था। उसका विश्लेषण मनोवैज्ञानिक और स्वप्न विश्लेषक ही कर सकते थे। पलभर के लिए शुद्धोधन विचारमग्न हो गए। सोचने लगे कि स्वप्नशास्त्री तो केवल शास्त्रवेत्ता और ज्योतिषाचार्य ही हो सकते हैं। तुरन्त उन्होंने अपने सेनानायक को महामात्य उदायी के पास भेजा। उदायी सेनापति को देखकर घबड़ा गया। बोला, "सेनापति! आपके आगमन का क्या हेतु है?"

"मंत्रीवर! आपको महाराज ने अविलम्ब बुलावाया है।"

"ठीक है। चलो। चलते हैं।"

दोनों रथ पर सवार हुए और शुद्धोधन के विचार-कक्ष में पहुँच गए। सेनापति तो बाहर चला गया पर रह गये—राजा, रानी और मंत्री।

शुद्धोधन और महामाया को शुभकामना देकर उदायी विनम्रतापूर्वक आसन पर बैठ गया। हाथ जोड़कर बोला, "महाराज! क्या आदेश है?"

"महामात्य जी। देवल का आश्रम पहले से ही एक बहुत बड़ा विद्यापीठ है जिसमें केवल भारतवर्ष के ही नहीं अपितु यूनान आदि के छात्र मनोविज्ञान, स्वप्न विश्लेषण, ज्योतिष, वैद्यकीय, शास्त्रस्त्र, वेद, उपनिषद्, व्याकरण, दर्शन आदि विषयों को पढ़ने के लिए आते हैं। वहाँ स्वप्न विश्लेषकों के पास रावण-संहिता भी है और भृगुसंहिता भी है।"

"राजन्! सचमुच वह संसार में एक प्रख्यात विद्यापीठ है और वहाँ एक से बढ़कर एक विद्वान हैं।"

"तो आप चार रथ लेकर वहाँ चले जाइए और कुलपति से स्वप्नशास्त्रियों का नाम पूछकर उन्हें ससम्मान निवेदन करके रथ पर बैठाकर कपिवस्तु में ले आएँ।"

"जो आज्ञा, महाराज!"

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

उदायी रथ-चालकों को साथ लेकर विद्यापीठ पहुँच गया। सिंहद्वार पर नियुक्त द्वारपाल स्वागतार्थ खड़ा हो गया। हाथ जोड़कर बोला, "मान्यवर! किस देश से आपका आगमन हुआ है?"

"द्वारपाल! मैं कपिलवस्तु नरेश का महामात्य हूँ।"

"किससे मिलना है?"

"उपकुलपति से।"

"पलभर के लिए ठहर जाइए। मैं ऋषिवर से आज्ञा लेकर आता हूँ।"

वापस आकर द्वारपाल बोला, "उदायी जी! कुलपति-कक्ष में आपका स्वागत है। जाइए।"

उदायी जब कुलपति-कक्ष के द्वार पर खड़ा हुआ तो कुलपति ने उसे अन्दर बुला लिया। आसन देकर बोले, "मंत्री जी! किसने आपको यहाँ भेजा है?"

"गुरुवर! महाराज शुद्धोधन ने।"

"कपिलवस्तु नरेश सकुशल तो हैं न?"

"बिल्कुल।"

"किस हेतु शाक्य-राज ने आपको यहाँ भेजा है?"

"कुलपति! महामाया ने कल रात्रि में एक अनोखा सपना देखा है। उसका विश्लेषण केवल मनोवैज्ञानिक तथा शास्त्रविद् ही कर सकता है। क्या आपके गुरुकुल में ऐसे स्वप्नविद् और भविष्यवक्ता हैं?"

"मंत्रीजी! हमारा गुरुकुल अंतर्राष्ट्रीय ख्याति का विद्यापीठ है। यहाँ पर सभी शास्त्रों और भाषाओं के पंडित हैं।"

"तो स्वप्न-विचारी पंडितों को मेरे साथ चलने की सलाह दीजिए।"

"मंत्रीजी! कर्म ही मनुष्यों के विचारों की व्याख्या है। मैं शाक्य-राज की जिज्ञासा और रानी महोदया के स्वप्न की व्याख्या के लिए आठ विद्वानों को आपके साथ भेजता हूँ।"

कुलपति जी स्वयं बारी-बारी से राम शास्त्री, स्वप्न-विचारी पंडित ध्वज, आचार्य लक्ष्मण, ज्योतिषाचार्य मंत्री, वेदाचार्य कोडञ्ज, आयुर्वेदाचार्य भोज, व्याकरणाचार्य सुयाम, गणितज्ञ सुदत्त के पास गए और उन्हें अपने कमरे में बुला लाए। उदीय ने सभी आचार्यों को प्रणाम किया। सभी विद्वानों को आसनासीन होने पर निवेदन करते हुए कुलपति जी बोले, "विद्वानो! महामाया के स्वप्न की व्याख्या करने के लिए मंत्री उदीय द्वारा राजा का बुलावा आया है। क्या आप लोग जा सकते हैं?"

"महोदय! परोपकार और बहुजन हिताय के लिए विद्यार्जन किया जाता है।

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

हम लोग तैयार हैं।"

"आचार्यो! जीवन एक प्रयोगशाला है। आविष्कार और प्रयोग में चोली-दामन का साथ है। प्रयोग द्वारा ही सत्यान्वेषण होता है।"

"आपने बिल्कुल सही कहा है।"

"विद्वानो! गुरुकुल के नियमों का कठोरता से पालन करना। राजा से न तो कोई अनुग्रह राशि लेना और न ही राजभवन में भोजन और जलपान करना, नहीं तो तुम्हारा फलितार्थ भी असत्य हो जाएगा और स्वप्न-शास्त्र के सिद्धान्त भी विस्मृति की कोख में चले जाएँगे।"

"कुलगुरु! ब्राह्मण धर्म के सिद्धान्तों का हम अक्षरशः पालन करेंगे। पादपाठ के समय हमने एक-एक सप्ताह उपवास किया है।"

"फिर योगेश्वर का नाम लेकर प्रस्थान करें।"

रथ के घोड़े कलाराशि थे। सरपट दौड़ने लगे। शीघ्र ही कपिलवस्तु के राजभवन के सिंहद्वार पहुँच गए। द्वारपालक ने शाक्य-राज को सूचित किया। महाराज ने स्वयं सिंहद्वार पर आकर ब्राह्मणों की अगुआनी की। ससम्मान उन्हें लेकर अंतःपुर के कक्ष में गए।

अंतःपुर में महामाया के पास पहुँचकर पंडितों ने महारानी को नमन किया और उच्च स्वर में महामाया और शुद्धोधन की जय-जयकारी की। राजा-रानी का हृदय गद्‌गद हो गया। हाथ-पैर अच्छी तरह धोकर हाथ में कमल-पुष्प लेकर सभी कुशासन पर आसीन हो गए।

राम शास्त्री ने हाथ जोड़कर महामाया से विनम्रता के साथ निवेदन किया, "महारानी क्या आपको स्वप्न की सारी कहानी ज्यों की त्यों याद है?"

"हाँ।"

"विचित्र बात है। अच्छा सारी कहानी अक्षरशः सुनाने की कृपा करें?"

"भूदेवो! ध्यान से सुनें। कहकर रानी महोदया ने सारी कहानी सुना दी।"

स्वप्न-विचारी पंडित ध्वज ने पूछा, "महारानी! आपने स्वप्न किस समय देखा है?"

"पंडित जी। ठीक ब्राह्म मुहूर्त में मैंने यह स्वप्न देखा है।"

आठों पंडितों का ललाट अलौकिक आभा से देदीप्यमान हो उठा। सिर ऊँचा करके मंत्रों का उच्चार करते हुए कहने लगे, "महाराज! शुद्धोधन की जय, महारानी महामाया की जय, शाक्यवंश की जय, कपिलवस्तु गण की जय।"

अपनी जयकार सुनकर महाराज और महारानी सिंहासन पर उछल पड़े। महामाया को ऐसा अहसास अनुभव हुआ मानो कोई आलोक-पुंज उनके गर्भ में

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

प्रविष्ट हुआ है। पति-पत्नी की प्रसन्नता का आर-पार न रहा।

हाथ जोड़कर पति-पत्नी बोले, "भूदेवो! फलितार्थ तो भाखो?"

"महाराज! आप और महारानी दशरथ-कौशल्या तथा वासुदेव-देवकी की तरह कितने भाग्यवान हैं!"

"वे लोग तो महापुरुष थे। चक्रवर्ती थे। हम तो केवल एक शाक्य गणतंत्र के मुखिया हैं।"

"महाराज! महामाया के क्षेत्र में आप और महामाया के सुखद संयोग से जो समिश्रित अंश अवस्थित हुआ है वह आज के नव माह बाद महान पुत्र के रूप में जन्म लेगा। लक्षण यही बताता है कि यदि वह प्रवृत्तिगामी बना तो चक्रवर्ती सम्राट बनेगा पर यदि निवृत्तिगामी हुआ तो लोकनायक बुद्ध बनेगा।"

स्वप्न के दूसरे फल को सुनकर शुद्धोधन ऊहा-पोह में पड़ गए। बोले, "पंडितो! संन्यास मार्ग से भावी पुत्र के चित्त को रोकने का क्या उपाय है?"

"हाँ। कामाशक्ति, भोग। नारियों का जमघट लगाकर उसे रति-मन्मथ के हवाले कर दीजिएगा।"

"और कोई अर्थ?"

"हाँ।"

"बताइए?"

"मातरि मायामाया के भाग्य में वात्सल्य-प्रेम केवल एक सप्ताह का लिखा है। अस्तु। हमें विद्यापीठ जाने की आज्ञा दें।"

गर्भ-काल एवं विहार

महामाया का गर्भाधान कपिलवस्तु के लिए गौरव का विषय बन गया। यह शुभ समाचार केवल कपिलवस्तु और राजमहल तक ही सीमित न रहा बल्कि देवदह और सम्पूर्ण शाक्य-प्रदेश में दवाग्नि की तरह प्रसरित हो गया। फैले भी क्यों नहीं, आखिर पच्चीस साल के अन्तराल के पश्चात भावी सुख से जुड़ा हुआ यह सुखद समाचार मिला था। शाक्य और कोलिय, गर्भ-ग्रह का मंगलकारी संदेशा सुनकर भाव-विभोर होकर नाच उठे। जहाँ भी देखा वहीं नृत्य और गान हो रहा था।

आषाढ़ उमड़-घुमड़ कर घनघोर वर्षा कर किसानों के हृदय को शीतल कर चला गया। श्रमकर और दास-दासियाँ हाथों की मुट्ठी में जरई लेकर अपने मालिकों के जल-मग्न खेतों में रोपनी करने लगे। दासियों और मजदूरिनों के घुटने तो पानी में डूबे हुए थे पर हाथ और गला तीव्र गति से चल रहा था। कितना सुरीला और मधुर था हतभागिनों का सुरीला गला। जो भी राहगीर उनकी कजरी सुनता,

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

पलभर के लिए पगडंडी पर अवश्य विरम जाता था। पर खेत के मालिकों के मन में रहम कहाँ था? बेचारी जब चमड़ी में घुसकर खून पीने वाली जोंकों को निकालने लगतीं तो निर्लज्ज मालिक गालियों की बौछारों से उनका स्वागत करता।

धरती पर चारों ओर हरीतिमा छाई हुई थी। काले-काले बादलों की गड़गड़ाहट और बिजली की कड़कड़ाहट सुनकर महामाया और प्रजापति का हृदय दहल उठा। जैसे पूर्णिमा के चाँद को देखकर सागर की उद्दाम लहरें उठखेलियाँ करने लगती हैं वैसे ही दोनों महारानियाँ आनन्द से फुदकती हुई महाराजा के विचार-कक्ष में पहुँच गईं। उन्हें देखकर शुद्धोधन बाग-बाग हो गए।

आनन्द-विह्वल होकर बोले, "रानियो! क्या आज तुम दोनों अपनी जादुई चितवन तथा कामुक हावों-भावों से मेरे मन पर कुसुम-सायक चलाने आई हो?"

महामाया बोली, "क्यों नहीं। मैं हूँ रति और दीदी पार्वती।"

"तो क्या शिव के ध्यान को भंग करना चाहती हो?"

"हाँ।"

जब मनुष्य के विवेक और उसकी चर्या में मेल हो जाता है तो उसका जीवन परम पवित्र हो जाता है।

मुस्कराते हुए महाराज बोले, "प्रिये! जीवन एक पुष्प है और प्रेम उसका मधु है।"

महामाया बोली, "प्रियवर! बूझनी मत बुझाओ। काम की बात पूछो।"

"हाँ। मैं तो भूल ही गया। क्या कोई महत् योजना लेकर तुम दोनों मेरे पास पाई आई हो?"

"हाँ।"

"बोलो।"

"सावन का मौसम आ गया है। सारी प्रकृति गा रही है। पवन पेंग मार-मारकर पेड़-पौधों की शाखाओं, प्रशाखाओं तथा पत्तियों को झूला रहा है।"

"तो कजरी-गान और झूले का आयोजन करवाना चाहती हो?"

"हाँ।"

"कल ही राजोद्यान में झूला पड़ जाएगा। तुम मधुर गले से कजरी अलापना और मैं मारूँगा पेंग।"

"भगवान आपकी कीर्ति में चार चाँद लगाए।"

झूला पड़ गया। महामाया और महाप्रजापति की कजरी प्रसिद्ध थी। राजमहल का सारा प्रांगण ठसाठस भर गया। दोनों रानियों ने सुरीली आवाज में कजरी गा-गाकर लोगों को मुग्ध कर दिया।

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

महाराजा अपनी प्रियतमाओं को शाबाशी देते हुए बोले, "कमाल है। तुम लोगों ने अनोखी समाँ बाँध दी।"

बारह वर्ष बाद पूस-माघ में तीर्थराज प्रयाग में कुंभ का मेला लगा था। गंगा-यमुना-सरस्वती के संगम पर श्रद्धालुओं का हजूम उमड़ा चला आ रहा था। भक्तगण संगम के आस-पास महीनेभर से ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए धर्मकृत्य कर रहे थे। हिमालय के देव, किन्नर, गंधर्व ताँता बाँधे हुए कौशाम्बी की ओर अग्रसर हो रहे थे।

महाराज शुद्धोधन भी हर साल माघ में संगम पर स्नान करने के लिए आया-जाया करते थे। वहाँ पर वह संन्यासियों, मुनियों तथा ऋषियों का दर्शन अवश्य करते थे।

देवताओं को प्रयाग की ओर जाते हुए देखकर महामाया ने शुद्धोधन से प्रार्थना की, "महाराज! इस वर्ष तीर्थराज प्रयाग में कुंभ लग रहा है। धन-धान्य लेकर प्रस्थान कीजिए। साधु-संतों को दक्षिणा देनी है और संन्यासियों और ऋषियों को स्वादिष्ट भोजन।"

राजा तो थे ही, पलभर में तैयारी हो गई। रथ में घोड़े जुत गए। दो दिनों की यात्रा के बाद प्रयाग पहुँचे और सपरिवार त्रिवेणी में स्नान कर याचकों को खूब दान किए। सायंकाल संन्यासियों के दर्शन के लिए संन्यास-आश्रम पहुँचे। सपत्नीक उनके पैर छुए। वहाँ श्रद्धानन्द, विश्वदेवानन्द, विश्वेसरानन्द, सत्यानन्द, भवानन्द, सच्चिदानन्द, अखण्डानन्द आदि स्वामी तो दिखलाई पड़े पर बोधिसत्व गायब थे। शुद्धोधन और महामाया आश्चर्य में पड़ गए।

हाथ जोड़कर विश्वदेवानन्द से पूछ बैठे, "स्वामी जी! बोधिसत्व मुनि दिखलाई नहीं पड़ रहे हैं।"

"बेटा! चतुर्दिक महाराजिक देवता जेठ के अन्त में संगम पर आए और नहा धोकर बोद्धिसत्व को विमान पर लेकर चले गए।"

"क्यों?"

"उनके लिए पवित्र और उचित कोख मिल गई और वह आषाढ़ मास से महादेवी के गर्भ में पल रहे हैं।"

"स्वामी जी! क्या वह किसी महाराजा के घर जन्म लेंगे?"

"हाँ, पर चक्रवर्ती सम्राट नहीं बनेंगे, संन्यासी बनेंगे।"

अचानक महामाया को स्वप्न में देखी हुई बोधिसत्व की शक्ल की याद आ गई। महामाया के आमोद-प्रमोद के लिए समुचित व्यवस्था की गई थी। एक ओर तो उसे प्रतिदिन कटु, तीखा, अम्ल, मधुर, कषाय, लवण आदि षट्रसों से युक्त

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

पौष्टिक भोजन मिलता था और दूसरी ओर छटी हुई नर्तकियाँ अनेक प्रकार के नृत्यों तथा मधुर स्वर में गीत गा-गाकर उनका मनोरंजन किया करती थीं। अपराह्न चार बजे पुरोहित जी प्रतिदिन उसे उपनिषद, रामायण, महाभारत आदि की कहानियाँ सुनाया करते थे। ऐसे रम्य परिवेश में महामाया के गर्भ में भावी युग पुरुष का भ्रूण पल रहा था।

वसन्त, होलिका-दहन, नवरात्र का लुत्फ लेते-लेते गर्भाधारण के नव माह बीत गए। दसवाँ माह प्रारम्भ होते ही सुलक्षणा और अञ्जन ने अपनी पुत्री को देवदह लिवा लाने के लिए अपने पुरोहित को कपिलवस्तु भेजा।

महामाया चलीं देवदह की ओर

अञ्जन का पुरोहित कपिलवस्तु के राजमहल के सिंहद्वार पहुँचा। नमस्कार कर द्वारपाल ने पूछा कहाँ से पधारे हैं?

"देवदह से।"

"किससे मिलना है?"

"महाराज शुद्धोधन से।"

"पंडित जी! कपिलवस्तु नरेश का मन पवित्र है। अतः वह मनुष्य के मन को माणिक्य समझते हैं। किसी का मंन वह कभी नहीं दुखाते। चलिए आपको उनसे मिलवा दूँ।"

सिंहासनासीन शुद्धोधन को देखकर अञ्जन का पुरोहित बोल उठा, "महाराज की जय हो।"

"धन्यवाद। आसन ग्रहण करें। देवदह से क्या समाचार लाएँ हैं?"

"नृपवर! महामाया को नैहर में विहार करने के लिए कल ही प्रस्थान करवा दीजिए।"

"पंचांग देखकर साइत तो विचार लीजिए।"

"महाराज! कल वैशाख की पूर्णिमा है। पुष्य नक्षत्र है। पावन और शुभमुहूर्त है।"

"ठीक कल प्रातःकाल विदाई हो जाएगी। आप खा-पीकर विश्राम करें।" पंडित जी की सेवा-शुश्रूषा का उत्तरदायित्व अपने मंत्री को सौंपकर शुद्धोधन अन्तःपुर में चले गए। बुलबुल की तरह गुनगुनाती और फुदकती हुई महामाया शुद्धोधन के पास आई और गले लग गई। मुस्कराते हुए नरेश बोले, "प्रिये! दसवाँ महीना है। देवदह से सास-ससुर का तुम्हारे प्रथम पुत्र के जन्म के लिए बुलावा आया है। पुरोहित जी ने आज ही अपने चरण-रज से मेरे महल को पवित्र किया है।"

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

"प्रियवर! आभिजात्य वर्ण की यही तो स्वस्थ परिपाटी है। मेरी भी माँ-बाप से मिलने की उत्कंठा है।"

"प्रिये! कल ही का मुहूर्त निकला है। दासियों और चेटियों की सहायता से आवश्यक सर-सामान सजा लो।"

"तथास्तु।"

शुद्धोधन ने महामाया की सेवा के लिए सुन्दर से सुन्दर दासियों का चुनाव किया। सूर्योदय-काल में रथों पर सामान लाद दिया गया। डोलियाँ सज गईं। रत्नजटित पालकी में महामाया मखमली तोशक पर मसनद के सहारे लुढ़क गई। आठ कहार डोली लेकर चल पड़े। वे आनन्दमयी मुद्रा में थे। अतः कहरवा ताल पर दादरा अलापने लगे। दादरा सुनकर महामाया की छाती जुड़ा गई।

देवदह और कपिलवस्तु के बीच विशाल और घना जंगल पड़ता था जिसमें अनेक प्रकार के ख्वार जानवर रहते थे। अतः सबकी रक्षा के लिए सेनापति ने सशस्त्र अश्वारोही सेना साथ में ले ली थी। ग्रीष्म ऋतु थी। अतः पानी से भरे हुए कुंभ बैलगाड़ियों में रख दिए गए थे।

एक पहर चलने के बाद लुम्बिनी का विशाल शालवन आ गया। यह वन कपिलवस्तु और देवदह के बीच पड़ता था। आजकल इसे रुक्मिनदेई कहते हैं। यह लुम्बिनी नेपाल की तराई में नौतनवा स्टेशन से लगभग 24 किलोमीटर पश्चिम में स्थित है। हरे-भरे विशाल शाल, अशोक, आम्र आदि के वृक्षों से सम्पन्न लुम्बिनी का प्राकृतिक परिवेश एवं वैभव अत्यन्त ही रम्य एवं हृदयाकर्षक था। शीतल, मन्द, सुगंधित पवन बटोहियों के तन को स्पर्शित कर उनके मन को तरंगित और उद्वेलित कर रहा था। शाल और अशोक की टहनियों की शिखाएं रंग-बिरंगे पुष्पों से आच्छादित होकर हवा के झोंकों में लहरा रही थीं। कितना लुभावना और मनभावक था यह दृश्य! लगता था कि लुम्बिनी वन नहीं अपितु इन्द्र का नन्दन-कानन है। पेड़ों की शाखाओं-प्रशाखाओं की हरी-भरी पत्तियों में छिपकर कहीं पक्षी चहचहा रहे थे और कहीं अशोक और शालों के पुष्पों पर मड़रा-मड़रा कर भ्रमर पराग का पान कर गुंजार कर रहे थे। सबसे छिपकर किसी शाखा की आड़ में कोयल मधुर स्वर तान तोड़ रही थी। घासों और पुष्पों पर उड़ती हुई रंग-बिरंगी तितलियाँ सबके मन को मुग्ध कर रही थीं।

लुम्बिनी में एक विशाल झील थी। इस झील का नीर पारदर्शी, मधुर, पवित्र एवं स्वास्थ्यप्रद था। किनारे-किनारे अनेक प्रकार के मनमोहक पुष्प हवा के साथ अपनी सुगन्ध से सबकी घ्राणेन्द्रिय को तर कर रहे थे। पानी में कुमुद और कुमुदिनी के पुष्पों की छटा निराली थी। एक ओर झील का आकर्षक दृश्य लोगों

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

के मन पर अपना जादुई प्रभाव बिखेर था और दूसरी ओर शाल और अशोक की हरी-भरी पत्तियाँ और पुष्प अपने लुभावने रूप से आते-जाते पथिकों को मुग्ध कर रहे थे।

शीतल, मन्द, सुगंधित पवन के झोंके शाल और अशोक की टहनियों की शिखाओं पर उत्फुल्ल कुसुमों को झूला झुला रहे थे। पक्षियों के कलरव, कोयल की मधुर तान, भौंरों की गुंजार, तितलियों की एक फूल से दूसरे फूल पर उड़ान तथा झील के पावन नीर को देखकर आसन्न प्रसवा महामाया का मन डोल उठा। प्रकृति ने अपने मनोरम रूप से महारानी के चित्त और मन को हर लिया। रूपलावण्य चाहे प्रकृति का हो, चाहे रूपवती नारी का, मनुष्य को अपनी ओर चुम्बक की तरह खींच ही लेता है। महामाया अपनी प्रसवास्था को भूल गईं।

प्रकृति के मनोहर रूप का अवलोकन करने के लिए उन्होंने कहारों को आदेश दिया, "महराओ! रुक जाओ और मियाना को इस रम्य वनस्थली की धरती पर रख दो।"

कहार तो आदेश के गुलाम थे। पालकी को धीरे-धीरे जमीन पर रख दिये। कहारों की देखा-देखी सेना, दास, दासी जहाँ के तहाँ ठिठक गए। सभी ने सोचा कि महारानी विश्राम करना चाहती हैं।

परदा हटाकर महामाया बाहर आ गईं। नागरों को देखकर आदिवासी महिलाओं के मन में कौतूहल जाग उठा। युवतियों और वृद्धाओं ने दूर-दूर खड़ी होकर महामाया को घेर लिया। उनकी मुखिया थी एक वृद्धा जिसका नाम था दया दाई। वह गर्भ-मोचना-प्रक्रिया की कला में निष्णात थी। प्रसवासन्न स्त्रियों को संतोन्नोपत्ति के समय सहायता करना वह अपना धर्म समझती थी। अपनी शिष्याओं के साथ वह अपने हाथ में ढाक, केले और साल के पत्ते, शहद, कन्द, मूल, फल और अनेक प्रकार की जड़ी-बूटियाँ लिये हुई थी।

दया दाई अनुभवी तो थी ही, तुरन्त उसे पता चल गया कि कपिलवस्तु महिषी प्रसवासन्न है। वह दाई ही नहीं, ज्योतिषी भी थी। प्रणाम करके महामाया से बोली, "महादेवि! आप अतिशीघ्र शिशु को जन्म देने वाली हैं।"

"तुम्हारी बातों से ऐसा प्रतीत होता है कि तुम सिद्धहस्त दाई हो।"

"देवि! चिन्ता न करें। मैं आपकी हर प्रकार की सेवा करूँगी।"

"ठीक है। मैं इस वन के प्रकृति-वैभव को देखकर प्रफुल्लित हो उठी हूँ। शाल के मनोहर फूलों को तोड़ने के लिए मेरा मन ललक उठा है।"

"महारानी! आज बैशाख की पूर्णिमा है। आज सोलह कलाओं से युक्त चाँद उगेगा। अतः आपके गर्भ से जो शिशु मुक्त होगा वह बत्तीस कलाओं से युक्त होगा।"

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

"तू तो बड़ी ज्ञानी है रे! ज्योतिष कहाँ से सीखी है?"

"महर्षि असित और देवल की सेवा बजाकर। आप चिन्ता न करें, हाथ ऊँचा कर शाल या अशोक में जिसका फूल पसन्द हो, तोड़ लें।"

महामाया ने पंजों के बल खड़ी होकर जैसे ही फूल को तोड़ने के लिए दायाँ हाथ बढ़ाया, डाली की शाखा शिखा के पुष्प सहित उसके हाथ में आ गई। पर उसी समय उनके गर्भ से आलोक-पुंज पुत्र का जन्म हो गया।

दया दाई अपनी शिष्याओं सहित चौकन्ना थी। पत्तल पर कर्पाश बिछाकर वह पहले से तैयार थी। हाथ आगे बढ़ाकर पत्तल पर रखे सूप पर शिशु को लोक लिया। हँसिया तो उसके पास था ही, झट से नवजात शिशु का नाल काटकर उसे महामाया के गुप्तांग से अलग कर दिया। सबसे पहले उसने शिशु को कर्पास के फाहे पर रखकर मधुप्राशन कराया और तत्पश्चात माँ के स्तन का प्रथम दुग्ध-पान।

प्रसव-भार से मुक्त होने पर महामाया बोली, "दाई दया! आज मैं पितृऋण से छुट्टी पा गई।"

"पुत्र-जनना एक प्रकार का परिवर्तन है। संसार में कोई चीज शाश्वत नहीं अपितु अनित्य है। भावी विकास है।"

"दया! तुम तो बड़ी ज्ञानी है। जरा परिवर्तन-प्रक्रिया समझाओ?"

"महारानी! समस्त प्राणियों में छः प्रकार के परिवर्तन होते हैं।"

"कौन से?"

"जन्मना, बड़ा होना, संसार में कुछ काल तक रहना, सन्तानोत्पत्ति, वृद्धावस्था और मृत्यु।" "दया दाई! तुम ज्ञान की अगार हो।"

"महारानी! क्या पुत्रोत्पत्ति के समय आपने ब्रह्मांड और वायुमंडल की अपूर्व घटनाओं को लक्ष्य किया?"

"नहीं रे! दर्द के कारण मेरी आँखें बन्द थीं।"

"सारा जग अलौकिक आभा से मंडित हो गया। आकाश जगमग-जगमग करने लगा। इन्द्र और अन्य देवता अपने पुष्पक विमानों पर बैठकर फूलों की वर्षा करने लगे। हिमालय की वर्फाच्छादित चोटियाँ जाज्वल्यमान हो उठीं।"

"ठीक है। अब स्नान कराओ।"

"महारानी! तिलर नदी तो यहाँ से दूर है। झील में ही स्नान करना है। आप स्वतः स्नान कर लीजिए।"

"और तुम?"

"मैं अपने भगवान को नहलाऊँगी। इनसे अपना उद्धार करवाऊँगी।"

"दया। मुझे डर लग रहा है।"

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

"डरिये मत। पास में ही मैं जो हूँ।"

जब महारानी स्नान कर साड़ी और चोली पहनकर स्वस्थ हुई तो दया ने अनेक प्रकार की बूटियों को दूध में मिलाकर उन्हें दुग्ध-पान कराया। महामाया की सारी थकावट पलभर में काफूर हो गई। उनका रूप-लावण्य ताजगी, आनन्द एवं उत्साह से आप्लावित हो उठा।

अपने स्वतःस्फूर्त उत्तरदायित्व से स्वतंत्र होकर आदिवासी दाई बोली, "महारानी जी! अब आनन्द-विभोर देहदह एवं कपिलवस्तु का राजपरिवार अतिशीघ्र पधारने वाला है। उनके आने के पहले मैं रफूचक्कर होना चाहती हूँ।"

"क्यों?"

"नहीं तो, वे मुझे और मेरी सहेलियों को बन्दी बनाकर सदा के लिए गुलाम बना लेंगे।"

"अच्छा। तुम तो ज्योतिषी हो। एक बात तो बता?"

"क्या मैं अपनी पुत्रवधू का डोला उतार सकूँगी?"

"नहीं, महारानी! वात्सल्य-प्रेम तो आपके भाग्य में लिखा ही नहीं है। पुत्र के भाग्य में भी माता के अमृतोपम स्तनदुग्ध-पान का संयोग नहीं लिखा है। एक सप्ताह बाद आपको मोक्ष हो जाएगा।"

महामाया : लुम्बिनी से कपिलवस्तु में

जब अञ्जन और शुद्धोधन को महामाया की गोद में दिव्य शिशु के आगमन का समाचार मिला तो उन दोनों का हृदय उछाह से आप्लावित हो उठा। अञ्जन के नेतृत्व में देवदह का जनसमूह और शुद्धोधन के पीछे-पीछे कपिलवस्तु के लोग गाते-बजाते, नाचते, उछलते-कूदते लुम्बिनी की ओर चल पड़े। लुम्बिनी वन में दोनों राजधानियों के नागरिकों का संगम हुआ। लुम्बिनी वन पवित्र तीर्थ बन गया। विराट जन-समूह को देखकर जहाँ वृक्षों की शाखाओं की पत्तियों में छिपकर पक्षी चहचहाने लगे वहाँ हिरन, खरगोश, नीलगाय और बाराह डरकर नौ दो ग्यारह हो गए। थोड़ी देर तक रास-विलास चलता रहा। आखिर थे तो लोग राजघराने के। जब सब लोगों का हृदय मनोहर और विलक्षण शिशु को अवलोक कर जुड़ा गया तो दोनों नगरों के लोग अपने-अपने घरों की ओर चल पड़े।

नवजात शिशु और महामाया के स्वागत के लिए कपिलवस्तु को नववधू की तरह सजा दिया गया। राजमार्गों और गली-गली में मखमली कपड़े बिछ गए। पेड़ों और भव्य भवनों पर टँगे रंग-बिरंगे सुगंधित पुष्पों से संग्रथित बन्दनवार पथिकों के मन को अपनी ओर आकर्षित कर रहे थे। जगह-जगह पर चंदन घिस-घिसकर

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

छिड़क दिया गया था।

राजमहल के बर्हिद्वार पर बंदनवार लटका दिये गए और रंग-बिरंगे झण्डे हवा के झोंकों में उन्मुक्त लहराने लगे। राजमहल में प्रविष्ट होने के पहले जनसमूह ने जय-जयकार करते हुए राज-परिवार और अलौकिक शिशु का स्वागत किया। जनता के उत्साह और हर्ष को देखकर शुद्धोधन खुशी से झूम उठे।

पुत्र-जन्म के उपलक्ष्य में संभ्रान्त लोगों के घर मिठाइयाँ और फल भेजे गए। किन्नर-किन्नरियों, नर्तक-नर्तकियों, नट-नटिनों तथा चारणों को दान-दक्षिणा दिया गया पर हलवाहों, चरवाहों, गोबरहारों तथा दास-दासियों की ओर किसी ने आँख उठाकर भी नहीं देखा। आखिर बेचारे थे तो दलित ही।

महर्षि असित का पदार्पण

राजमहल में जब शिशु और माँ का स्वागत एवं रास-विलास सम्पन्न हो गया तो शुद्धोधन को महर्षि असित की याद आई। तुरन्त महामात्य उदायी से बोले, "मंत्रीवर। रथ में कलाराशि घोड़ों की बनधवा लो और महर्षि असित के आश्रम पर चले जाओ।"

"राजन्! उनसे क्या निवेदन करूँ?"

"उदायी! वह सर्वज्ञ महर्षि हैं उन्हें वायु की तरंगों तथा आकाश में चमचमाते हुए नक्षत्रों से यह संकेत अवश्य मिल गया होगा कि महामाया ने अपनी कोख से कामदेव की सुन्दरता को मात देने वाले अनुपम बालक को जन्म दिया है।"

"महाराज! आपका अनुमान शत-प्रतिशत सत्य है!"

"तो उनके आश्रम पर जाकर विनम्रतापूर्वक बोलो कि ऋषिवर आपको शाक्य कुल शिरोमणि शुद्धोधन ने याद किया है।"

"तथास्तु।"

घोड़ों की गति बड़ी ही क्षिप्र थी। अतः जैसे ही उदायी रथ पर बैठे, वे सरपट मारने लगे। आश्रम के सिंहद्वार पर घोड़े ठिठक गए। स्वगतार्थ वहाँ एक बालक खड़ा था। रथ देखकर वह सतर्क हो गया। रथ से उतरकर उदायी ने बालक के पास जाकर पूछा, "वटुक जी! क्या महर्षि असित समाधि से मुक्त हो चुके हैं?"

"हाँ! सबसे पहले आप अपना परिचय तो दें।"

"मैं कपिलवस्तु नरेश का महामात्य हूँ।"

"मंत्रिवर। अकिंचन का नमन स्वीकार करें।"

"चिरंजीवी भव।"

"धन्यवाद। चलिए। आपको मामाश्री से मिलवा दें।"

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

"उदायी को देखते ही महर्षि असित बाग-बाग हो गए। भाव-विह्वल हो बोले, "उदायी की जय, शुद्धोधन की जय, विश्व-जननी महामाया और दिव्य नवजात शिशु की जय।"

"ऋषिवर! आप तो सचमुच ही सर्वज्ञ और त्रिकालीदर्शी हैं। आपको पहले से ही सब कुछ ज्ञात है।"

"मंत्रिवर! ज्ञात क्यों न हो? योगेश्वर ने दिव्य-चक्षु जो प्रदान की है।"

"ऋषिवर! महाराज ने आपको अपने राजमहल में बुलाया है। रथ तैयार है। आसन ग्रहण करने की अनुकंपा करें।"

"चलो, चलते हैं।" कहकर, अपने भांजे नालक को साथ लेकर रथ में वह बैठ गए।

सारथी ने घोड़ों की लगाम खींची और पलभर में वे हवा हो गए।

जब रथ मुख्यद्वार पर पहुँचा तब द्वारपाल महर्षि के पास आया और उनका चरण-रज हाथों पर लेकर अपने मस्तक पर चढ़ाया। हाथ का सहारा देकर उसने महर्षि को रथ से नीचे उतारा। उदायी ने उसे आदेश दिया, "द्वारपाल! महाराज को जाकर यह सूचना दे दो कि असित मुनि आ गए हैं। मैं उन्हें लेकर नरेश-कक्ष में आ रहा हूँ।"

राजमहल पहले से ही सज-धजकर तैयार था। किसी के घर पर ऋषि-महर्षि का पधारना बड़ी बात थी। सारे नगरवासी दर्शन के लिए उमड़ पड़े। सपरिवार शुद्धोधन को देखकर असित मुनि फूले न समाए। परम्परा का पालन करते हुए उद्घोषणा किए, "महाराज शुद्धोधन की जय, सारे राज-परिवार की जय। आलोक-पुंज नवशिशु की जय।"

प्रत्युत्तर में शुद्धोधन ने सपरिवार ऋषिवर को नमन किया। पुनः प्रमुदित मन से मुनिवर ने समस्त परिवार को मंगलमय आशीर्वाद दिया।

शुद्धोधन बोले, "महर्षि! आप और नालक आसन ग्रहण करें?"

कृतज्ञता प्रकट करते हुए मुनिवर बोले, "राजन्! आपने जिस हेतु मुझे बुलाया है, स्पष्ट करें?"

"भगवन! आप तो सर्वज्ञ भी हैं और अंतर्यामी भी हैं। संसार की कोई भी नूतन घटना आपकी दिव्य आँखों से कहाँ ओझल हो सकती है?"

"हाँ, राजन्! हाँ, लुम्बिनी वनस्थली की छाती पर बैशाख पूर्णिमा को महामाया के गर्भ से जैसे ही परिवर्तन कामी दिव्य शिशु का अवतरण हुआ, सारा विश्व एक अलौकिक आभा से देदीप्यमान हो उठा। सभी दिशाओं के स्वामी वायुयानों पर बैठकर पुष्प-वर्षा करने लगे। इन्द्र भी चुप नहीं बैठा। नन्दनकानन

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

में शची और दिव्यांगनाओं के साथ नाचने-गाने लगा। नारद जी वीणा बजा-बजाकर नाचने लगे। आकाश से उद्घोषणा हुई कि सम्यक् बुद्ध अवतरित हो गया है। सारी प्रकृति मुस्करा उठी।"

शुद्धोधन पूछ बैठे, "मुनिवर। अद्भुत बात है। नवजात शिशु की सारी लीला प्रकृति के रम्य परिवेश में ही घटित हुई।"

"राजन्! मनुष्य विराट प्रकृति का अविभाज्य हिस्सा है। अतः हर मनुष्य को प्रकृति के पल-पल परिवर्तित रूप एवं वेश को एकाग्रचित्त से निहारते रहना चाहिए और जीवन की शिक्षा ग्रहण करते रहना चाहिए।"

महाराज शुद्धोधन एवं महर्षि असित के बीच संलाप चल ही रहा था कि गोद में शिशु को हिलाती-डुलाती, दुलारती, चूमती एवं मुस्कराती महामाया आ गई। शिशु को देखते ही असित का मन ललक उठा। बोले, "महारानी! आपने युग प्रवर्तक शिशु को जन्म देकर त्रस्त विश्व का बहुत बड़ा कल्याण किया है।"

"मुनिवर! यह सब तो आप लोगों के पुण्य और आशीर्वाद से संभव हुआ है।"

"महारानी! क्या आप मेरी दोनों हथेलियों पर मंगलकर्त्ता शिशु को कुछ पल के लिए रख सकती हैं?"

"भगवन! इसीलिए तो आपके सामने लाई हूँ। यह तो गहरी नींद में सो रहा था। पर, जैसे ही आपकी दिव्यवाणी इसके कानों में तरंगित हुई, यह जाग उठा और मुस्कराने लगा।" अपने ललाम उद्गार को विरमित कर महामाया ने अपने हृदय के टुकड़े को ऋषिवर की हथेली पर रख दिया।

शिशु के हाथ और ललाट की विलक्षण रेखाओं को देखकर मुनिवर ने सर्वप्रथम उसे सिर नवाकर प्रणाम किया। महर्षि के अनुपम व्यवहार एवं हाव-भाव को देखकर शुद्धोधन का हृदय गद्गद हो उठा। हाथ जोड़कर मुनिवर से बोले, "भूदेव। आप वयोवृद्ध हैं। आपको शिशु को आशीर्वाद देना चाहिए पर आप तो उसे प्रणाम कर रहे हैं। राजन्। यह असाधारण शिशु है। जरा इसके भव्य ललाट को तो देखें। इसकी आभा भगवान भास्कर की द्युति को मात कर रही है।"

शुद्धोधन ने एकाग्रचित्त होकर शिशु को देखा और महर्षि के उद्गारों से सहमत होकर कहा, "आपका कथन बिल्कुल सत्य है।"

"राजन्! शिशु की हस्तरेखाएँ यह संकेत कर रही कि यह शिशु अद्भुत महापुरुष होगा।"

"ऋषिवर! क्या राम और श्रीकृष्ण से भी श्रेष्ठतर होगा?"

"अवश्य!"

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

"क्या प्रमाण है?"

"महाराज! मर्यादा पुरुषोत्तम राम केवल बारह कलाओं से युक्त थे और योगेश्वर कृष्ण सोलह कलाओं से युक्त थे पर यह शिशु 32 लक्षणों तथा अस्सी अनुव्यंजनों से युक्त है।"

ऋषिवर की वाणी सुनकर जन-समूह खुशी से उछल पड़ा। समवेत स्वर सभी शिशु की जयकार करने लगे।

शुद्धोधन बोला, "महर्षि जी। क्या मेरे अच्छे कर्मों के कारण मेरे घर में दिव्य पुरुष का जन्म हुआ है?"

"हाँ, राजन्। पूर्व जन्म में मनुष्य जो कर्म किए रहता है। वह कर्म मनुष्य के साथ सोता है। मनुष्य के साथ उठ खड़ा होता है और मनुष्य के पीछे-पीछे दौड़ता है।"

"भगवान। काल तो इस धरती पर किसी पर करुणा नहीं प्रकट करता।"

"राजन्! काल का तो न कोई प्रिय है, न तो शत्रु, न कोई उसका मध्यस्थ है। वह बिना किसी भेद-भाव को सबको खींचकर ले जाता है।"

"ऋषिवर! मृत्यु एक दिन सबको इस संसार से उठा ले जाएगी फिर भी लोग अपने स्वार्थ को पूरा करने के लिए दूसरों की पीड़ा देते हैं। इसका क्या कारण है?"

"अज्ञान।"

"अज्ञान के अन्तर्गत किन चीजों की गिनती होती है?"

"राजन्! राग, द्वेष, मोह, हर्ष, शोक, अभिमान, काम, क्रोध, दर्प, तन्द्रा, आलस्य, वैर, दूसरे की उन्नति देखकर जलना, पापाचार इन सबको समवेत रूप से अज्ञान की संज्ञा दी गई है। पर....?"

"ऋषिवर! आप रुक क्यों गए? स्पष्ट कीजिए।"

"आपका यह शिशु आगे चलकर अज्ञान से स्वयं मुक्ति प्राप्त करेगा और दूसरों के लिए भी अविद्या से छुटकारा पाने का मार्ग प्रशस्त करेगा।"

"ऋषिवर! मेरा पुत्र बैशाख की पूर्णिमा को उत्पन्न हुआ है। इसके जीवन से पूनो का क्या सम्बन्ध है?"

असित मुनि मुस्कराने लगे और पलभर मौन धारण करने के उपरान्त बोले, "राजन्! आपका प्रश्न आन्तरिक जिज्ञासा का द्योतक है। आपको सारा रहस्य समझा रहा हूँ। क्या यह शिशु आषाढ़ी पूर्णिमा को महामाया के गर्भ में अवस्थित हुआ है?"

"हाँ, ऋषिवर! आपका कथन सत्य है।"

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

"राजन्! यह अलौकिक शिशु जब आषाढ़ पूर्णिमा को गर्भस्थ हुआ और बैशाख पूर्णिमा को धरती पर अवतरित हुआ है तो आषाढ़ पूर्णिमा के पवित्र अवसर पर यह उनतीस वर्ष की अवस्था में भोग-वासना से विमुख होकर संन्यासी बन जाएगा। यह इसके महाभिनिष्क्रमण का शुभ दिन होगा।"

"हाय राम! मुनिवर! आगे क्या होगा?"

"पूर्णिमा के दिन ही किसी पीपल की छाया में इसे सच्चा ज्ञान प्राप्त होगा और यह सम्यक् बुद्ध बन जाएगा।"

"महर्षि! किस अवस्था में महानिर्वाण होगा?"

"राजन्! जिस प्रकार यह शिशु शाल के वृक्ष के नीचे जन्मा है उसी प्रकार शाल की छाया में अस्सी वर्ष की उम्र इसका महानिर्वाण भी होगा। इसके जीवन का हर क्रिया-कलाप और प्रत्यक्ष-ज्ञान प्रकृति के प्रांगण से जुड़ा हुआ है।"

"प्रकृति का क्या विशेष गुण है?"

"महाराज! प्रकृति का नियम अकाट्य है। पल-पल इसमें परिवर्तन होता है। इससे यह सत्य उद्घाटित होता है कि हर वस्तु अनित्य है, क्षणभंगुर है। हर वस्तु जब नष्ट होती है तो उसी से नई वस्तु उत्पन्न होती है।"

"ऋषिवर! प्रकृति का नियम निराला है। यह जो कुछ उत्पन्न करती है वह इसके काम नहीं अपितु दूसरे के काम आता है।"

"कपिलवस्तु नरेश! प्रकृति इस शिशु का सबसे बड़ा गुरु बनेगी। त्याग इसका गुरु है। प्रकृति के प्राँगण में पाए जाने वाले पेड़ स्वयं आतप, वर्षा और सर्दी सहन करते हैं पर दूसरों को शीतल छाया, फल, लकड़ी आदि प्रदान करते हैं। बादल आत्मोत्सर्ग कर संसार को जल देता है। सूर्य प्रकाश देता है। पवन हर वक्त सबको चँवर डुलाता है। प्रकृति किसी के साथ भेद-भाव नहीं करती है। यह शिशु भी बड़ा होकर सामाजिक विषमता की जड़ को झकझोर देगा।"

"ऋषिवर! मेरा यह शिशु मेरे राज्य का उत्तराधिकारी है। क्या कपिलवस्तु का राजसुख नहीं भोगेगा।"

"लक्षण तो यही बता रहे हैं कि यदि यह राज्याकाँक्षी होगा तो चक्रवर्ती सम्राट बनेगा पर इसका संयोग मात्र दश प्रतिशत है।"

"ऋषिवर! क्या संन्यास का योग नब्बे प्रतिशत है?"

"राजन्! त्याग इसके जीवन का श्रेय और प्रेय है। अतः सांसारिक सुख का यह उसी प्रकार त्याग कर देगा जैसे केंचुल साँप की चमड़ी को त्याग देती है। पर, सम्प्रदाओं के बाह्याडम्बरों को तोड़कर एक सरलतम मार्ग की प्रतिष्ठा करेगा। शुद्ध धर्म का प्रणेता बनेगा।"

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

"ऋषिवर। संन्यास के झुकाव को रोकने और राज्योपभोग के लिए कोई उपाय बतलाएँ?"

"कामासक्ति अर्थात् कामोत्तेजना संन्यास-मार्ग का सबसे बड़ा ग्रह है। नारी ने रूप-लावण्य के आकर्षण से आज तक कौन बचा है। विषयासक्ति रूपी माल एक ऐसा लेप है जो नित्य स्नान और परिशुद्धता से भी नष्ट नहीं होता है। सौन्दर्य संसार की सभी संस्तुतियों से बढ़कर है। बड़े-बड़े ऋषि-महर्षि, मुनि आदि नारी की बाँकी अदा पर फिदा हो गए। नारद, विश्वामित्र, बृहस्पति, च्यवन, कामारि शिव आदि नारी की मोहिनी शक्ति से कहाँ बच पाए। जब शिशु युवावस्था को प्राप्त हो तो उसके आस-पास देशी-विदेशी मन-रोचक मोहनियों का जमघट लगा दीजिए।"

"ऋषिवर! मैं आजीवन आपका आभारी रहूँगा।"

राजा की बात सुनकर महर्षि असित रोने लगे। राजा का हृदय नवनीत की तरह पिघल गया। वह ऋषिवर से पूछ बैठे, "ऋषिवर आप अश्रुपात क्यों कर रहे हैं?"

"महाराज! मैं दीर्घायु हो चला हूँ। शीघ्र ही निर्वाण होने वाला है। सम्यक् बुद्ध का दर्शन नहीं कर पाऊँगा।"

"ठीक है पर नालक तो रहेगा ही।" ऐसा कहने के बाद शुद्धोधन असित को हीरा-मोती भरी थैली देने लगे। ऋषिवर ने कहा, "महाराज। मैं शीलोच्छवृत्ति का अनुगामी हूँ। अतः आपका आर्थिक अनुग्रह स्वीकार नहीं करूँगा।"

रंग में भंग

जब किसी महिला की कोख से पुत्र रत्न की उत्पत्ति होती है तब उसका जन्मोत्सव कम से कम बारह दिन तक अवश्य चलता रहता है। अगर बाप राजा हुआ तो क्या पूछना? परिवार, परिजन तथा पुरजन रास-विलास में आकंठ डूबा रहता है। बहुत दिनों के बाद महामाया की कोख पवित्र हुई थी। अतः वह अधिक मनोहारिणी बन गई थी। सचमुच जिस समय माँ के रूप में स्त्री का हृदय पवित्रता का आगार बन जाता है, उस समय उससे अधिक कोमल वस्तु संसार में नहीं रह जाती है।

महामाया के आग्रह पर महाराज शुद्धोधन ने शिशु के जन्म के पाँचवें दिन नामकरण-संस्कार का आयोजन कर दिया। ख्यात-प्रख्यात ज्योतिषाचार्य इस समारोह में सम्मिलित हुए। भविष्यत् वक्ताओं ने जन्म समय के ग्रह-नक्षत्रों पर अच्छी तरह विचार किया। फलितार्थ निकला—सिद्ध+अर्थ। सिद्ध का अर्थ होता है—अन्तर्दृष्टि प्राप्त मुनि या महापुरुष और अर्थ का अर्थ है—जिसने अपना अभीष्ट अर्जित कर

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

लिया है। इन दोनों शब्दों के योग सिद्धार्थ शब्द बना।

विद्वत् सभा का प्रधान बोला, "ग्रह-नक्षत्रों पर विचार करने के बाद ऐसा फल निकलता है कि यह शिशु प्रौढ़ होने पर अपूर्व सिद्धि प्राप्त करेगा। अतः आज से इस बालक को सिद्धार्थ नाम से पुकारा जाएगा।"

"भूदेव! आपने तो अति उत्तम नाम विचारा है।"

बीच में महामाया बोल उठी, "भूदेवो! हम सूर्यवंशी क्षत्रिय हैं और महात्मा गौतम ऋषि के वंशज है। अतः सिद्धार्थ के आगे गौतम शब्द जोड़ दिया जाये।"

ज्योतिषी को यह सुझाव औचित्यपूर्ण लगा। वह बोला, "देवि! आपका सद्विचार सारगर्भित है। मान्य है।"

महामाया की खुशी का ठिकाना न रहा। बोली, "पंचो! प्रेम से बोलो राजकुमार सिद्धार्थ गौतम की जय!"

जनता बोल उठी, "राजकुमार सिद्धार्थ गौतम की जय।"

सिद्धार्थ के जन्म का छठा दिन था। महामाया ने स्वयं तथा शिशु को दासियों द्वारा अरगजा-लेप करवाया और पानी में केवड़ा एवं गुलाब जल छिड़ककर शिशु को स्नान करवाया और स्वयं स्नान किया। देवी-देवताओं की आराधना करने के बाद वह प्रमुदित थीं। पर नियति नटी को महामाया का आनन्द रास न आया। भवितव्यता को कौन जान सका है?

नृत्य और गाना-बजाना जोर-शोर से चल रहा था। अचानक महामाया अस्वस्थ हो गईं। दासियों और चेटियों ने हाथों से सहारा देकर महारानी को शयनकक्ष में ले जाकर सुला दिया। शीघ्र ही वह निद्रा-निमग्न हो गईं। पुण्यात्मा थीं। स्वप्न आ गया। देखा कि यमदूत सिरहाने खड़ा है। हड़बड़ाकर जाग उठीं। तुरन्त उन्हें आभास हो गया कि अब मेरी इहलौकिक-लीला समाप्त होने वाली है। एक दासी से बोली, "शीघ्र महाराज और महाप्रजापति को बुला लाओ?"

"अच्छा।"

समाचार पाते ही महाप्रजापति और शुद्धोधन महामाया के पास पहुँच गए। कमल-पुष्प-सी उन्मीलित आँखों को देखकर वह घबड़ा उठे। बोले, "देवि! तुम क्यों बेचैन दिखलाई पड़ रही हो?"

"महाराज! कहा-सुनी क्षमा करना। जो होना होता है वह होकर रहता है। चिन्ता न करें। मृत्यु को कौन रोक सकता है। अब दीदी से बातचीत करने दें।"

महामाया के सिर पर हाथ रखकर महाप्रजापति बोली, "महारानी! क्या आज्ञा है?"

"दीदी! ब्रह्मा का यह अमिट लेख है कि हर माता को वात्सल्य प्रेम का सुख

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

बदा नहीं रहता है। मैं सिद्धार्थ के अनुपम सत्यान्वेषण का आनन्द नहीं ले पाऊँगी। अतः आपसे निवेदन है कि मातृहीन सिद्धार्थ का यथोचित लालन-पालन करना। उसे मातृहीनता का बोध मत होने देना।"

"महारानी! माँ का स्थान संसार में दूसरा कोई नहीं ले सकता। आप निश्चिन्त होकर महाप्रस्थान करें। नन्द की तरह मैं सिद्धार्थ का भी पालन-पोषण करूँगी।"

"दीदी! तुम्हारे आश्वासन से मुझे परम शक्ति मिली है।" ऐसा कहकर वह बायीं करवट लुढ़क गई।

सिद्धार्थ को मातृ-स्नेह केवल सात दिन तक प्राप्त हुआ। माँ के वियोग का दुःख उसके स्मृति-पटल पर सदा के लिए अंकित हो गया।

वंश-वृक्ष

भाइयों में सबसे बड़ा होने के कारण सिंहहनु का बड़ा पुत्र शुद्धोधन कपिलवस्तु का राजा तो था पर सभी भाई एक साथ रहते थे। परिवार था संयुक्त। शुद्धोधन का दूसरा पुत्र भी था। नाम था नन्द। उसका जन्म महाप्रजापति की कोख से हुआ था।

शुद्धोधन के भाइयों में एक-दूसरे के प्रति असीम प्रेम था। शुक्लोदन के दो पुत्र थे। एक का नाम था महानाम और दूसरे का अनिरुद्ध। अमितोदन के लाड़ले का नाम था आनन्द। अमिता, शुद्धोधन की बहन उसी के साथ रहती थी। देवदत्त उसी की कोख से पैदा हुआ था। नन्द और आनन्द सिद्धार्थ से उम्र में छोटे थे और महानाम बड़ा।

छओ लड़के साथ-साथ उठते-बैठते, खेलते-कूदते, खाते-पीते और नाचते-गाते थे। पर शैशवावस्था से सिद्धार्थ की बुआ का लड़का देवदत्त उससे ईर्ष्या और द्वेष करता था और सिद्धार्थ के प्रति उसकी द्वेषाग्नि अन्तिम वेला तक शान्त न हुई।

यशोधरा

देवदह में अञ्जन कोलिय के गणराज्य से सटा हुआ एक दूसरा प्रजातंत्र (गण) राज्य था जिसका राजा था दण्डपाणि। अञ्जन की भाँति उसका भी शाक्यों में सम्मान था। अपार वैभव, धन-दौलत तथा भव्य प्रासाद था उसके पास। उसका विवाह शाक्य कन्या सुकन्या से हुआ था। उसका रूप-लावण्य बड़ा ही मनोहर और आकर्षक था। जैसे उसका रूप सौन्दर्य का आगार था वैसे ही उसका दिल भी करुणा का सागर था। बहुत बड़ी शौकीन थी। रेशमी परिधानों तथा हीरा-पन्ना

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

जड़े आभूषणों को धारण कर जब वह मंदिर तथा तीर्थ-स्थानों पर जाती थी तो उसे लोग टकटकी बाँधकर देखते रह जाते थे। दण्डपाणि और सुकन्या का वैवाहिक जीवन अत्यन्त ही सुखद था।

दण्डपाणि के पुत्र तो थे पर कन्या नहीं थी। एक दिन मुस्कराते हुए पत्नी से बोले, "प्रिये! भव-सागर से मुक्ति के लिए कन्यादान आवश्यक है।"

"नाथ! चिन्ता क्यों करते हैं। ईश्वर की बाँह बहुत लम्बी है। कोई न कोई उपाय वह अवश्य करेंगे।"

"प्रिये! भगवान सहायता तो अवश्य करता है पर उसकी, जो एकाग्रचित्त से पूजा करता है। पूजा और जप-तप के साथ-साथ उद्यम तो स्वयं ही करना पड़ता है।"

"नाथ! उपाय तो बताइए।"

"शिव-पार्वती की आराधना करो। माँ दुर्गा की सच्ची निष्ठा से पूजा करो।"

"नाथ! आज से ही शिवलिंग और नन्दी पर वेल-पत्र, धतूरा, दूब, मदार का पुष्प और गोदुग्ध चढ़ाऊँगी। रोजना सायं-प्रातः दुर्गा स्तोत्र का पाठ करूँगी।"

"प्रिये! इतना ही नहीं, नौरात्र में नौ दिन उपवास भी करना होगा।"

"प्रियवर! आपकी मनोकामना पूरी करने के लिए मैं हर संभव प्रयास करूँगी।"

ग्रीष्मावसान हो रहा था। अचानक आकाश में काले-काले बादल उमड़ आए। पपीहा पी कहाँ-पी कहाँ की रट लगाने लगे। मोर मोरनी को नाच-नाचकर रिझाने लगा। सभी प्राणी मिलनातुर हो उठे। फिर दण्डपाणि और सुकन्या चुप कहाँ बैठे? दण्डपाणि ने अपनी प्रियतमा को बाँहों में भर लिया। संसर्ग हो गया। सुकन्या गर्भवती हो गई।

शिशिर ऋतु अपना बल दिखाकर चली गई। वसन्त का आगमन हो गया। प्रकृति अपनी छटा दिखलाने लगी। रसाल, कटहल, महुआ आदि वृक्ष बौरों और फूलों से आच्छादित हो गए। प्रकृति का सारा प्रांगण महमहा उठा। महाशिवरात्रि का पावन पर्व था। युवक-युवतियों, प्रौढ़-प्रौढ़ाओं एवं वृद्ध-वृद्धाओं के मन में बाबा भोलेनाथ के प्रति महती श्रद्धा और भक्ति थी। शिव के प्रति श्रद्धालुओं के मन में समर्पण भावना क्यों न हो? जो भी उन्हें प्रेम से भजता, उसका अभीष्ट अतिशीघ्र पूरा हो जाता था। छोटे से बड़े सब व्रत रहते थे। भोर होते ही देवीदह के शिवालयों के सामने भक्त पंक्तिबद्ध होकर खड़े हो गए। रुद्राभिषेक करके दण्डपाणि शिव-मंदिर से वापस आकर अपने महल में घुसे, महारानी प्रसव-पीड़ा से कराहने लगी। दासियों में उसकी एक दासी अनुभवी तथा गर्भमोचन की कला में

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

अत्यन्त ही निपुण थी। महारानी के कान और नाक में जड़ी-बूटी लगाकर वह धीरे-धीरे उसके हाथ-पैर और पेट को सहलाने लगी। बस क्या? पलभर में सुकन्या ने अपने गर्भ से एक विलक्षण और चित्ताकर्षक कन्या को जन्म दिया। कन्या रत्न को पाकर दण्डपाणि के आनन्द की सीमा न रही। गद्‌गद होकर कहने लगे, "शिव और पार्वती की अनुकम्पा से हमें अद्वितीय कन्या को प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।"

छठी के दिन सुकन्या ने अपने अंग-प्रत्यंग में दासियों से अरगजा लेप करवाया और गर्म पानी में केवड़ा और गुलाबजल छिड़कवाकर अच्छी तरह स्नान किया। मखमली तौलिये से शरीर को अच्छी तरह पोंछकर रेशमी वस्त्र धारण किया। आभूषणों से अपने शरीर को अलंकृत कर गोद में कन्या शिशु को लेकर उस कक्ष में गई जहाँ लोग उसे बधाई देने के लिए उत्सुक थे। दासियों ने जमीन पर लेटकर नमन किया।

दण्डपाणि अपने पुरोहित के पास बैठे हुए थे। महारानी को देखकर पंडित जी खड़े हो गए और बोले, "महारानी सुकन्या की जय"। नमन कर, महारानी बोली, "पंडित जी! मेरी लाड़ली कन्या को पुकारने के लिए एक अच्छा-सा नाम रखिए?"

"देवि! आज्ञा शिरोधार्य है।"

दस मिनट तक पंडित जी पंचांग देखते रहे और उसके बाद पंचांग को बन्द कर बोले, "आपके कन्या शिशु को यदि यशोधरा नाम से पुकारा जाय तो भला होगा। राजा-रानी खुशी से उछल पड़े और बोले, अहा कितना सुन्दर नाम है!"

यशोधरा का रंग गोरा, मुख पूनो के चाँद-सा, आँखें बड़ी-बड़ी और तिरछी, दाँत दाड़िम के दानों-से, ओष्ठ पके बिम्ब-फल के समान और बाल काली नागिन से थे। अपने अनुपम रूप के कारण यशोधरा लोगों के आकर्षण का केन्द्र बन गई। नर-नारी उसे घेरे रहते थे। अत्यधिक लाड़-प्यार दिखलाने के लिये लोग उसे अनेक नामों से पुकारने लगे। कोई उसे भद्रा कापिलयानी के नाम से पुकारता तो कोई भादा कच्चाना। कुछ लोग उसे सुभद्रका कहते और कुछ लोग बिम्बा या गोपा।

सिद्धार्थ की शिक्षा-दीक्षा

सिद्धार्थ बचपन से ही एकाग्रचित्त, शान्त, विचारशील, संयमी, आचार-विचार-मग्न एवं दयालु था। बचपन में कभी-कभी गौशाला में जाकर बछियों एवं बछड़ों को अपने कोमल हाथों से सहला-सहलाकर प्यार जताता था। ग्रीष्मकाल में तृषित

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

पक्षियों की प्यास बुझाने के लिए कूंडे में पानी भरकर रख देता था। धीरे-धीरे सिद्धार्थ पाँच वर्ष का हो गया। यह पठन-पाठन के श्रीगणेश करने की अवस्था मानी जाती थी।

शुद्धोधन होनहार सिद्धार्थ की शिक्षा के लिए बहुत ही सतर्क एवं जागरूक थे। अचानक वसन्त पंचमी का महान पर्व आ गया। इस शुभ अवसर पर बच्चों को अक्षर-ज्ञान कराना अत्यन्त ही शुभ माना जाता था। अतः शुद्धोधन ने अपने पुरोहित को बुलाकर पूजा-अर्चना कर पंचवर्षीय सिद्धार्थ के पठन-पाठन का शुभारंभ करवाया। परिवार के अन्य बच्चे भी सिद्धार्थ के साथ-साथ संस्कृत और पाली का अध्ययन करने लगे। सिद्धार्थ दूसरे बच्चों की अपेक्षा अधिक गंभीर और एकाग्रचित्त था। वह सतर्क होकर लगन और निष्ठा से अध्ययन करता था। अतः तीन साल के अन्दर वह संस्कृत, पाली, प्राकृत आदि भाषाओं में निष्णात हो गया। उसकी स्मरणशक्ति इतनी पैनी थी कि एक बार जो कुछ पढ़ लेता था, सदा के लिए उसके मानस-पटल पर अंकित हो जाता था।

आठवाँ वर्ष लगते ही शुद्धोधन ने महामात्य उदायी को बुलवाया। राजा को सिर झुकाकर उसने कहा, "महाराज! क्या आज्ञा है?"

"मंत्री जी! परिवार के सभी बच्चों को रथ पर बैठाकर महर्षि देवल विद्यापीठ चले जाओ और वहाँ के आचार्यों को सिद्धार्थ एवं अन्य बच्चों को पढ़ाई-लिखाई का उत्तरदायित्व सौंप दो।"

"महाराज! आज्ञा शिरोधार्य है।"

उदायी राज-परिवार के सभी बच्चों को साथ लेकर विद्यापीठ के प्रधान कार्यालय में पहुँच गया। अध्यापक-कक्ष में रामशास्त्री, ध्वजाचार्य, महोपध्याय लक्ष्मण, आचार्य मंत्री, आचार्य कुडञ्ज, भोज शास्त्री, आचार्य सुयाम और सुदत्त शास्त्री आपस में योग के संदर्भ में विचार-विमर्श कर रहे थे। अचानक आचार्यों की निगाह उदायी तथा राजपरिवार के बच्चों पर पड़ गई। बच्चों को देखकर उनका हृदय उसी प्रकार खिल उठा, जैसे सूर्य की प्रथम किरणों का स्पर्श पाकर कमल-पुष्प उन्मीलित हो उठते हैं। सेवक को बुलाकर आचार्यों ने मंत्री तथा बच्चों को कन्द, मूल, अंकुर खिलाकर मधु का रस पिलवाया। सिद्धार्थ में अजब का गुरुत्वाकर्षण था। अतः आचार्यगण विलक्षण छात्र को गौर से देखने लगे।

राम शास्त्री ने महामात्य से पूछा, "मंत्री जी! क्या यह वही बालक है, गर्भावस्था में जिसके बारे में हम लोगों द्वारा भविष्यवाणी की गई थी।"

"आचार्य श्री! आपका अनुमान अक्षरशः सही है।"

"इसका नाम क्या है?"

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

"सिद्धार्थ।"

"अच्छा! आने का हेतु स्पष्ट कीजिए?"

"आज से सिद्धार्थ तथा अन्य बालकों की शिक्षा-दीक्षा का भार आप लोगों पर रहेगा।"

"मंत्री! आपके प्रस्ताव का स्वागत है। सच्ची लगन और निष्ठा से हम अपने धर्म का निर्वहण करेंगे।"

"आप लोगों को कितना पारिश्रमिक दिया जाय?"

"मंत्रीवर। हम ब्राह्मण हैं। पढ़न-पढ़ाना हमारा धर्म है। ब्राह्मण वंश में शुल्क लेकर विद्या-दान पाप समझा जाता है। द्रव्य लेकर छात्र को पढ़ाने वाले शिक्षक को नीची निग़ाह से देखा जाता है। चिन्ता न करें। छात्रों के खान-पान की सारी व्यवस्था विद्यापीठ स्वतः कर लेगा। विद्यापीठ में धनाढ्य एवं निर्धन छात्र को समान दृष्टि से देखा जाता है।"

"आचार्यो! आपका कथन सही है। त्याग, अनुशासन, ब्रह्मचर्य, पवित्रता उदारता, सहनशीलता, सादगी, परोपकार, ज्ञानार्जन, संयम, औदार्य और विद्यादान से ही ब्राह्मण पूजनीय है और इसीलिये वह भूदेव कहलाता है।"

"धन्यवाद!"

"आचार्यो! अब घर लौटने की आज्ञा प्रदान करें।"

"तथास्तु।"

प्रवेश-प्राप्ति के दिन सभी छात्र शयनकक्ष में रखे तख्तों पर कम्बल बिछा कर सो गए। सिद्धार्थ जैसे ही तख्ते पर लुढ़का, गहरी निद्रा में निमग्न हो गया।

ब्राह्ममुहूर्त के समय पक्षी चहचहाने लगे। सिद्धार्थ सबसे पहले उठा। नित्यक्रिया से फारिग होकर रोहिणी के शीतल जल में कूद पड़ा। तैराकी में उसे विशेष आनन्द प्राप्त हुआ। बाहर निकलकर परिधान धारण कर पद्मासन लगाकर बैठ गया। पलभर में ध्यान-मग्न हो गया।

सूर्योदय होने पर विद्यापीठ का घंटा बजा और छात्र अपनी-अपनी कक्षा में। सामूहिक सरस्वती वंदना हुई। तीन बार ॐ शान्तिः कहकर और सभी प्राणियों का कल्याण हो का उच्चारण कर विद्यार्थी अपना-अपना आसन ग्रहण किए।

राम शास्त्री बोले, "राजकुमार सिद्धार्थ! शास्त्रार्जन, शस्त्रास्त-संचालन एवं धनुर्विद्या में दक्षता तभी प्राप्त होती है जब शिक्षार्थी का मन एकाग्र और सान्द्रित होता है।"

"गुरुवर! मेरा ऐसा विचार है कि जिसने अपने मन को जीत लिया है, संसार में उसी की विजय होती है।"

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

"सिद्धार्थ! तुम तो तत्त्वदर्शी प्रतीत होते हो।"

"गुरुवर! आप तो मनोविज्ञान के पंडित हैं। क्या मन का अच्छी तरह विश्लेषण कर समझा सकते हैं?"

"क्यों नहीं। सुनो। मन की विभिन्न अवस्थाएँ होती हैं। जैसे, विक्षिप्त, उद्विग्न, चंचल, विषयासक्त आदि। पर मन दो प्रकार का होता है—परिशुद्ध और अशुद्ध।"

"गुरुवर शुद्ध मन क्या है?"

"परिशुद्धता मन की वह अवस्था है जिसमें वह सभी कामनाओं और विकारों से मुक्त होता है। अच्छे कर्मों, योगाभ्यास तथा आत्म-संयम से वह गंगा-जल के समान परिमार्जित, विमल और पवित्र हो जाता है।"

"और अशुद्ध मन?"

"जब मन कामाशक्त और अनेक प्रकार की कामनाओं से आलिप्त होता है तब वह ऐन्द्रिक-सुख की प्राप्ति के लिए चंचल होकर सरपट मारता है। ऐसी अवस्था में वह बिल्कुल अशुद्ध होता है।"

सिद्धार्थ खुशी से उछल पड़ा और बोला, "गुरुदेव। आप तो सच्चे अर्थों में मनोविश्लेषक एवं मनोवैज्ञानिक हैं।"

"सिद्धार्थ! सचमुच मन मनुष्य के बंधन और मुक्ति का कारण है।"

"गुरुदेव! कृपया स्पष्ट करें?"

"सिद्धार्थ! मन जब ऐंद्रिय-विषयों की ओर उन्मुख होता है तो व्यग्र हो जाता है। वह अज्ञान और अविद्या के भँवर-जाल में डूबने-उतराने लगता है। सांसारिक मायाजाल से जल्दी मुक्ति उसे नहीं मिलती। किन्तु, जब राग-द्वेष, अहंकार, ईर्ष्या, मोह, लाभ-हानि, काम-वासना आदि मनोविकारों से पूर्णतः विमुक्त हो जाता है तो मनुष्य का मन मुक्तावस्था में पहुँच जाता है।"

"गुरुवर। मुक्तावस्था क्या है?"

"सिद्धार्थ! कामनाओं का त्याग मुक्तावस्था है।"

"गुरुवर! मन तो बड़ा चंचल होता है। उसे वश में करना बड़ा दुरूह कार्य है।"

"पर, सिद्धार्थ! तुम विलक्षण बालक हो। तुममें आत्मसंयम, लगन, निष्ठा दृढ़ संकल्प शक्ति एवं अपरिग्रह की भावना है। अतः मन्मथ स्वयं तुम्हारे सामने नतमस्तक हो जाएगा।"

"गुरुवर! मुझमें आत्मबल और दृढ़ विश्वास है कि मैं अपने जीवन-लक्ष्य को अवश्य पूरा करूँगा पर कुछ उपाय तो बताइए?"

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

"यौगिक क्रिया द्वारा मन को एकाग्र करना चाहिए। मन को वश में करने के दो सोपानों (विधियों) का उल्लेख मिलता है। पहली विधि का प्रयोग ऋग्वैदिक काल में होता था।"

"गुरुदेव! समझाने का कष्ट करें?"

"सिद्धार्थ! ऋग्वैदिक काल में ऋषि-महर्षि नाक के द्वार पर ऊपरी होंठ से लेकर नाक के द्वार के बीच जो त्रिकोण है। उस पर सतर्कता एवं दृढ़तापूर्वक अपने मन को केन्द्रित करते थे और अन्तःकरण और बाहर आती-जाती साँस को गिनते थे। धीरे-धीरे दृढ़ विश्वास के साथ अभ्यास करते थे और अन्ततः वे मन पर पूर्ण नियंत्रण कर लेते। इसे आनापान कहा जाता था। इसके बाद मन को भीतर ले जाकर शरीर के अन्दर होने वाली गतिविधियों पर मन को केन्द्रित करते थे। इस प्रक्रिया को विपश्यना कहते थे। अन्त में परम सत्य का ज्ञान हो जाता था। महर्षि दधीचि, जनक और वेदव्यास ने इसी मार्ग को अपनाकर परम सत्य को प्राप्त किया था।"

"गुरुवर। दूसरी प्रणाली कौन है?"

"सिद्धार्थ! इस प्रणाली का विश्लेषण स्वयं योगेश्वर श्रीकृष्ण ने किया था। ध्यान से समझो। एक सांधक को अपने शरीर, गर्दन तथा सिर को सीधा रखकर नाक के अगले हिस्से पर मन को केन्द्रित करना पड़ता है। जब मन वश में हो जाता है तो दृढ़, संयमित, भयरहित, अहंकार, क्रोध, काम आदि से विमुक्त होकर निरमल मन से अपने अन्तःकरण का भलीभाँति निरीक्षण करना चाहिए। अभ्यास करते-करते आत्मसत्य अवश्य प्राप्त होगा। और जब मन वश में होगा तो सारा विश्व हाथ में आ जाएगा।"

"गुरुवर! क्या लोभ आत्मोन्नति में बाधक होता है?"

"सिद्धार्थ! जिस प्रकार गहरे जल वाली बहुत-सी नदियों के मिल जाने पर भी समुद्र का पेट नहीं भरता, उसी प्रकार कितने भी पदार्थ का लाभ क्यों न हो, लोभी का पेट कभी नहीं भरता।"

"अच्छा गुरुवर! क्रोध के विषय में आपका क्या विचार है?"

"सिद्धार्थ! क्रोध मानसिक दुर्बलता का परिचायक है। इसका श्रीगणेश अज्ञता से तथा अंत पश्चाताप में होता है। पर, नियंत्रित क्रोध में ऐसी आध्यात्मिक शक्ति रूपान्तरित हो सकती है जो सारे संसार को हिला दे?"

"गुरुदेव! चित्त की शान्ति से क्या लाभ होता है?"

"सिद्धार्थ जब संयम, आनापान एवं विपश्यना से चित्त प्रशान्त हो जाता है तो शुभाशुभ कर्म जड़ से विनष्ट हो जाते हैं। प्रशान्त मन वाला व्यक्ति अन्तःकरण

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

का निरीक्षण करता हुआ अक्षय आनन्द को प्राप्त करने में सफल हो जाता है।"

सायंकाल होते ही छुट्टी का घंटा बजा और सभी छात्र छात्रावास में चले गए। थके माँदे थे। खा-पीकर गहरी निद्रा में निमग्न हो गए।

प्रातःकाल सात बजे कार्यारम्भ की घंटी बजी। सभी विद्यार्थी शस्त्रास्त्र प्रयोग एवं अभ्यास के प्राँगण में जुट गए। विशाल शाल-वृक्षों की चोटी पर मिट्टी से बने पक्षियों को टाँग दिया गया था। आचार्य कुडंज जैसे ही रंगांगण में पधारे, अभ्यासार्थी सतर्क होकर खड़े हो गए। छात्रों को संबोधित करते हुए वह बोले, "प्रिय छात्रो! तुम लोग क्षत्रिय हो और वीरता, शक्ति, संकल्प, दक्षता, युद्ध में धैर्य, उदारता और नेतृत्व—ये क्षत्रियों के स्वाभाविक गुण हैं।"

"गुरुदेव! हम आज राजकुमार हैं। कल अपने शाक्यगण के राजा बनेंगे। अतः राजा की विशेषताओं से हमें अवगत कराएँ?"

"बच्चो! एक राजा को बगुले के समान एकाग्रचित्त होकर अपने उत्तरदायित्व पर गंभीरतापूर्वक मनन-चिंतन करना चाहिए। युद्धस्थल में सिंह की तरह दहाड़ना चाहिए और भेड़िये के समान आक्रमण करना चाहिए।"

संबोधित करने के बाद आचार्य जी ने अपने छात्रों को बाण-संचालन, तलवार, भाला, परशु आदि अस्त्रों की संचालन विधियों से परिचित कराया। इसके बाद उन्हें अभ्यास करने का आदेश दिया।

महानाम, अनिरुद्ध, आनन्द, नन्द, देवदत्त आदि ने धनुष की प्रत्यंचा पर बाण चढ़ाकर लक्ष्य वेध किया पर उन्हें आशातीत सफलता नहीं मिली। अन्त में सिद्धार्थ की बारी आई। एकाग्रचित्त होकर सजग मन से तरकस से बाण निकाल कर इतना सटीक निशाना साध कर पेड़ की चोटी पर रखी हुई पक्षियों और मछलियों को वह देखने लगा।

अचानक कुडंज पूछ पड़े, "सिद्धार्थ! तुम्हें क्या दिखाई दे रहा है?"

"गुरुवर! आँख।"

"ठीक है। लक्ष्य-वेध साधो।"

"इधर बाण छूटा, उधर पक्षियों और मछलियाँ विद्ध होकर धराशायी।"

आठों आचार्यों ने उसकी पीठ थपथपाई और बोले, "तुम तो एकलव्य से बड़े निशानची निकले।"

सिद्धार्थ की प्रशंसा सुनकर सभी शाक्य बालक बहुत खुश हुए पर देवदत्त के कलेजे पर साँप लोटने लगा।

आचार्य ध्वज मल्ल विद्या के विभाग के अध्यक्ष थे। सायंकाल के समय वह सभी छात्रों को साथ लेकर अखाड़े पर गए। आनन-फानन में सभी छात्र लँगोट

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

बाँधकर तैयार हो गए। ध्वज जी बोले, "सिद्धार्थ! क्या तुम बारी-बारी से सभी छात्रों से लड़ सकते हो?"

"गुरुवर! आपकी आज्ञा शिरोधार्य है।"

बारी-बारी से सभी छात्र सिद्धार्थ के साथ कुश्ती लड़े पर....। अन्त में देवदत्त उछल पड़ा। अखाड़े में जैसे ही उसने हाथ मिलाया, सिद्धार्थ ने उसे दोनों हाथों में लेकर आकाश दिखाकर धड़ाम से पटक दिया। यहीं से देवदत्त के मन में सिद्धार्थ के प्रति ईर्ष्या और द्वेष का जो भाव जागा, वह आजीवन बना रहा।

देवल विद्यापीठ में जब सिद्धार्थ और उसके भाइयों का अध्ययन-काल समाप्त हो गया तो सवके सब घर चले गए। और बच्चे आगे पढ़ने के लिये तैयार न थे। पर, सिद्धार्थ गूढ़ विद्याओं को सीखना चाहता था। शुद्धोधन ने उदायी को बुलाकर कहा, "मंत्रीवर! सिद्धार्थ को सब्बमित्त के आश्रम पर ले जाओ?"

"राजन्! आपका विचार अति उत्तम है। सब्बमित्त उदिच्च देश के सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मण हैं। इस समय उत्तर-पूर्व में उनसे बड़ा विद्वान और कोई नहीं है।"

"मंत्रीवर! वह चारों वेदों, वेदांगों (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष) तथा छहौ शास्त्रों (सांख्य, योग, वेदान्त, मीमांसा, न्याय, वैशेषिक) के ज्ञाता हैं।"

"राजन्! रथ तैयार है। मैं अभी सिद्धार्थ को लेकर उनके आश्रम जा रहा हूँ।"

सिद्धार्थ कई वर्षों तक वहाँ रहा और सांख्य दर्शन तथा योग का सम्यक अध्ययन कर राजमहल वापस आ गया।

सिद्धार्थ का व्यक्तित्व अत्यन्त ही अनुपम एवं चुम्बक की तरह आकर्षक था। ऊँचा कद और आजानुबाहु। लालट आभायुक्त, आँखें तेजस्वी और चेहरा आलोकित। वह सदा ध्यानमग्न रहा करते थे। शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ एवं बलिष्ठ थे। मानसिक दृष्टि से शान्त और गंभीर एवं स्वभाव से नवनीत की तरह कोमल थे। उनका गौर वर्ण भगवान भास्कर की तरह देदीप्यमान था।

देवदह पुत्रों सहित महाप्रजापति का आगमन

मकर संक्रान्ति का पावन पर्व सन्निकट आ गया। महाराज शुद्धोधन से अनुमति लेकर सिद्धार्थ और नन्द को साथ लेकर महाप्रजापति मायके चली गईं। अपने दोनों नातियों को देखकर अञ्जन फूला न समाया। नातियों को देखते ही सुलक्षणा ने आगामी कल की योजना बना डाली।

पुत्री से बोली, "महाप्रजापति! बेटी कल सपरिवार हम दण्डपाणि के घर

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

चलेंगे। हम आपस में गप्प-शप्प करेंगे और सिद्धार्थ गोपा के साथ पतंग उड़ाएगा।"

महाप्रजापति बोली, "माँ! तुम्हारा विचार अति उत्तम है।"

दूसरे दिन स्नान करके परिवार के लोग नये वस्त्र धारण किए। तिल, तांडुल, गुड़, द्रव्य आदि लेकर शिव-मंदिर चले गए। गरीबों तथा भिखारियों को तिल-तांडुल तथा द्रव्य दान किए। भिक्षार्थी प्रसन्नचित्त से दाता को आशीर्वाद देने लगे।

दोपहर को भोजनोपरान्त सारा परिवार रथ में सवार होकर दण्डपाणि-भवन पहुँच गया। दण्डपाणि ने पुत्री और पत्नी सहित भाई, भाभी, बहन तथा भांजों का भव्य स्वागत किया।

दण्डपाणि की पुत्री यशोधरा के रूप-लावण्य पर महाप्रजापति मुग्ध हो गई। बोली, "ऐसी रूपवती कन्या को आज तक मैंने नहीं देखा।"

सुकन्या बोली, "देखो! नजर मत लगाना।"

"भाभी! इस कन्या का क्या नाम है?"

"नाम् तो अनेक हैं पर हम इसे यशोधरा नाम से पुकारते हैं और पुरवासी गोपा कहते हैं।"

"यशोधरा कितने वर्ष की हुई?"

"वयःसंधि समाप्त होने वाली है।"

"क्या नृत्य-कला और वीणा-वादन की कला से भिज्ञ है?"

"महाप्रजापति जी। हाँ, दोनों कलाओं में निष्णात हैं। स्वर तो कोयल के स्वर को भी मात कर देता है। जब मयूर-नृत्य करती है तो दर्शक दाँतों तले अँगुली दबा लेते हैं।"

"ठीक है। कहकर महाप्रजापति ने यशोधरा को अपने पास बुलाकर चूमा-चाटा और सिद्धार्थ और नन्द को आदेश दिया कि पुष्पवाटिका में जाकर यशोधरा के साथ खेलो।"

तीनों की प्रसन्नता की सीमा न रही। प्रथम दर्शन में ही यशोधरा सिद्धार्थ पर लट्टू हो गई। मृगनयनी के बाण से सिद्धार्थ बचा न रह सका। उसके हृदय में भी प्रेम का स्फुरण हो गया। नेत्र, नेत्र से लड़ गये।

यशोधरा ने सिद्धार्थ से प्रश्न किया, "सिद्धार्थ! तुम तो एक राजकुमार हो फिर भी एक संन्यासी की तरह शान्त, कोमल एवं ध्यान-मग्न क्यों रहते हो?"

"यशोधरा। राजसी ठाट-बाट, ऐश्वर्य-प्रदर्शन एवं बाह्याडम्बर से मुझे घृणा है।"

"सिद्धार्थ! तुम्हारा विचार सत् और पवित्रता का आगार है। सादगी महान पुरुषों का सबसे बड़ा गुण है। किन्तु....।"

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

"रुक क्यों गई?"

"इसलिए कि अभी तुम्हारे ऊपर तीन ऋण हैं।"

"कौन से?"

"मातृ-ऋण, पितृ-ऋण और देव-ऋण। इन तीनों ऋणों को चुकाने के बाद ही कोई सत्यान्वेषी मोक्ष-प्राप्ति का अधिकारी होता है।"

"यशोधरे! तुम तो बहुत बड़ी विदुषी लगती हो। ब्रह्मा ने तुम्हें जैसा अनुपम रूप, रंग दिया है वैसा वैदुष्य भी। सामवेद तो जानती ही हो। अब कुछ सुनाओ?"

"सिद्धार्थ! क्या सुनना चाहते हो?"

"गीत।"

"वीणा तो नहीं है। वैसे ही एक गीत सुनाती हूँ।"

"अति उत्तम।"

सुनो—

"बाहर नहीं, अपने भीतर देखो
वहीं, तुम्हारा सच्चा मीत मिलेगा
अपने चंचल मन को पहचानो
वह बिगड़े घोड़े-सा है
उस पर संयम की
लगाम लगाओ?"

सिद्धार्थ की अविद्या काफूर हो गई।

गद्‌गद हो गया। बोला, "यशोधरा तुममें यौवनोन्माद लेशमात्र भी नहीं है। लगता है कि तुम सत्यान्वेषी हो।"

"यह तो समय बताएगा।"

अंधेरा छाने लगा। महाप्रजापति ने भाई-भाभी से इजाजत ली और माता-पिता तथा बच्चों को लेकर सुलक्षण-भवन पहुँच गईं।

करुणा-निधान

जब करुणा प्राणों में बस जाती है तो सच्चे धर्म का दर्शन होता है। सिद्धार्थ बचपन से ही सहृदय और दयालु था। जन्म के बाद सात दिन के अन्दर ही उसने मातृ-वियोग का दुःख भोगा था। अतः मानव मात्र के नहीं अपितु सभी प्राणियों के दुख और मृत्यु को देखकर उसका हृदय करुणा से विगलित हो जाता था। प्रायः ऐसा देखा जाता है कि एक संवेदनशील व्यक्ति जब पशु-पक्षियों, कीड़े-मकोड़ों को शक्तिशाली पशुओं तथा पक्षियों द्वारा मारते हुए देखता है तो उसके हृदय में

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

करुणा का सागर उमड़ पड़ता है। सिद्धार्थ के मन में करुणा शैशवावस्था से बस गई थी। अतः उसे धर्म का ज्ञान हो गया था।

कार्तिक माह चल रहा था। किसान खेत जोतकर रबी की फसल को खेतों में बो रहे थे। शुद्धोधन बड़े खेतिहर थे। अतः सवेरा होते ही जलपान करके अपने खेतों पर चले जाते थे। एक दिन सिद्धार्थ ने उनसे कहा, "पिताजी! क्या मैं भी आपके साथ चल सकता हूँ?"

"क्यों नहीं, चलो।"

पिता के साथ सिद्धार्थ अपने खेत पर गया और मेड़ के पास एक शाल का पेड़ देखकर उसके नीचे बैठ गया। वह हलवाहों को अच्छी तरह देख रहा था। हल जोतते समय हराई में एक कीड़ा आ गया। हलवाहे ने डंडे की नोक पर उसे रखकर मेंड़ पर फेंक दिया। ऊपर एक चील मँडरा रही थी। कीड़े को देखकर नीचे झुकी और झपटा मारकर उसे अपने पंजे में लेकर उड़ गई। इस घटना को देखकर उसका करुण हृदय घायल हो गया। दुखियों की दशा तो वही जनता है जो परिस्थितियों से दुखी होता है। वह गम्भीरतापूर्वक सोचने लगा कि यह तो मत्स्यन्याय है। शोकाकुल उसके हृदय से यह उद्गार प्रकट हुआ, "हाय! यह संसार कितना विचित्र है! हर सबल प्राणी निर्बल को मारकर खा जाता है।"

शिकार

शिकार करने का निर्देश राजकुमारों को बचपन से दिया जाता था। नन्द, देवदत्त आदि शिकार के लिए प्रतिदिन लुम्विनी वन में जाया करते थे। एक दिन महाप्रजापति के विशेष आग्रह करने पर सिद्धार्थ भी आखेट करने गया।

जब अपने भाइयों के साथ वनस्थली में पहुँचा तो वहाँ खरगोश, नीलगाय, हिरण आदि उछल-कूद कर रहे थे। सिद्धार्थ ने जैसे ही एक हिरन के बच्चे पर बाण साधा, उसकी माँ की आँखों से अश्रुकण प्रवाहित होने लगे। यह करुण दृश्य उससे देखा न गया। उसके हाथ से धनुष सहित बाण नीचे गिर गया। देवदत्त उसका मजाक उड़ाने लगा।

घर पहुँचकर अन्य क्षत्रिय बालकों ने प्रजापति से शिकायत करते हुए कहा, "माँ! यह तो डरपोक है। शिकार क्या करेगा?"

सिद्धार्थ से रहा न गया। वह बोल उठा, "माँ! कायर मैं नहीं, ये सब हैं। शेर बाघ की दहाड़ सुनकर ये लोग नौ दो ग्यारह हो जाते हैं पर हिरन और खरगोश पर टूट पड़ते हैं। निरीह जानवरों की हत्या करना महापाप है।" महाप्रजापति बोलीं, "बेटा! शिकार करना तो क्षत्रियों का धर्म है। यदि युद्ध का अभ्यास अभी से नहीं

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

"क्या प्रमाण है?"

"महाराज! मर्यादा पुरुषोत्तम राम केवल बारह कलाओं से युक्त थे और योगेश्वर कृष्ण सोलह कलाओं से युक्त थे पर यह शिशु 32 लक्षणों तथा अस्सी अनुव्यंजनों से युक्त है।"

ऋषिवर की वाणी सुनकर जन-समूह खुशी से उछल पड़ा। समवेत स्वर सभी शिशु की जयकार करने लगे।

शुद्धोधन बोला, "महर्षि जी। क्या मेरे अच्छे कर्मों के कारण मेरे घर में दिव्य पुरुष का जन्म हुआ है?"

"हाँ, राजन्। पूर्व जन्म में मनुष्य जो कर्म किए रहता है। वह कर्म मनुष्य के साथ सोता है। मनुष्य के साथ उठ खड़ा होता है और मनुष्य के पीछे-पीछे दौड़ता है।"

"भगवान। काल तो इस धरती पर किसी पर करुणा नहीं प्रकट करता।"

"राजन्! काल का तो न कोई प्रिय है, न तो शत्रु, न कोई उसका मध्यस्थ है। वह बिना किसी भेद-भाव को सबको खींचकर ले जाता है।"

"ऋषिवर! मृत्यु एक दिन सबको इस संसार से उठा ले जाएगी फिर भी लोग अपने स्वार्थ को पूरा करने के लिए दूसरों की पीड़ा देते हैं। इसका क्या कारण है?"

"अज्ञान।"

"अज्ञान के अन्तर्गत किन चीजों की गिनती होती है?"

"राजन्! राग, द्वेष, मोह, हर्ष, शोक, अभिमान, काम, क्रोध, दर्प, तन्द्रा, आलस्य, वैर, दूसरे की उन्नति देखकर जलना, पापाचार इन सबको समवेत रूप से अज्ञान की संज्ञा दी गई है। पर....?"

"ऋषिवर! आप रुक क्यों गए? स्पष्ट कीजिए।"

"आपका यह शिशु आगे चलकर अज्ञान से स्वयं मुक्ति प्राप्त करेगा और दूसरों के लिए भी अविद्या से छुटकारा पाने का मार्ग प्रशस्त करेगा।"

"ऋषिवर! मेरा पुत्र बैशाख की पूर्णिमा को उत्पन्न हुआ है। इसके जीवन से पूनो का क्या सम्बन्ध है?"

असित मुनि मुस्कराने लगे और पलभर मौन धारण करने के उपरान्त बोले, "राजन्! आपका प्रश्न आन्तरिक जिज्ञासा का द्योतक है। आपको सारा रहस्य समझा रहा हूँ। क्या यह शिशु आषाढ़ी पूर्णिमा को महामाया के गर्भ में अवस्थित हुआ है?"

"हाँ, ऋषिवर! आपका कथन सत्य है।"

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

"राजन्! यह अलौकिक शिशु जब आषाढ़ पूर्णिमा को गर्भस्थ हुआ और बैशाख पूर्णिमा को धरती पर अवतरित हुआ है तो आषाढ़ पूर्णिमा के पवित्र अवसर पर यह उनतीस वर्ष की अवस्था में भोग-वासना से विमुख होकर संन्यासी बन जाएगा। यह इसके महाभिनिष्क्रमण का शुभ दिन होगा।"

"हाय राम! मुनिवर! आगे क्या होगा?"

"पूर्णिमा के दिन ही किसी पीपल की छाया में इसे सच्चा ज्ञान प्राप्त होगा और यह सम्यक् बुद्ध बन जाएगा।"

"महर्षि! किस अवस्था में महानिर्वाण होगा?"

"राजन्! जिस प्रकार यह शिशु शाल के वृक्ष के नीचे जन्मा है उसी प्रकार शाल की छाया में अस्सी वर्ष की उम्र इसका महानिर्वाण भी होगा। इसके जीवन का हर क्रिया-कलाप और प्रत्यक्ष-ज्ञान प्रकृति के प्रांगण से जुड़ा हुआ है।"

"प्रकृति का क्या विशेष गुण है?"

"महाराज! प्रकृति का नियम अकाट्य है। पल-पल इसमें परिवर्तन होता है। इससे यह सत्य उद्घाटित होता है कि हर वस्तु अनित्य है, क्षणभंगुर है। हर वस्तु जब नष्ट होती है तो उसी से नई वस्तु उत्पन्न होती है।"

"ऋषिवर! प्रकृति का नियम निराला है। यह जो कुछ उत्पन्न करती है वह इसके काम नहीं अपितु दूसरे के काम आता है।"

"कपिलवस्तु नरेश! प्रकृति इस शिशु का सबसे बड़ा गुरु बनेगी। त्याग इसका गुरु है। प्रकृति के प्राँगण में पाए जाने वाले पेड़ स्वयं आतप, वर्षा और सर्दी सहन करते हैं पर दूसरों को शीतल छाया, फल, लकड़ी आदि प्रदान करते हैं। बादल आत्मोत्सर्ग कर संसार को जल देता है। सूर्य प्रकाश देता है। पवन हर वक्त सबको चँवर डुलाता है। प्रकृति किसी के साथ भेद-भाव नहीं करती है। यह शिशु भी बड़ा होकर सामाजिक विषमता की जड़ को झकझोर देगा।"

"ऋषिवर! मेरा यह शिशु मेरे राज्य का उत्तराधिकारी है। क्या कपिलवस्तु का राजसुख नहीं भोगेगा।"

"लक्षण तो यही बता रहे हैं कि यदि यह राज्याकाँक्षी होगा तो चक्रवर्ती सम्राट बनेगा पर इसका संयोग मात्र दश प्रतिशत है।"

"ऋषिवर! क्या संन्यास का योग नब्बे प्रतिशत है?"

"राजन्! त्याग इसके जीवन का श्रेय और प्रेय है। अतः सांसारिक सुख का यह उसी प्रकार त्याग कर देगा जैसे केंचुल साँप की चमड़ी को त्याग देती है। पर, सम्प्रदाओं के बाह्याडम्बरों को तोड़कर एक सरलतम मार्ग की प्रतिष्ठा करेगा। शुद्ध धर्म का प्रणेता बनेगा।"

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

"ऋषिवर। संन्यास के झुकाव को रोकने और राज्योपभोग के लिए कोई उपाय बतलाएँ?"

"कामासक्ति अर्थात् कामोत्तेजना संन्यास-मार्ग का सबसे बड़ा ग्रह है। नारी ने रूप-लावण्य के आकर्षण से आज तक कौन बचा है। विषयासक्ति रूपी माल एक ऐसा लेप है जो नित्य स्नान और परिशुद्धता से भी नष्ट नहीं होता है। सौन्दर्य संसार की सभी संस्तुतियों से बढ़कर है। बड़े-बड़े ऋषि-महर्षि, मुनि आदि नारी की बाँकी अदा पर फिदा हो गए। नारद, विश्वामित्र, बृहस्पति, च्यवन, कामारि शिव आदि नारी की मोहिनी शक्ति से कहाँ बच पाए। जब शिशु युवावस्था को प्राप्त हो तो उसके आस-पास देशी-विदेशी मन-रोचक मोहनियों का जमघट लगा दीजिए।"

"ऋषिवर! मैं आजीवन आपका आभारी रहूँगा।"

राजा की बात सुनकर महर्षि असित रोने लगे। राजा का हृदय नवनीत की तरह पिघल गया। वह ऋषिवर से पूछ बैठे, "ऋषिवर आप अश्रुपात क्यों कर रहे हैं?"

"महाराज! मैं दीर्घायु हो चला हूँ। शीघ्र ही निर्वाण होने वाला है। सम्यक् बुद्ध का दर्शन नहीं कर पाऊँगा।"

"ठीक है पर नालक तो रहेगा ही।" ऐसा कहने के बाद शुद्धोधन असित को हीरा-मोती भरी थैली देने लगे। ऋषिवर ने कहा, "महाराज। मैं शीलोच्छवृत्ति का अनुगामी हूँ। अतः आपका आर्थिक अनुग्रह स्वीकार नहीं करूँगा।"

रंग में भंग

जब किसी महिला की कोख से पुत्र रत्न की उत्पत्ति होती है तब उसका जन्मोत्सव कम से कम बारह दिन तक अवश्य चलता रहता है। अगर बाप राजा हुआ तो क्या पूछना? परिवार, परिजन तथा पुरजन रास-विलास में आकंठ डूबा रहता है। बहुत दिनों के बाद महामाया की कोख पवित्र हुई थी। अतः वह अधिक मनोहारिणी बन गई थी। सचमुच जिस समय माँ के रूप में स्त्री का हृदय पवित्रता का आगार बन जाता है, उस समय उससे अधिक कोमल वस्तु संसार में नहीं रह जाती है।

महामाया के आग्रह पर महाराज शुद्धोधन ने शिशु के जन्म के पाँचवें दिन नामकरण-संस्कार का आयोजन कर दिया। ख्यात-प्रख्यात ज्योतिषाचार्य इस समारोह में सम्मिलित हुए। भविष्यत् वक्ताओं ने जन्म समय के ग्रह-नक्षत्रों पर अच्छी तरह विचार किया। फलितार्थ निकला–सिद्ध+अर्थ। सिद्ध का अर्थ होता है–अन्तर्दृष्टि प्राप्त मुनि या महापुरुष और अर्थ का अर्थ है–जिसने अपना अभीष्ट अर्जित कर

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

लिया है। इन दोनों शब्दों के योग सिद्धार्थ शब्द बना।

विद्वत् सभा का प्रधान बोला, "ग्रह-नक्षत्रों पर विचार करने के बाद ऐसा फल निकलता है कि यह शिशु प्रौढ़ होने पर अपूर्व सिद्धि प्राप्त करेगा। अतः आज से इस बालक को सिद्धार्थ नाम से पुकारा जाएगा।"

"भूदेव! आपने तो अति उत्तम नाम विचारा है।"

बीच में महामाया बोल उठी, "भूदेवो! हम सूर्यवंशी क्षत्रिय हैं और महात्मा गौतम ऋषि के वंशज है। अतः सिद्धार्थ के आगे गौतम शब्द जोड़ दिया जाये।"

ज्योतिषी को यह सुझाव औचित्यपूर्ण लगा। वह बोला, "देवि! आपका सद्विचार सारगर्भित है। मान्य है।"

महामाया की खुशी का ठिकाना न रहा। बोली, "पंचो! प्रेम से बोलो राजकुमार सिद्धार्थ गौतम की जय!"

जनता बोल उठी, "राजकुमार सिद्धार्थ गौतम की जय।"

सिद्धार्थ के जन्म का छठा दिन था। महामाया ने स्वयं तथा शिशु को दासियों द्वारा अरगजा-लेप करवाया और पानी में केवड़ा एवं गुलाब जल छिड़ककर शिशु को स्नान करवाया और स्वयं स्नान किया। देवी-देवताओं की आराधना करने के बाद वह प्रमुदित थीं। पर नियति नटी को महामाया का आनन्द रास न आया। भवितव्यता को कौन जान सका है?

नृत्य और गाना-वजाना जोर-शोर से चल रहा था। अचानक महामाया अस्वस्थ हो गईं। दासियों और चेटियों ने हाथों से सहारा देकर महारानी को शयनकक्ष में ले जाकर सुला दिया। शीघ्र ही वह निद्रा-निमग्न हो गईं। पुण्यात्मा थीं। स्वप्न आ गया। देखा कि यमदूत सिरहाने खड़ा है। हड़बड़ाकर जाग उठीं। तुरन्त उन्हें आभास हो गया कि अब मेरी इहलौकिक-लीला समाप्त होने वाली है। एक दासी से बोली, "शीघ्र महाराज और महाप्रजापति को बुला लाओ?"

"अच्छा।"

समाचार पाते ही महाप्रजापति और शुद्धोधन महामाया के पास पहुँच गए। कमल-पुष्प-सी उन्मीलित आँखों को देखकर वह घबड़ा उठे। बोले, "देवि! तुम क्यों बेचैन दिखलाई पड़ रही हो?"

"महाराज! कहा-सुनी क्षमा करना। जो होना होता है वह होकर रहता है। चिन्ता न करें। मृत्यु को कौन रोक सकता है। अब दीदी से बातचीत करने दें।"

महामाया के सिर पर हाथ रखकर महाप्रजापति बोली, "महारानी! क्या आज्ञा है?"

"दीदी! ब्रह्मा का यह अमिट लेख है कि हर माता को वात्सल्य प्रेम का सुख

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

बदा नहीं रहता है। मैं सिद्धार्थ के अनुपम सत्यान्वेषण का आनन्द नहीं ले पाऊँगी। अतः आपसे निवेदन है कि मातृहीन सिद्धार्थ का यथोचित लालन-पालन करना। उसे मातृहीनता का बोध मत होने देना।"

"महारानी! माँ का स्थान संसार में दूसरा कोई नहीं ले सकता। आप निश्चिन्त होकर महाप्रस्थान करें। नन्द की तरह मैं सिद्धार्थ का भी पालन-पोषण करूँगी।"

"दीदी! तुम्हारे आश्वासन से मुझे परम शक्ति मिली है।" ऐसा कहकर वह बायीं करवट लुढ़क गई।

सिद्धार्थ को मातृ-स्नेह केवल सात दिन तक प्राप्त हुआ। माँ के वियोग का दुःख उसके स्मृति-पटल पर सदा के लिए अंकित हो गया।

वंश-वृक्ष

भाइयों में सबसे बड़ा होने के कारण सिंहहनु का बड़ा पुत्र शुद्धोधन कपिलवस्तु का राजा तो था पर सभी भाई एक साथ रहते थे। परिवार था संयुक्त। शुद्धोधन का दूसरा पुत्र भी था। नाम था नन्द। उसका जन्म महाप्रजापति की कोख से हुआ था।

शुद्धोधन के भाइयों में एक-दूसरे के प्रति असीम प्रेम था। शुक्लोदन के दो पुत्र थे। एक का नाम था महानाम और दूसरे का अनिरुद्ध। अमितोदन के लाड़ले का नाम था आनन्द। अमिता, शुद्धोधन की बहन उसी के साथ रहती थी। देवदत्त उसी की कोख से पैदा हुआ था। नन्द और आनन्द सिद्धार्थ से उम्र में छोटे थे और महानाम बड़ा।

छओ लड़के साथ-साथ उठते-बैठते, खेलते-कूदते, खाते-पीते और नाचते-गाते थे। पर शैशवावस्था से सिद्धार्थ की बुआ का लड़का देवदत्त उससे ईर्ष्या और द्वेष करता था और सिद्धार्थ के प्रति उसकी द्वेषाग्नि अन्तिम वेला तक शान्त न हुई।

यशोधरा

देवदह में अञ्जन कोलिय के गणराज्य से सटा हुआ एक दूसरा प्रजातंत्र (गण) राज्य था जिसका राजा था दण्डपाणि। अञ्जन की भाँति उसका भी शाक्यों में सम्मान था। अपार वैभव, धन-दौलत तथा भव्य प्रासाद था उसके पास। उसका विवाह शाक्य कन्या सुकन्या से हुआ था। उसका रूप-लावण्य बड़ा ही मनोहर और आकर्षक था। जैसे उसका रूप सौन्दर्य का आगार था वैसे ही उसका दिल भी करुणा का सागर था। बहुत बड़ी शौकीन थी। रेशमी परिधानों तथा हीरा-पन्ना

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

जड़े आभूषणों को धारण कर जब वह मंदिर तथा तीर्थ-स्थानों पर जाती थी तो उसे लोग टकटकी बाँधकर देखते रह जाते थे। दण्डपाणि और सुकन्या का वैवाहिक जीवन अत्यन्त ही सुखद था।

दण्डपाणि के पुत्र तो थे पर कन्या नहीं थी। एक दिन मुस्कराते हुए पत्नी से बोले, "प्रिये! भव-सागर से मुक्ति के लिए कन्यादान आवश्यक है।"

"नाथ! चिन्ता क्यों करते हैं। ईश्वर की बाँह बहुत लम्बी है। कोई न कोई उपाय वह अवश्य करेंगे।"

"प्रिये! भगवान सहायता तो अवश्य करता है पर उसकी, जो एकाग्रचित्त से पूजा करता है। पूजा और जप-तप के साथ-साथ उद्यम तो स्वयं ही करना पड़ता है।"

"नाथ! उपाय तो बताइए।"

"शिव-पार्वती की आराधना करो। माँ दुर्गा की सच्ची निष्ठा से पूजा करो।"

"नाथ! आज से ही शिवलिंग और नन्दी पर वेल-पत्र, धतूरा, दूब, मदार का पुष्प और गोदुग्ध चढ़ाऊँगी। रोजना सायं-प्रातः दुर्गा स्तोत्र का पाठ करूँगी।"

"प्रिये! इतना ही नहीं, नौरात्र में नौ दिन उपवास भी करना होगा।"

"प्रियवर! आपकी मनोकामना पूरी करने के लिए मैं हर संभव प्रयास करूँगी।"

ग्रीष्मावसान हो रहा था। अचानक आकाश में काले-काले बादल उमड़ आए। पपीहा पी कहाँ-पी कहाँ की रट लगाने लगे। मोर मोरनी को नाच-नाचकर रिझाने लगा। सभी प्राणी मिलनातुर हो उठे। फिर दण्डपाणि और सुकन्या चुप कहाँ बैठे? दण्डपाणि ने अपनी प्रियतमा को बाँहों में भर लिया। संसर्ग हो गया। सुकन्या गर्भवती हो गई।

शिशिर ऋतु अपना बल दिखाकर चली गई। वसन्त का आगमन हो गया। प्रकृति अपनी छटा दिखलाने लगी। रसाल, कटहल, महुआ आदि वृक्ष बौरों और फूलों से आच्छादित हो गए। प्रकृति का सारा प्रांगण महमहा उठा। महाशिवरात्रि का पावन पर्व था। युवक-युवतियों, प्रौढ़-प्रौढ़ाओं एवं वृद्ध-वृद्धाओं के मन में बाबा भोलेनाथ के प्रति महती श्रद्धा और भक्ति थी। शिव के प्रति श्रद्धालुओं के मन में समर्पण भावना क्यों न हो? जो भी उन्हें प्रेम से भजता, उसका अभीष्ट अतिशीघ्र पूरा हो जाता था। छोटे से बड़े सब व्रत रहते थे। भोर होते ही देवीदह के शिवालयों के सामने भक्त पंक्तिबद्ध होकर खड़े हो गए। रुद्राभिषेक करके दण्डपाणि शिव-मंदिर से वापस आकर अपने महल में घुसे, महारानी प्रसव-पीड़ा से कराहने लगी। दासियों में उसकी एक दासी अनुभवी तथा गर्भमोचन की कला में

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

अत्यन्त ही निपुण थी। महारानी के कान और नाक में जड़ी-बूटी लगाकर वह धीरे-धीरे उसके हाथ-पैर और पेट को सहलाने लगी। बस क्या? पलभर में सुकन्या ने अपने गर्भ से एक विलक्षण और चित्ताकर्षक कन्या को जन्म दिया। कन्या रत्न को पाकर दण्डपाणि के आनन्द की सीमा न रही। गद्गद होकर कहने लगे, "शिव और पार्वती की अनुकम्पा से हमें अद्वितीय कन्या को प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।"

छठी के दिन सुकन्या ने अपने अंग-प्रत्यंग में दासियों से अरगजा लेप करवाया और गर्म पानी में केवड़ा और गुलाबजल छिड़कवाकर अच्छी तरह स्नान किया। मखमली तौलिये से शरीर को अच्छी तरह पोंछकर रेशमी वस्त्र धारण किया। आभूषणों से अपने शरीर को अलंकृत कर गोद में कन्या शिशु को लेकर उस कक्ष में गई जहाँ लोग उसे बधाई देने के लिए उत्सुक थे। दासियों ने जमीन पर लेटकर नमन किया।

दण्डपाणि अपने पुरोहित के पास बैठे हुए थे। महारानी को देखकर पंडित जी खड़े हो गए और बोले, "महारानी सुकन्या की जय"। नमन कर, महारानी बोली, "पंडित जी! मेरी लाड़ली कन्या को पुकारने के लिए एक अच्छा-सा नाम रखिए?"

"देवि! आज्ञा शिरोधार्य है।"

दस मिनट तक पंडित जी पंचांग देखते रहे और उसके बाद पंचांग को बन्द कर बोले, "आपके कन्या शिशु को यदि यशोधरा नाम से पुकारा जाय तो भला होगा। राजा-रानी खुशी से उछल पड़े और बोले, अहा कितना सुन्दर नाम है!"

यशोधरा का रंग गोरा, मुख पूनो के चाँद-सा, आँखें बड़ी-बड़ी और तिरछी, दाँत दाड़िम के दानों-से, ओष्ठ पके बिम्ब-फल के समान और बाल काली नागिन से थे। अपने अनुपम रूप के कारण यशोधरा लोगों के आकर्षण का केन्द्र बन गई। नर-नारी उसे घेरे रहते थे। अत्यधिक लाड़-प्यार दिखलाने के लिये लोग उसे अनेक नामों से पुकारने लगे। कोई उसे भद्रा कापिलयानी के नाम से पुकारता तो कोई भादा कच्चाना। कुछ लोग उसे सुभद्रका कहते और कुछ लोग बिम्बा या गोपा।

सिद्धार्थ की शिक्षा-दीक्षा

सिद्धार्थ बचपन से ही एकाग्रचित्त, शान्त, विचारशील, संयमी, आचार-विचार-मग्न एवं दयालु था। बचपन में कभी-कभी गौशाला में जाकर बछियों एवं बछड़ों को अपने कोमल हाथों से सहला-सहलाकर प्यार जताता था। ग्रीष्मकाल में तृषित

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

पक्षियों की प्यास बुझाने के लिए कूंडे में पानी भरकर रख देता था। धीरे-धीरे सिद्धार्थ पाँच वर्ष का हो गया। यह पठन-पाठन के श्रीगणेश करने की अवस्था मानी जाती थी।

शुद्धोधन होनहार सिद्धार्थ की शिक्षा के लिए बहुत ही सतर्क एवं जागरूक थे। अचानक वसन्त पंचमी का महान पर्व आ गया। इस शुभ अवसर पर बच्चों को अक्षर-ज्ञान कराना अत्यन्त ही शुभ माना जाता था। अतः शुद्धोधन ने अपने पुरोहित को बुलाकर पूजा-अर्चना कर पंचवर्षीय सिद्धार्थ के पठन-पाठन का शुभारंभ करवाया। परिवार के अन्य बच्चे भी सिद्धार्थ के साथ-साथ संस्कृत और पाली का अध्ययन करने लगे। सिद्धार्थ दूसरे बच्चों की अपेक्षा अधिक गंभीर और एकाग्रचित्त था। वह सतर्क होकर लगन और निष्ठा से अध्ययन करता था। अतः तीन साल के अन्दर वह संस्कृत, पाली, प्राकृत आदि भाषाओं में निष्णात हो गया। उसकी स्मरणशक्ति इतनी पैनी थी कि एक बार जो कुछ पढ़ लेता था, सदा के लिए उसके मानस-पटल पर अंकित हो जाता था।

आठवाँ वर्ष लगते ही शुद्धोधन ने महामात्य उदायी को बुलवाया। राजा को सिर झुकाकर उसने कहा, "महाराज! क्या आज्ञा है?"

"मंत्री जी! परिवार के सभी बच्चों को रथ पर बैठाकर महर्षि देवल विद्यापीठ चले जाओ और वहाँ के आचार्यों को सिद्धार्थ एवं अन्य बच्चों को पढ़ाई-लिखाई का उत्तरदायित्व सौंप दो।"

"महाराज! आज्ञा शिरोधार्य है।"

उदायी राज-परिवार के सभी बच्चों को साथ लेकर विद्यापीठ के प्रधान कार्यालय में पहुँच गया। अध्यापक-कक्ष में रामशास्त्री, ध्वजाचार्य, महोपध्याय लक्ष्मण, आचार्य मंत्री, आचार्य कुडञ्ज, भोज शास्त्री, आचार्य सुयाम और सुदत्त शास्त्री आपस में योग के संदर्भ में विचार-विमर्श कर रहे थे। अचानक आचार्यों की निगाह उदायी तथा राजपरिवार के बच्चों पर पड़ गई। बच्चों को देखकर उनका हृदय उसी प्रकार खिल उठा, जैसे सूर्य की प्रथम किरणों का स्पर्श पाकर कमल-पुष्प उन्मीलित हो उठते हैं। सेवक को बुलाकर आचार्यों ने मंत्री तथा बच्चों को कन्द, मूल, अंकुर खिलाकर मधु का रस पिलवाया। सिद्धार्थ में अजब का गुरुत्वाकर्षण था। अतः आचार्यगण विलक्षण छात्र को गौर से देखने लगे।

राम शास्त्री ने महामात्य से पूछा, "मंत्री जी! क्या यह वही बालक है, गर्भावस्था में जिसके बारे में हम लोगों द्वारा भविष्यवाणी की गई थी।"

"आचार्य श्री! आपका अनुमान अक्षरशः सही है।"

"इसका नाम क्या है?"

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

"सिद्धार्थ।"

"अच्छा! आने का हेतु स्पष्ट कीजिए?"

"आज से सिद्धार्थ तथा अन्य बालकों की शिक्षा-दीक्षा का भार आप लोगों पर रहेगा।"

"मंत्री! आपके प्रस्ताव का स्वागत है। सच्ची लगन और निष्ठा से हम अपने धर्म का निर्वहण करेंगे।"

"आप लोगों को कितना पारिश्रमिक दिया जाय?"

"मंत्रीवर। हम ब्राह्मण हैं। पढ़न-पढ़ाना हमारा धर्म है। ब्राह्मण वंश में शुल्क लेकर विद्या-दान पाप समझा जाता है। द्रव्य लेकर छात्र को पढ़ाने वाले शिक्षक को नीची निगाह से देखा जाता है। चिन्ता न करें। छात्रों के खान-पान की सारी व्यवस्था विद्यापीठ स्वतः कर लेगा। विद्यापीठ में धनाढ्य एवं निर्धन छात्र को समान दृष्टि से देखा जाता है।"

"आचार्यो! आपका कथन सही है। त्याग, अनुशासन, ब्रह्मचर्य, पवित्रता उदारता, सहनशीलता, सादगी, परोपकार, ज्ञानार्जन, संयम, औदार्य और विद्यादान से ही ब्राह्मण पूजनीय है और इसीलिये वह भूदेव कहलाता है।"

"धन्यवाद!"

"आचार्यो! अब घर लौटने की आज्ञा प्रदान करें।"

"तथास्तु।"

प्रवेश-प्राप्ति के दिन सभी छात्र शयनकक्ष में रखे तख्तों पर कम्बल बिछा कर सो गए। सिद्धार्थ जैसे ही तख्ते पर लुढ़का, गहरी निद्रा में निमग्न हो गया।

ब्राह्ममुहूर्त के समय पक्षी चहचहाने लगे। सिद्धार्थ सबसे पहले उठा। नित्यक्रिया से फारिग होकर रोहिणी के शीतल जल में कूद पड़ा। तैराकी में उसे विशेष आनन्द प्राप्त हुआ। बाहर निकलकर परिधान धारण कर पद्मासन लगाकर बैठ गया। पलभर में ध्यान-मग्न हो गया।

सूर्योदय होने पर विद्यापीठ का घंटा बजा और छात्र अपनी-अपनी कक्षा में। सामूहिक सरस्वती वंदना हुई। तीन बार ॐ शान्तिः कहकर और सभी प्राणियों का कल्याण हो का उच्चारण कर विद्यार्थी अपना-अपना आसन ग्रहण किए।

राम शास्त्री बोले, "राजकुमार सिद्धार्थ! शास्त्रार्जन, शस्त्रास्त्र-संचालन एवं धनुर्विद्या में दक्षता तभी प्राप्त होती है जब शिक्षार्थी का मन एकाग्र और सान्द्रित होता है।"

"गुरुवर! मेरा ऐसा विचार है कि जिसने अपने मन को जीत लिया है, संसार में उसी की विजय होती है।"

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

"सिद्धार्थ! तुम तो तत्त्वदर्शी प्रतीत होते हो।"

"गुरुवर! आप तो मनोविज्ञान के पंडित हैं। क्या मन का अच्छी तरह विश्लेषण कर समझा सकते हैं?"

"क्यों नहीं। सुनो। मन की विभिन्न अवस्थाएँ होती हैं। जैसे, विक्षिप्त, उद्विग्न, चंचल, विषयासक्त आदि। पर मन दो प्रकार का होता है—परिशुद्ध और अशुद्ध।"

"गुरुवर शुद्ध मन क्या है?"

"परिशुद्धता मन की वह अवस्था है जिसमें वह सभी कामनाओं और विकारों से मुक्त होता है। अच्छे कर्मों, योगाभ्यास तथा आत्म-संयम से वह गंगा-जल के समान परिमार्जित, विमल और पवित्र हो जाता है।"

"और अशुद्ध मन?"

"जब मन कामाशक्त और अनेक प्रकार की कामनाओं से आलिप्त होता है तब वह ऐन्द्रिक-सुख की प्राप्ति के लिए चंचल होकर सरपट मारता है। ऐसी अवस्था में वह बिल्कुल अशुद्ध होता है।"

सिद्धार्थ खुशी से उछल पड़ा और बोला, "गुरुदेव। आप तो सच्चे अर्थों में मनोविश्लेषक एवं मनोवैज्ञानिक हैं।"

"सिद्धार्थ! सचमुच मन मनुष्य के बंधन और मुक्ति का कारण है।"

"गुरुदेव! कृपया स्पष्ट करें?"

"सिद्धार्थ! मन जब ऐंद्रिय-विषयों की ओर उन्मुख होता है तो व्यग्र हो जाता है। वह अज्ञान और अविद्या के भँवर-जाल में डूबने-उतराने लगता है। सांसारिक मायाजाल से जल्दी मुक्ति उसे नहीं मिलती। किन्तु, जब राग-द्वेष, अहंकार, ईर्ष्या, मोह, लाभ-हानि, काम-वासना आदि मनोविकारों से पूर्णतः विमुक्त हो जाता है तो मनुष्य का मन मुक्तावस्था में पहुँच जाता है।"

"गुरुवर। मुक्तावस्था क्या है?"

"सिद्धार्थ! कामनाओं का त्याग मुक्तावस्था है।"

"गुरुवर! मन तो बड़ा चंचल होता है। उसे वश में करना बड़ा दुरूह कार्य है।"

"पर, सिद्धार्थ! तुम विलक्षण बालक हो। तुममें आत्मसंयम, लगन, निष्ठा दृढ़ संकल्प शक्ति एवं अपरिग्रह की भावना है। अतः मन्मथ स्वयं तुम्हारे सामने नतमस्तक हो जाएगा।"

"गुरुवर! मुझमें आत्मबल और दृढ़ विश्वास है कि मैं अपने जीवन-लक्ष्य को अवश्य पूरा करूँगा पर कुछ उपाय तो बताइए?"

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

"यौगिक क्रिया द्वारा मन को एकाग्र करना चाहिए। मन को वश में करने के दो सोपानों (विधियों) का उल्लेख मिलता है। पहली विधि का प्रयोग ऋग्वैदिक काल में होता था।"

"गुरुदेव! समझाने का कष्ट करें?"

"सिद्धार्थ! ऋग्वैदिक काल में ऋषि-महर्षि नाक के द्वार पर ऊपरी होंठ से लेकर नाक के द्वार के बीच जो त्रिकोण है। उस पर सतर्कता एवं दृढ़तापूर्वक अपने मन को केन्द्रित करते थे और अन्तःकरण और बाहर आती-जाती साँस को गिनते थे। धीरे-धीरे दृढ़ विश्वास के साथ अभ्यास करते थे और अन्ततः वे मन पर पूर्ण नियंत्रण कर लेते। इसे आनापान कहा जाता था। इसके बाद मन को भीतर ले जाकर शरीर के अन्दर होने वाली गतिविधियों पर मन को केन्द्रित करते थे। इस प्रक्रिया को विपश्यना कहते थे। अन्त में परम सत्य का ज्ञान हो जाता था। महर्षि दधीचि, जनक और वेदव्यास ने इसी मार्ग को अपनाकर परम सत्य को प्राप्त किया था।"

"गुरुवर। दूसरी प्रणाली कौन है?"

"सिद्धार्थ! इस प्रणाली का विश्लेषण स्वयं योगेश्वर श्रीकृष्ण ने किया था। ध्यान से समझो। एक साधक को अपने शरीर, गर्दन तथा सिर को सीधा रखकर नाक के अगले हिस्से पर मन को केन्द्रित करना पड़ता है। जब मन वश में हो जाता है तो दृढ़, संयमित, भयरहित, अहंकार, क्रोध, काम आदि से विमुक्त होकर निरमल मन से अपने अन्तःकरण का भलीभाँति निरीक्षण करना चाहिए। अभ्यास करते-करते आत्मसत्य अवश्य प्राप्त होगा। और जब मन वश में होगा तो सारा विश्व हाथ में आ जाएगा।"

"गुरुवर! क्या लोभ आत्मोन्नति में बाधक होता है?"

"सिद्धार्थ! जिस प्रकार गहरे जल वाली बहुत-सी नदियों के मिल जाने पर भी समुद्र का पेट नहीं भरता, उसी प्रकार कितने भी पदार्थ का लाभ क्यों न हो, लोभी का पेट कभी नहीं भरता।"

"अच्छा गुरुवर! क्रोध के विषय में आपका क्या विचार है?"

"सिद्धार्थ! क्रोध मानसिक दुर्बलता का परिचायक है। इसका श्रीगणेश अज्ञता से तथा अंत पश्चाताप में होता है। पर, नियंत्रित क्रोध में ऐसी आध्यात्मिक शक्ति रूपान्तरित हो सकती है जो सारे संसार को हिला दे?"

"गुरुदेव! चित्त की शान्ति से क्या लाभ होता है?"

"सिद्धार्थ जब संयम, आनापान एवं विपश्यना से चित्त प्रशान्त हो जाता है तो शुभाशुभ कर्म जड़ से विनष्ट हो जाते हैं। प्रशान्त मन वाला व्यक्ति अन्तःकरण

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

का निरीक्षण करता हुआ अक्षय आनन्द को प्राप्त करने में सफल हो जाता है।"

सायंकाल होते ही छुट्टी का घंटा बजा और सभी छात्र छात्रावास में चले गए। थके माँदे थे। खा-पीकर गहरी निद्रा में निमग्न हो गए।

प्रातःकाल सात बजे कार्यारम्भ की घंटी बजी। सभी विद्यार्थी शस्त्रास्त्र प्रयोग एवं अभ्यास के प्राँगण में जुट गए। विशाल शाल-वृक्षों की चोटी पर मिट्टी से बने पक्षियों को टाँग दिया गया था। आचार्य कुडंज जैसे ही रंगांगण में पधारे, अभ्यासार्थी सतर्क होकर खड़े हो गए। छात्रों को संबोधित करते हुए वह बोले, "प्रिय छात्रो! तुम लोग क्षत्रिय हो और वीरता, शक्ति, संकल्प, दक्षता, युद्ध में धैर्य, उदारता और नेतृत्व—ये क्षत्रियों के स्वाभाविक गुण हैं।"

"गुरुदेव! हम आज राजकुमार हैं। कल अपने शाक्यगण के राजा बनेंगे। अतः राजा की विशेषताओं से हमें अवगत कराएँ?"

"बच्चो! एक राजा को बगुले के समान एकाग्रचित्त होकर अपने उत्तरदायित्व पर गंभीरतापूर्वक मनन-चिंतन करना चाहिए। युद्धस्थल में सिंह की तरह दहाड़ना चाहिए और भेड़िये के समान आक्रमण करना चाहिए।"

संबोधित करने के बाद आचार्य जी ने अपने छात्रों को बाण-संचालन, तलवार, भाला, परशु आदि अस्त्रों की संचालन विधियों से परिचित कराया। इसके बाद उन्हें अभ्यास करने का आदेश दिया।

महानाम, अनिरुद्ध, आनन्द, नन्द, देवदत्त आदि ने धनुष की प्रत्यंचा पर बाण चढ़ाकर लक्ष्य वेध किया पर उन्हें आशातीत सफलता नहीं मिली। अन्त में सिद्धार्थ की बारी आई। एकाग्रचित्त होकर सजग मन से तरकस से बाण निकाल कर इतना सटीक निशाना साध कर पेड़ की चोटी पर रखी हुई पक्षियों और मछलियों को वह देखने लगा।

अचानक कुडंज पूछ पड़े, "सिद्धार्थ! तुम्हें क्या दिखाई दे रहा है?"

"गुरुवर! आँख।"

"ठीक है। लक्ष्य-वेध साधो।"

"इधर बाण छूटा, उधर पक्षियों और मछलियाँ विद्ध होकर धराशायी।"

आठों आचार्यों ने उसकी पीठ थपथपाई और बोले, "तुम तो एकलव्य से बड़े निशानची निकले।"

सिद्धार्थ की प्रशंसा सुनकर सभी शाक्य बालक बहुत खुश हुए पर देवदत्त के कलेजे पर साँप लोटने लगा।

आचार्य ध्वज मल्ल विद्या के विभाग के अध्यक्ष थे। सायंकाल के समय वह सभी छात्रों को साथ लेकर अखाड़े पर गए। आनन-फानन में सभी छात्र लँगोट

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

बाँधकर तैयार हो गए। ध्वज जी बोले, "सिद्धार्थ! क्या तुम बारी-बारी से सभी छात्रों से लड़ सकते हो?"

"गुरुवर! आपकी आज्ञा शिरोधार्य है।"

बारी-बारी से सभी छात्र सिद्धार्थ के साथ कुश्ती लड़े पर....। अन्त में देवदत्त उछल पड़ा। अखाड़े में जैसे ही उसने हाथ मिलाया, सिद्धार्थ ने उसे दोनों हाथों में लेकर आकाश दिखाकर धड़ाम से पटक दिया। यहीं से देवदत्त के मन में सिद्धार्थ के प्रति ईर्ष्या और द्वेष का जो भाव जागा, वह आजीवन बना रहा।

देवल विद्यापीठ में जब सिद्धार्थ और उसके भाइयों का अध्ययन-काल समाप्त हो गया तो सबके सब घर चले गए। और बच्चे आगे पढ़ने के लिये तैयार न थे। पर, सिद्धार्थ गूढ़ विद्याओं को सीखना चाहता था। शुद्धोधन ने उदायी को बुलाकर कहा, "मंत्रीवर! सिद्धार्थ को सब्बमित्त के आश्रम पर ले जाओ?"

"राजन्! आपका विचार अति उत्तम है। सब्बमित्त उदिच्च देश के सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मण हैं। इस समय उत्तर-पूर्व में उनसे बड़ा विद्वान और कोई नहीं है।"

"मंत्रीवर! वह चारों वेदों, वेदांगों (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष) तथा छहौ शास्त्रों (सांख्य, योग, वेदान्त, मीमांसा, न्याय, वैशेषिक) के ज्ञाता हैं।"

"राजन्! रथ तैयार है। मैं अभी सिद्धार्थ को लेकर उनके आश्रम जा रहा हूँ।"

सिद्धार्थ कई वर्षों तक वहाँ रहा और सांख्य दर्शन तथा योग का सम्यक अध्ययन कर राजमहल वापस आ गया।

सिद्धार्थ का व्यक्तित्व अत्यन्त ही अनुपम एवं चुम्बक की तरह आकर्षक था। ऊँचा कद और आजानुबाहु। लालट आभायुक्त, आँखें तेजस्वी और चेहरा आलोकित। वह सदा ध्यानमग्न रहा करते थे। शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ एवं बलिष्ठ थे। मानसिक दृष्टि से शान्त और गंभीर एवं स्वभाव से नवनीत की तरह कोमल थे। उनका गौर वर्ण भगवान भास्कर की तरह देदीप्यमान था।

देवदह पुत्रों सहित महाप्रजापति का आगमन

मकर संक्रान्ति का पावन पर्व सन्निकट आ गया। महाराज शुद्धोधन से अनुमति लेकर सिद्धार्थ और नन्द को साथ लेकर महाप्रजापति मायके चली गईं। अपने दोनों नातियों को देखकर अञ्जन फूला न समाया। नातियों को देखते ही सुलक्षणा ने आगामी कल की योजना बना डाली।

पुत्री से बोली, "महाप्रजापति! बेटी कल सपरिवार हम दण्डपाणि के घर

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

चलेंगे। हम आपस में गप्प-शप्प करेंगे और सिद्धार्थ गोपा के साथ पतंग उड़ाएगा।"

महाप्रजापति बोली, "माँ! तुम्हारा विचार अति उत्तम है।"

दूसरे दिन स्नान करके परिवार के लोग नये वस्त्र धारण किए। तिल, तांडुल, गुड़, द्रव्य आदि लेकर शिव-मंदिर चले गए। गरीबों तथा भिखारियों को तिल-तांडुल तथा द्रव्य दान किए। भिक्षार्थी प्रसन्नचित्त से दाता को आशीर्वाद देने लगे।

दोपहर को भोजनोपरान्त सारा परिवार रथ में सवार होकर दण्डपाणि-भवन पहुँच गया। दण्डपाणि ने पुत्री और पत्नी सहित भाई, भाभी, बहन तथा भांजों का भव्य स्वागत किया।

दण्डपाणि की पुत्री यशोधरा के रूप-लावण्य पर महाप्रजापति मुग्ध हो गईं। बोली, "ऐसी रूपवती कन्या को आज तक मैंने नहीं देखा।"

सुकन्या बोली, "देखो! नजर मत लगाना।"

"भाभी! इस कन्या का क्या नाम है?"

"नाम तो अनेक हैं पर हम इसे यशोधरा नाम से पुकारते हैं और पुरवासी गोपा कहते हैं।"

"यशोधरा कितने वर्ष की हुई?"

"वयःसंधि समाप्त होने वाली है।"

"क्या नृत्य-कला और वीणा-वादन की कला से भिज्ञ है?"

"महाप्रजापति जी। हाँ, दोनों कलाओं में निष्णात हैं। स्वर तो कोयल के स्वर को भी मात कर देता है। जब मयूर-नृत्य करती है तो दर्शक दाँतों तले अँगुली दबा लेते हैं।"

"ठीक है। कहकर महाप्रजापति ने यशोधरा को अपने पास बुलाकर चूमा-चाटा और सिद्धार्थ और नन्द को आदेश दिया कि पुष्पवाटिका में जाकर यशोधरा के साथ खेलो।"

तीनों की प्रसन्नता की सीमा न रही। प्रथम दर्शन में ही यशोधरा सिद्धार्थ पर लट्टू हो गई। मृगनयनी के बाण से सिद्धार्थ बचा न रह सका। उसके हृदय में भी प्रेम का स्फुरण हो गया। नेत्र, नेत्र से लड़ गये।

यशोधरा ने सिद्धार्थ से प्रश्न किया, "सिद्धार्थ! तुम तो एक राजकुमार हो फिर भी एक संन्यासी की तरह शान्त, कोमल एवं ध्यान-मग्न क्यों रहते हो?"

"यशोधरा। राजसी ठाट-बाट, ऐश्वर्य-प्रदर्शन एवं बाह्याडम्बर से मुझे घृणा है।"

"सिद्धार्थ! तुम्हारा विचार सत् और पवित्रता का आगार है। सादगी महान पुरुषों का सबसे बड़ा गुण है। किन्तु....।"

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

"रुक क्यों गई?"

"इसलिए कि अभी तुम्हारे ऊपर तीन ऋण हैं।"

"कौन से?"

"मातृ-ऋण, पितृ-ऋण और देव-ऋण। इन तीनों ऋणों को चुकाने के बाद ही कोई सत्यान्वेषी मोक्ष-प्राप्ति का अधिकारी होता है।"

"यशोधरे! तुम तो बहुत बड़ी विदुषी लगती हो। ब्रह्मा ने तुम्हें जैसा अनुपम रूप, रंग दिया है वैसा वैदुष्य भी। सामवेद तो जानती ही हो। अब कुछ सुनाओ?"

"सिद्धार्थ! क्या सुनना चाहते हो?"

"गीत।"

"वीणा तो नहीं है। वैसे ही एक गीत सुनाती हूँ।"

"अति उत्तम।"

सुनो—

"बाहर नहीं, अपने भीतर देखो
वहीं, तुम्हारा सच्चा मीत मिलेगा
अपने चंचल मन को पहचानो
वह बिगड़े घोड़े-सा है
उस पर संयम की
लगाम लगाओ?"

सिद्धार्थ की अविद्या काफूर हो गई।

गद्गद हो गया। बोला, "यशोधरा तुममें यौवनोन्माद लेशमात्र भी नहीं है। लगता है कि तुम सत्यान्वेषी हो।"

"यह तो समय बताएगा।"

अंधेरा छाने लगा। महाप्रजापति ने भाई-भाभी से इजाजत ली और माता-पिता तथा बच्चों को लेकर सुलक्षण-भवन पहुँच गई।

करुणा-निधान

जब करुणा प्राणों में बस जाती है तो सच्चे धर्म का दर्शन होता है। सिद्धार्थ बचपन से ही सहृदय और दयालु था। जन्म के बाद सात दिन के अन्दर ही उसने मातृ-वियोग का दुःख भोगा था। अतः मानव मात्र के नहीं अपितु सभी प्राणियों के दुख और मृत्यु को देखकर उसका हृदय करुणा से विगलित हो जाता था। प्रायः ऐसा देखा जाता है कि एक संवेदनशील व्यक्ति जब पशु-पक्षियों, कीड़े-मकोड़ों को शक्तिशाली पशुओं तथा पक्षियों द्वारा मारते हुए देखता है तो उसके हृदय में

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

करुणा का सागर उमड़ पड़ता है। सिद्धार्थ के मन में करुणा शैशवावस्था से बस गई थी। अतः उसे धर्म का ज्ञान हो गया था।

कार्तिक माह चल रहा था। किसान खेत जोतकर रबी की फसल को खेतों में बो रहे थे। शुद्धोधन बड़े खेतिहर थे। अतः सवेरा होते ही जलपान करके अपने खेतों पर चले जाते थे। एक दिन सिद्धार्थ ने उनसे कहा, "पिताजी! क्या मैं भी आपके साथ चल सकता हूँ?"

"क्यों नहीं, चलो।"

पिता के साथ सिद्धार्थ अपने खेत पर गया और मेड़ के पास एक शाल का पेड़ देखकर उसके नीचे बैठ गया। वह हलवाहों को अच्छी तरह देख रहा था। हल जोतते समय हराई में एक कीड़ा आ गया। हलवाहे ने डंडे की नोक पर उसे रखकर मेंड़ पर फेंक दिया। ऊपर एक चील मँडरा रही थी। कीड़े को देखकर नीचे झुकी और झपटा मारकर उसे अपने पंजे में लेकर उड़ गई। इस घटना को देखकर उसका करुण हृदय घायल हो गया। दुखियों की दशा तो वही जनता है जो परिस्थितियों से दुखी होता है। वह गम्भीरतापूर्वक सोचने लगा कि यह तो मत्स्यन्याय है। शोकाकुल उसके हृदय से यह उद्‌गार प्रकट हुआ, "हाय! यह संसार कितना विचित्र है! हर सबल प्राणी निर्बल को मारकर खा जाता है।"

शिकार

शिकार करने का निर्देश राजकुमारों को बचपन से दिया जाता था। नन्द, देवदत्त आदि शिकार के लिए प्रतिदिन लुम्बिनी वन में जाया करते थे। एक दिन महाप्रजापति के विशेष आग्रह करने पर सिद्धार्थ भी आखेट करने गया।

जब अपने भाइयों के साथ वनस्थली में पहुँचा तो वहाँ खरगोश, नीलगाय, हिरण आदि उछल-कूद कर रहे थे। सिद्धार्थ ने जैसे ही एक हिरन के बच्चे पर बाण साधा, उसकी माँ की आँखों से अश्रुकण प्रवाहित होने लगे। यह करुण दृश्य उससे देखा न गया। उसके हाथ से धनुष सहित बाण नीचे गिर गया। देवदत्त उसका मजाक उड़ाने लगा।

घर पहुँचकर अन्य क्षत्रिय बालकों ने प्रजापति से शिकायत करते हुए कहा, "माँ! यह तो डरपोक है। शिकार क्या करेगा?"

सिद्धार्थ से रहा न गया। वह बोल उठा, "माँ! कायर मैं नहीं, ये सब हैं। शेर बाघ की दहाड़ सुनकर ये लोग नौ दो ग्यारह हो जाते हैं पर हिरन और खरगोश पर टूट पड़ते हैं। निरीह जानवरों की हत्या करना महापाप है।" महाप्रजापति बोलीं, "बेटा! शिकार करना तो क्षत्रियों का धर्म है। यदि युद्ध का अभ्यास अभी से नहीं

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

करोगे तो दुश्मनों से अपने गण की रक्षा कैसे करोगे?"

"माँ! सभी प्राणियों का जीवन अमूल्य है। अतः किसी जीव की हत्या करना मानवता के विरुद्ध सबसे बड़ा अपराध है। प्राणि-रक्षा सबसे बड़ा धर्म है।"

"सिद्धार्थ! वीरता, शक्ति, संकल्पता, दक्षता, युद्ध में धैर्य, उदारता और नेतृत्व की शक्ति का अपने अन्दर विकास करो।"

"माँ! सौहार्द, मैत्री-भावना, शान्ति और समझौता द्वारा मैं युद्ध का रास्ता ही बन्द कर दूँगा।"

हँसती हुई प्रजापति बोली, "बेटा! ज्ञानी, मुनि और ऋषि जैसी वाणी बोलते हो। भगवान तुम्हारा मार्ग प्रशस्त करें।"

आखेटक से बचाने वाला बड़ा होता है

आश्विन मास था। सिद्धार्थ एक विशाल झील के किनारे जामुन की छाया के नीचे ध्यानमग्न हो गया। अचानक एक हंस के पंख के फड़फड़ाने तथा मुँह से आर्तनाद सुनाई पड़ा। ध्यान-च्युत होकर वह खड़ा हो गया। सामने देखा तो एक हंस अपने दल से अलग घायल होकर छटपटा रहा था। दौड़कर उसे हाथों में ले लिया। पेड़ के नीचे लाकर उसने हंस के शरीर से वाण को निकालकर अलग रख दिया। अपने गमछे से उसके घाव से खून साफ किया। पास से जड़ी-बूटी निकालकर घाव पर लेप लगाया। चन्द मिनटों में सिद्धार्थ के स्नेह-सिक्त उपचार से हंस चंगा हो गया।

पन्द्रह-बीस मिनट में हंस को बाण से घायल करने वाला देवदत्त आ गया। ताव से सिद्धार्थ से पूछा, "तुमने किसी घायल हंस को देखा है?"

"देवदत्त! यह देखो? मैंने सेवा-शुश्रूषा कर हंस को चंगा कर दिया है।"

"वह हँस मुझे दो?"

"क्यों?"

"क्योंकि मैंने अपने बाणों से हंस को मारा है। अतः न्यायतः इस हंस पर मेरा अधिकार है।"

"देवदत्त। मैंने इस हंस को बचाया है। देखो इसकी आँखों को। कितनी करुण आँखें हैं इसकी!"

"सिद्धार्थ! पहेलियाँ मत बुझाओ। हंस मुझे दे दो।"

"देवदत्त! मैंने इसको बचाया है और तुमने इसको मारा है। बचाने वाला का अधिकार मारने वाले से बड़ा होता है।"

"ठीक है। चलो शुद्धोधन के न्यायालय में?"

न्याय के आसन पर बैठकर शुद्धोधन ने दोनों पक्षों के तर्क-वितर्क को ध्यान

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

से सुना।

देवदत्त ने कहा, "महाराज हंस एक जंगली जीव है। मैंने इसे बाण से मारकर गिराया है। अतः यह हँस मुझे दिलवा दीजिए।"

शुद्धोधन ने सिद्धार्थ से कहा, "सिद्धार्थ! हंस देवदत्त को दे दो।"

"महाराज! मैंने इस हंस को बचाया है। अतः इस पर मेरा अधिकार है। मारने वाले से बचाने वाले का अधिकार बड़ा होता है।"

सिद्धार्थ के तर्क से शुद्धोधन सहमत हो गया। बोला, "सिद्धार्थ! तुम्हारा कथन सत्य तथा मानवीय गरिमा से परिपूर्ण है। सच है कि हत्यारे से उद्धारक का अधिकार बड़ा होता है। हंस तुम्हारा है।"

देवदत्त अपना-सा मुँह लेकर अदालत से बाहर चला गया। सिद्धार्थ ने हंस को अपने हाथों से मुक्त कर आकाश में उड़ा दिया।

सच है जिस समय मनुष्य का नेत्र करुणा से उन्मीलित होता है, उस समय वह दूसरों में अपने को तथा अपने में दूसरों को देखता है।

समझौता

परोपकार, प्रेम, सौहार्द, सहानुभूति आदि का सम्बन्ध घड़ी के पेंडुलम की भाँति सदा घूमता रहता था। कभी आगे जाता है कभी पीछे। इसी प्रकार दो मनुष्यों, संघों, समूहों, वर्णों और वंशजों का मधुर सम्बन्ध चिरायु नहीं अपितु अस्थिर होता है, अनित्य होता है। जैसे ही स्वार्थ टकराया, एक-दूसरे ही परिवार के दो सदस्य, दो मित्र, दो समुदाय, दो गण और दो राष्ट्र एक के कट्टर शत्रु बन जाते हैं। लामबद्ध होकर एक दूसरे पर युद्ध की घोषण कर देते हैं और लड़-भिड़ कर खाक में मिल जाते हैं। महल के महल खण्डहर बन जाते हैं।

युद्ध मनुष्य की चरमवैयक्तिक महत्वाकाँक्षा का प्रतीक है। युद्ध में सत्य की जगह असत्य का सहारा लेना पड़ता है। युद्ध सत्य युग, त्रेता, द्वापर आदि हर युग की प्रमुख एवं जटिल समस्या रही है। मनुष्य जब प्रभुता एवं सर्वशक्ति सम्पन्न जिद और उन्माद की पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है तब उसके मन का राक्षस इतना प्रबल हो जाता है कि वह मानवीय मूल्यों की नृशंसतापूर्वक हत्या कर देता है। उसे करणीय एवं अकरणीय का बोध नहीं रह जाता है।

आज से पच्चीस सौ वर्ष पहले जम्मूद्वीप में हिमालय की उपत्यका में प्रवहित रोहिणी नदी के इस पार शाक्यों के खेत थे और उस पार कोलिय लोगों के। दोनों स्वतंत्र गण थे और दोनों में मधुर सम्बन्ध था। सिद्धार्थ के पिता शुद्धोधन शाक्य थे और नाना अञ्जन कोलिय। दोनों वंशजों में खून का सम्बन्ध था।

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

जिस समय सिद्धार्थ का सोलहवां साल चल रहा था, उस साल उत्तर-पूर्व भारत में मानसून का वेग सम्पूर्ण वर्षा-काल तक न रहा। भाद्रपद जैसे ही समाप्त हुआ मेघ नाराज होकर आकाश से गायब हो गए। मूसलाधार वर्षा की कौन कहे, बूँदाबांदी भी ठप हो गई। धान की बालें फूट रही थीं। जड़ों को पानी की बहुत बड़ी आवश्यकता थी। सूखा पड़ने के कारण किसानों में हाहाकार मच गया।

रोहिणी नदी में जो बाँध बँधा था, उसमें इतना जल संगृहित न था कि उससे शाक्यों और कोलियों के खेतों को सींचा जा सके। दोनों स्वार्थांधा हो गए। पानी लेने के लिए दावा करने लगे। दोनों ओर के किसान अपने-अपने सेनापति के नेतृत्व में भाला, तलवार, गँड़ासा, तीर-कमान और परशु लेकर एक-दूसरे को ललकार कर कहने लगे, "पहले हम खेत सींचेंगे। कोलियों के राजकुमार भी आ गए। गाली-गलौज और अपशब्दों का व्यवहार पराकाष्ठा पर पहुँच गया।"

पिता से अनुमति लेकर राजकुमार सिद्धार्थ भी वहाँ पहुँच गया। अविलम्ब वह समझ गया कि शाक्यों और कोलियों के मन पर हिंसा का भूत सवार हो गया है। दोनों प्रज्ञा-कुंठित हैं। पहुँचते ही दोनों हाथ जोड़कर दोनों सेनाओं और उनके सेनापतियों से विनम्रतापूर्वक मधुर वाणी में निवेदन किया, "महानुभावो! हथियार नीचे रख दें?"

उसकी मधुर वाणी, व्यक्तित्व एवं विनम्र व्यवहार में इतना आकर्षण था कि दोनों ओर के सैनिक हथियार भूमि पर रखकर ठिठक गए। सिद्धार्थ का हृदय करुणा से विगलित हो गया। उनकी करुणा से दोनों ओर के आदमियों का हृदय नवनीत की तरह पिघल गया। सिद्धार्थ की करुणा में शीतल वर्षाच्छादित मेघ था जिसकी वर्षा से शाक्यों और कोलियों का क्रूर हृदय आर्द्र हो गया।

शान्त वातावरण देखकर सिद्धार्थ बोलो, "सेनापतियो! जीवन अनन्त है। उसे स्वार्थ की भावनाओं में बाँधना पाप है।"

शाक्य सेनापति बोला, "राजकुमार! आपका कथन अक्षरशः सत्य है। स्वार्थ ने हमें अंधा बना दिया। हम विवेकहीन होकर अपने मधुर सम्बन्धों को भूल गए।"

"अच्छा, आप मेरे सेनापति! समय है। युद्ध रोक दीजिए।"

"राजकुमार! आपकी आज्ञा मान्य है।"

कोलिय सेनापति भी भाव-विह्वल हो गया। बोला, "राजकुमार युद्ध दो महाप्रभुओं के अहंकार एवं अविवेक का व्यापार है।"

"हाँ, सेनापति। अहंकार मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु है। जब किसी प्रभुता सम्पन्न व्यक्ति के मन में क्रोध उत्पन्न होता है तो सबसे पहले उसके विवेक का हरण कर लेता है। अतः उसके अन्दर करणीय-अकरणीय के निर्णय करने की

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

शक्ति नहीं रह जाती है।"

कोलिय सेनापति राजकुमार की मार्मिक बातों और विचारों को सुनकर गद्गद हो गया। बोला, "राजकुमार मानव जाति का यह सबसे बड़ा सौभाग्य है कि तुम्हारे जैसे अलौकिक युवक का इस पृथ्वी पर अवतार हुआ है।"

"कोलिय सेनापति! एक बात और बताना चाहता हूँ।"

"राजकुमार! आपके व्यक्तित्व और वाणी में ऐसा आकर्षण है जो सुनने वालों के मन में अनायास मैत्री और करुणा का भाव जगा देता है। बतलाओ?"

"सेनापति! मानव-जन्म कई जन्मों के संचित पुण्य से प्राप्त होता है। अतः हमें अपने स्वार्थ को सिद्ध करने के लिए किसी का खून नहीं करना चाहिए।"

"आपका कहना बिल्कुल ठीक है।"

"दोनों ओर के सेनापतियो! ध्यान से सुनो। धर्म पर चलने के लिए न्यायकर्त्ता को पक्षपात का दामन त्यागना पड़ता है। मेरे लिए शाक्य और कोलिय दोनों एक समान हैं, दोनों प्रिय हैं। क्या आप लोग मेरे सुझाव और निर्णय को निस्संकोच स्वीकार करेंगे?"

दोनों सेनापति एक-दूसरे के सन्निकट आ गए। हाथ में हाथ लेकर बोले, "राजकुमार! आप साक्षात् दिव्यशक्ति हैं। आपका सुझाव हम दोनों को मान्य होगा।"

"तो, ध्यान से सुनो। नदी में जल अत्यन्त ही कम है। अतः यदि रोहिणी नदी के जल को बाँट दिया जाये तो दोनों ओर के खेतों के धान झुलस कर सूख जाएँगे। मुआरा हो जाएँगे। परिणाम इसका यह होगा कि शाक्य और कोलिय दोनों को भोजन के लाले पड़ जायेंगे।"

दोनों सेनापति बोल उठे, "राजकुमार! आपके सद्सुझाव से हमारा अज्ञान काफूर हो गया। अब बताइए क्या करें?"

"शाक्य-सेनापति। पानी कोलिय किसानों के खेतों में जाने दीजिए!"

बीच में कोलिय सेनापति बोल उठा, "राजकुमार! हम तो धर्म-संकट में पड़ गये। हमारे लिए क्या आदेश है?"

"कोलिय सेनापति! हम आपके पॉव पूज्य हैं। अतः फसल कटने पर आधा-आधा धान शाक्य परिवारों को दान कर दें।"

कोलियों की खुशी का ठिकाना न रहा। शाक्य भी राजकुमार की दूरदर्शिता पर फूले न समाए। दोनों ओर के सैनिक सिद्धार्थ की जय-जयकार करने लगे।

कोलिय सैनिक दण्डपाणि के महल में जाकर सिद्धार्थ की भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे। यशोधरा एकाग्र मन से सिद्धार्थ की प्रशंसा सुन रही थी। उसने अपने

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

मन में निर्णय किया कि, "मैं सिद्धार्थ को छोड़कर और किसी का वरण नहीं करूँगी।"

पाणिग्रहण संस्कार

जव यशोधरा सोलह वर्ष की हुई तो दण्डपाणि और उसकी पत्नी को शीघ्रातिशीघ्र सुपुत्री का हाथ पीला करने की उत्कट कामना उत्पन्न हुई। कार्तिक माह का अवसान हो रहा था। दण्डपाणि ने अपनी गृह-लक्ष्मी से प्रेमपूर्वक विचार-विमर्श किया। राजा था। अतः वर-चुनाव के लिए स्वयंवर का आयोजन करना आवश्यक था। अगहन में विवाह के कई शुभमुहूर्त थे। अतः उसने पत्नी के सामने अगहन में स्वयंवर आयोजित करने का प्रस्ताव रखा।

पत्नी ने हाथ जोड़कर कहा, "प्रियवर! अगहन में सूर्यवंशी लड़कियों और लड़कों का विवाह अत्यधिक कल्याणकारी नहीं माना जाता।"

"क्यों?"

"प्रियवर! राम और सीता का पाणिग्रहण अगहन में हुआ था। दोनों को दर-दर ठोकरें खानी पड़ीं।"

"प्रिये! तुम्हारा कहना बिल्कुल सत्य है। सीता को बार-बार वियोगाग्नि में जलना पड़ा।"

"प्रियवर! मेरी तो यही इच्छा है कि स्वयंवर माघ शुक्ल चतुर्दशी को रखें और विवाह पंचमी को।"

"प्रिये! तुम्हारा सुझाव हर प्रकार से उत्तम है। शर्त क्या रखें?"

"प्रियवर! राजमहल के सन्निकट जो उद्यान है उसमें कई गगनचुम्बी ताड़ के वृक्ष हैं। किसी एक ताड़-वृक्ष की चोटी पर एक फिरकी बँधवा दीजिए। जो राजकुमार उसे वेध देगा, यशोधरा उसी के गले में जयमाला डालेगी।"

स्वयंवर की समुचित व्यवस्था करके दण्डपाणि ने सभी संघों के राजकुमारों को देवदह में आयोजित स्वयंवर में भाग लेकर अपने-अपने भाग्य का निपटारा करने का आमंत्रण भिजवा दिया। जब विभिन्न गणों के राजकुमारों को यशोधरा स्वयंवर का निमंत्रण मिला तो उनकी बाँछें खिल गईं।

कपिलवस्तु के राजकुमार सिद्धार्थ को भी यशोधरा स्वयंवर का निमंत्रण-पत्र मिला। शुद्धोधन और महाप्रजापति यशोधरा के रूप-लावण्य, शील, सदाचार एवं दूरदर्शिता से भलीभाँति परिचित थे। पुत्र को ग्राहस्थ्य जीवन में बाँधने के लिए उन्होंने यशोधरा को उपयुक्त समझा। उन्होंने तुरन्त सिद्धार्थ को स्वयंवर में भाग लेने के लिए विशेष रूप से प्रोत्साहित किया।

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

यशोधरा तन, मन, धन से सिद्धार्थ पर न्यौछावर थी। स्वयंवर की शर्त सुनकर वह ऊहा-पोह में पड़ी हुई थी। रात को सोई तो अवश्य पर नींद नहीं आई। क्या करती, करवटें बदलती रही। तीसरा पहर लगते ही निद्रा-निमग्न हो गई। विचित्र स्वप्न देखा। शिव और पार्वती सामने प्रकट हुए। पार्वती ने उसके सिर पर हाथ रखकर वरदान दिया। बेटी! तुम चिन्ता मत करो। तुम्हारा संकल्प सच्चा है। अतः शिव की कृपा से तुम्हारा मनोरथ अवश्य पूरा होगा। पति के रूप में सिद्धार्थ तुम्हें अवश्य प्राप्त होगा।

माघ शुक्ल चतुर्दशी को सारा नगर नववधू की तरह सज गया। दूर-दूर के राजकुमार देवदह में दल-बल से उपस्थित हुए।

दण्डपाणि पत्नी और यशोधरा के साथ रंग-भूमि पर उपस्थित हुआ। जैसे चकोर चन्द्रमा को निखरता है वैसे ही सभी राजकुमार यशोधरा के अलौकिक रूप को निहारने लगे। पर, सिद्धार्थ शान्तचित्त बैठा रहा। न इधर हिला न उधर।

राजकुमारों को संबोधित करते हुए दण्डपाणि बोले, "राजकुमारो! सामने ताड़ की चोटी पर जो फिरकी द्रुतगति से घूम रही है, उसे लक्ष्य-वेध करके जो राजकुमार गिरा देगा, उसी के गले में राजकुमारी जयमाला डालेगी।"

बारी-बारी से सभी राजकुमार अपने आसन से उठे और धनुष की प्रत्यंचा पर बाण साधकर निशाना लगाए पर किसी को लक्ष-वेध की सिद्धि प्राप्त नहीं हुई।

राजकुमारों की असफलता देखकर दण्डपाणि घबड़ा उठा। उसके चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। दण्डपाणि की विह्लता देखकर सिद्धार्थ का हृदय करुणा विगलित हो उठा। हाथ जोड़कर बोला, "महाराज। धैर्य धारण करें। निराश न हों।"

दण्डपाणि को सांत्वना देने के बाद उसने मन को एकाग्र कर फिरकी पर जैसे ही बाण मारा, कटकर वह धरती पर गिर पड़ी। सिद्धार्थ की सफलता पर यशोधरा का चेहरा उसी प्रकार दमक उठा जैसे सूर्य की आभा पड़ते ही कमल प्रफुल्लित हो उठता है।

यशोधरा की सहेलियाँ खिलखिलाने लगीं। उनसे घिरी हुई यशोधरा हाथ में गमगमाती हुई जयमाला लेकर आगे बढ़ी। सिद्धार्थ ने गर्दन झुका दी। चन्द्रमुखी यशोधरा ने उचककर जयमाला उसके गले में डाल दी। सारा परिवेश तालियों की गड़गड़ाहट से गूँज उठा।

दण्डपाणि ने कपिलवस्तु में एक त्वरित दूत भेजा। शुभ समाचार पाकर शुद्धोधन और महाप्रजापति फूले न समाए। बारात सज-धजकर देवदह की ओर चल पड़ी। वसंतपंचमी को चार बजे द्वारचार हुआ। दोनों ओर के पंडितों ने शाखोच्चार एवं स्वस्तिपाठ किया। वैदिक मंत्रों के उच्चावच पाठ से सारा परिवेश

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

निनादित हो उठा। जल-जलपान करके सारी बारात जनवासे चली गई।

सात बजे रात में जब घराती-बराती भोजन कर लिए तब कन्या-पक्ष और वर-पक्ष का सारा परिवार मंडप में कोमल आसन पर विराजमान हो गया। गाजे-बाजे, मंगल गायन एवं मंत्रोच्चार के साथ पाणिग्रहण संस्कार हुआ। सिद्धार्थ ने पंडितों के निवेदन पर यशोधरा की माँग भरी। फेरा होते-होते भोर हो गया।

जनवासा पहुँचकर नित्य-क्रिया से फारिग होकर स्नान-ध्यान के उपरान्त सभी बराती डटकर जलपान किये। फाल्गुनी हवा थी। घराती-बराती जमकर रंग खेले। सभी लोग रंग से सराबोर हो गए।

दण्डपाणि राजा था। बड़ी धूम-धाम से उसने अपनी बिटिया की विदाई की। सोना, चाँदी, हीरा-मोती का ढेर लग गया। यशोधरा की टहल बजाने के लिए दण्डपाणि ने दासियों और परिचारिकाओं का ताँता लगा दिया। सबकी सब हसीन थीं। मृगनयनी एवं गौरवर्ण थीं।

बारात जब कपिलवस्तु पहुँची तो सारे नगरवासियों ने सिद्धार्थ और यशोधरा का भव्य स्वागत किया। औरतें और युवतियाँ परस्पर कहने लगीं, "सिद्धार्थ कितना भाग्यवान है! कितनी सुन्दर पत्नी मिली है राजकुमार को! इन दोनों के रूप-लावण्य को देखकर रति और कामदेव भी ओछे जान पड़ते हैं। लगता है शिव-पार्वती की जोड़ी है।"

महाप्रजापति के साथ सुहागिनें मंगलगान करती हुई पालकी के पास पहुँचीं। नाइन एवं कहारिन परछन का सारा सामान लेकर महाप्रजापति के साथ चल रही थीं। डोली के पास जाकर पर्दा हटाकर सर्वप्रथम महाप्रजापति ने वर-वधू को देखा। महाप्रजापति ने क्रम से दोनों हाथों पर चन्दन, हल्दी, दही, अक्षत लेकर अच्छी तरह मिलाया और इसके बाद वर-वधू के ललाट पर तिलक किया। इसके बाद मूसल और बट्टा हाथ में लेकर दोनों के सिर पर घुमाया। फिर मुस्कराती हुई वर-वधू को हाथ का सहारा देकर बाहर निकाला। फर्श पर रंग-बिरंगे सुगंधित पुष्प बिछे थे। उस पर धीरे-धीरे कदम रखते हुए दुल्हन और दूल्हा सुहाग-मंदिर में गए।

बहू के आगमन के उपलक्ष्य में शुद्धोधन ने घर-घर में पकवान, मिठाइयाँ और फल आदि बँटवाया। सारे नगरवासी राजा के सौजन्य, सौहार्द एवं औदार्य से निहाल हो गए।

सुहागरात

सिद्धार्थ और यशोधरा के शयनकक्ष में रातरानी, केवड़ा, बेलि आदि सुगंधित फूलों की मालाएँ लटकी हुई थीं। हीरे-जवाहरात दीवारों में जड़े हुए थे। मखमली सेज

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

पर नाना प्रकार के पुष्प बिछे हुए थे। सारा कक्ष इत्र से सराबोर था। परिचारिकाएँ मधुर गले से गीत गा रही थीं।

दस बजे रात जब परिवार के सभी लोग खा-पीकर अपने-अपने शयनकक्ष में चले गए तब यशोधरा भी इन्द्राणी की तरह सज-धजकर अपने सुहाग मंदिर में जाकर अपनी पलंग पर बैठ गई। बड़ा घूँघट निकाले थी।

जैसे ही सिद्धार्थ पलंग के पास पहुँचे, नीचे उतरकर उसके पैरों पर गिर पड़ी। सिद्धार्थ ने प्यार से दुलारते हुए दोनों हाथ से पकड़कर उसे पलंग पर बैठा दिया। नेग देकर जब घूँघट उठाने लगा तो बोली, "प्रियवर! आपसे कुछ प्रश्न पूछने हैं। उनका समुचित उत्तर पाकर ही स्पर्श करने दूँगी।"

"ठीक है, पूछो?"

"क्या मेरा और तुम्हारा संबंध सात जन्मों से चल रहा है।"

"मुझे तो ऐसा ही लगता है।"

"आपका चेहरा-मुहरा मर्यादा पुरुषोत्तम राम की तरह शान्त, कोमल एवं मनोहर लगता है। पर, उन्होंने धोबी के कहने पर सीता मइया को त्याग दिया। आप भी वैसे ही मुझे त्याग तो नहीं देंगे?"

"प्रिये! यह तो समय ही बताएगा। पर नारी माया है। विश्व-कल्याण के लिए मोह-माया को त्यागना ही पड़ता है।"

"प्रियवर! राम एक पत्नीव्रती थे। सीता के अलावा उन्होंने किसी अन्य नारी को अपनी अर्द्धांगिनी नहीं बनाया। क्या आप भी मुझे छोड़कर दूसरी नारी के प्रेम-पाश में नहीं बँधोगे?"

"प्रिये! तुम्हारा यह प्रस्ताव सिर माथे पर है। तुम देख रही हो कि हमारे महल के बरामदे नंग-धड़ंग सुन्दर से सुन्दर रमणियों का जमघट लगा हुआ है। वे मुझे रिझाने और अपने-अपने बाहु-पाश में बाँधने का हर संभव प्रयास करेंगी पर मैं तुझे छोड़कर किसी नारी पर हाथ नहीं लगाऊँगा।"

वचन पाकर यशोधरा ने सिद्धार्थ को अपनी बाहों में कसकर चुम्बन-आलिंगन करने लगी। दोनों का शरीर, होंठ, आँख और कान एक हो गया। विषय-भोग संसार के महारोग है और तृष्णाएँ मृगतृष्णा है। भोग, कामाशक्ति एवं तृष्णा की प्यास जितनी बुझाई जाती है उतनी ही अधिक बढ़ती जाती है।

एक दिन यशोधरा के साथ विहार करते हुए सिद्धार्थ ने कहा, "देवि! तुमने मुझे गोरख-धंधे में फँसा लिया। पक्का गृहस्थ बना दिया।"

"प्रियवर! गृहस्थाश्रम भोग का नहीं अपितु योग का पवित्र आश्रम है। जो व्यक्ति नियम एवं मर्यादा का पालन करते हुए, स्नेह, श्रद्धा, संयम एवं सच्चे और

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

पवित्र दिल से गृहस्थ धर्म का पालन करता है, वही सच्चा योगी है। गृहस्थाश्रम ही आश्रम का मूल एवं आश्रय है और विश्वास, प्रेम, त्याग, परोपकार, दान एवं सेवा की भूमि है। गृहस्थ मनुष्य ही पवित्र आचरण, करुणा, सद्भावना एवं भातृत्व का पालन करते हुए भोग एवं योग का समन्वय कर सकता है।"

"प्रिये! तुम्हारा कहना कुछ सीमा तक सही है। जिस व्यक्ति के मन में सदा करुणा, सत्य, अहिंसा, परोपकार एवं धर्म बसता है वही सच्चा मनुष्य है। वह सदैव मधुरवाणी बोलता है और उसके नेत्र नम्रतावश झुके रहते हैं।"

"प्रियवर! ये सभी गुण आपमें विद्यमान हैं। अतः आप साधारण पुरुष नहीं अपितु महामानव हैं।"

"प्रिये! आनन्द का सच्चा स्रोत बाहर नहीं अपितु अंर्तमन में है। अतः मन को सतर्क एवं सावधान करके अन्तःकरण में खोजना होगा।"

"प्रियवर! महर्षि व्यास का तो यहाँ तक कहना है कि जिस मनुष्य ने अपने मन को वश कर लिया है, जीत लिया है, उसने सारे संसार को जीत लिया है।"

"प्रिये! तुम तो केवल प्रेम की ही प्रथम गुरु नहीं हो अपितु ज्ञान की भी गुरु हो। तुमने मेरे अंतःपट को अज्ञान से मुक्त कर दिया है। तुम्हारी दीक्षा मुझे सत्यान्वेषण के पथ पर उसी प्रकार अग्रसर करेगी जैसे अंधड़ बलात् तिनके को उड़ा ले जाता है।"

बेचारी यशोधरा चिहुँक गई। हाथ जोड़कर बोली, "नाथ मुझे छोड़ मत देना।"

मुस्कराते हुए सिद्धार्थ चुम्बन, आलिंगन, स्पर्शज आनन्द में तल्लीन हो गया। रात-भर संसर्ग सुख लूटने में इतना निमग्न रहा कि कब भोर हुआ, उसे पता ही नहीं रहा। यशोधरा को पति के साथ रति-क्रीड़ा में ब्रह्मानन्द सदोहर सुख प्राप्त हुआ। प्रातःकाल के पक्षियों के मधुर कलरव एवं चहचहाट को सुनकर वह पति के बाहु-पाशु से उन्मुक्त होकर स्नानागार में चली गई।

प्रासाद-शायी

शुद्धोधन राजा होने के कारण बहुत बड़ा विलासी, भोगी एवं कामकला विशारद थे। उन्होंने सिद्धार्थ को कामासक्त करने के लिए बहुत बड़े व्यूह की रचना की। उन्होंने कपिलवस्तु में सिद्धार्थ और यशोधरा की केलि-क्रीणा के लिए गर्मी, वर्षा एवं सर्दी के अनुसार तीन प्रासादों का निर्माण करवाया और उनके चारों ओर प्रभदवन बनवा दिए। उन्होंने भोग-विलास एवं माया का संसार रचकर काम-कला प्रवीण रमणियों की पलटन खड़ी कर सिद्धार्थ को व्यामोहित कर दिया। पर

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

सिद्धार्थ श्रीराम की तरह एक नारी-ब्रह्मचारी बना रहा। वह यशोधरा का एकनिष्ट प्रेमी था। यशोधरा के हाव-भाव और प्रेम-सागर में रात-दिन डूबता-उतराता रहा। प्रेम एक महारोग है जिसे पकड़ता है, शीघ्र उन्मुक्त नहीं करता। यशोधरा के होंठों पर अपने होंठ को रखकर स्पर्श-सुख लूटने में इतना मदनललित हो गया कि बाह्य जगत का उसे अता-पता नहीं था।

वसन्त ऋतु का आगमन हो गया। वसन्त का सखा कामदेव भी अपनी प्रिया रति को साथ लेकर कपिलवस्तु में आ धमका। वासन्ती हवा ने सिद्धार्थ के मन को काम-विह्वल कर दिया। सिद्धार्थ के शयनकक्ष में तरह-तरह के सुगंधित तेल-फुलेल और इत्र का छिड़काव किया गया था। उसकी घ्राण इन्द्रिय सुगन्ध से तर-बतर थी। वह यशोधरा के बेल-फल जैसे कुचों पर शान्तिपूर्वक अपने सिर को रखकर निद्रामग्न हो जाता था और यशोधरा उसकी निद्रा-निमग्न पलकों पर प्रेमपूर्वक हाथों से व्यजन डुलाती थी। एक दिन यशोधरा के वक्षस्थल पर सिर रखकर वह सुख-चैन से नींद ले रहा था। अचानक चिहुँककर हाँक लगाने लगा—

ओ मेरे असली संसार!
हाय! तुम कहाँ हो? कहाँ हो?
आकुल हो, लगन और निष्ठा से
तुम्हें खोज रहा है मेरा अन्तर्मन।
आकुल हो, सतर्कता से कान लगाकर
मैं दीन दुखियों का आर्तनाद सुनता हूँ
सत्पथ और मानव-धर्म क्या है?
सम्यक् मुझे ज्ञात है।
भोग-विलास और माया-जाल के
तार-तार को तोड़-ताड़कर
कपिलवस्तु के कामासक्त प्रासादों को
साँप की केंचुल-सा त्यागूँगा।

सिद्धार्थ की प्रतिज्ञा, दृढ़ निश्चय तथा दर्दभरी पुकार को सुनकर विशाल-लोचना यशोधन संत्रस्त और आतंकित हो उठी। अपने कोमल हाथों से सिद्धार्थ के सिर को सहलाती हुई मधुर स्वर में बोल उठी, "मेरे प्राणेश्वर! आपको क्या कष्ट है? गहन निद्रा में आप उद्विग्न क्यों हो उठे। मैं तो आपके पास बैठी हूँ।"

प्रियतमा की कोमल हथेलियों के स्पर्श से सिद्धार्थ रोमांचित हो उठा। यशोधरा के भय और आँसुओं को रोकने के लिए वह मुस्कराने लगा। राजकुमार यशोधरा को प्रसन्न रखने के लिए वीणा बजाने लगा। यशोधरा वीणा के स्वरों को

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

ध्यान से सुनने लगी। वीणा के तारों से जो ध्वनि निकलती थी, वह मनुष्य की नहीं अपितु देवताओं की आवाज थी। देवता सिद्धार्थ को सत्य से अवगत करा रहे थे।

सिद्धार्थ को संबोधित करते हुए देवगण कहने लगे, "सिद्धार्थ! वायु भ्रमणशील है। वह शान्ति-प्राप्ति के लिए सतत कराहती रहती है पर उसे शान्ति नहीं मिलती है। उसे अस्थैर्य नहीं मिलता। जिस प्रकार हवा क्षणभंगुर है, नश्वर है, उसी प्रकार मनुष्य मरणशील है। जीवन क्षणभंगुर है। सारे संसार में कलह, ईर्ष्या, द्वेष, वैमनस्य, दरिद्रता, हिंसा का बोलबाला है। शान्ति प्राप्त करने के लिए दुखिया संसार तुम्हें पुकार रहा है। भोग-विलास से बाहर निकलो, विश्व का कल्याण करो।"

सिद्धार्थ विचार-मग्न हो गया। उसकी दृष्टि 'स्व' की परिधि से ऊपर उठकर 'पर' पर केन्द्रित हो गई। उस समय उसे ऐसा अहसास हुआ मानो प्रचण्ड वायु उसके कानों में मंत्र-सा कुछ कह रही थी। उसका ध्यान वायु की ओर केन्द्रित हुआ। वायु बोली, "सिद्धार्थ हर एक आदमी स्पर्श सुख प्राप्त करने के लिए नारी के मांसल शरीर से चिपका रहता है पर यह ऐहिक सुख क्षणिक होता है। जीवन एक प्रवाह है। बादल की तरह क्षण-भंगुर है, नदी की धारा की तरह पल-पल परिवर्तित होता रहता है। यहाँ विश्राम की कल्पना मिथ्या है।"

सिद्धार्थ की अन्तर्ज्योति प्रज्वलित हो गई। वह सिद्धार्थ से कहने लगी, "सिद्धार्थ! कामासक्ति और संसर्ग-सुख लूटने के लिए तुम्हारा जन्म नहीं हुआ है। विश्वकल्याण के लिए तुम इस धरा पर अवतरित हुए हो। सारे संसार को अज्ञान की काली रात घेरे हुए है। दुःख और अज्ञान से मुक्ति पाने के लिए दुखिया संसार तुम्हारी राह देख रहा है। उसी का जीना सार्थक होता है जो दूसरों के लिए जीता है।"

सिद्धार्थ को चिन्तामग्न देखकर यशोधरा कहने लगी, "प्रियतम! क्या वीणा की स्वर लहरियों तथा मेरे शारीरिक स्पर्श से तुम्हारे मन की उद्विग्नता शीतल नहीं होती।"

"यशोधरा! संसार परिवर्तनशील है। हर क्षण हर पल प्रकृति एवं मावनावस्था में बदलाव की प्रक्रिया चलती रहती है।"

"प्रियतम! आपका कथन अक्षरशः सत्य है पर मानव ही नहीं, हर प्राणी का जन्म सुखोपभोग के लिए होता है। नर-नारी का संयोग नहीं होगा तो पुनर्जन्म कैसे होगा। नई सृष्टि कैसे होगी?"

"यशोधरा! तुम ही नहीं, हर नारी सृष्टि की अधिष्ठात्री है। पर, मेरी बातों को गौर से सुनो, सूर्य प्रातःकाल उगता है, मध्याह्न-काल में ऊपर चला जाता है

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

और सायंकाल में अस्त हो जाता है। सूर्य की तरह मनुष्य को भी शैशवावस्था, युवाकाल तथा वृद्धावस्था से गुजरना पड़ता है। अतः वृद्धावस्था में मैं भी बूढ़ा हो जाऊँगा और तुम भी। फिर तुम्हारे शारीरिक संसर्ग से मुझे जो सुख मिल रहा है, वह नश्वर है। क्षणभंगुर है। बेचारी यशोधरा, पति से क्या तर्क करती। त्रिया-चरित्र के हर गुणों का प्रयोग तो किया पर सब विफल रहे। फिर भी हार नहीं मानी। मुस्कराती हुई बोली, प्रियवर! जम्बूद्वीप के ऋषियों एवं महर्षियों ने चार आश्रमों की कल्पना की है।"

"यशोधरा! जरा गिनकर तो बताओ?"

"ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और संन्यास।"

"इनका उल्लेख करने के पीछे तुम्हारा लक्ष्य क्या है?"

"यही कि अभी गार्हस्थ्य जीवन का छककर उपभोग करो। वृद्धावस्था में संन्यास मार्ग अपना लेना।"

"प्रिये! क्या तुम चार वर्गों को भी जानती हो?"

"हाँ, प्रियवर। वर्ग चार हैं—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष।"

"यशोधरा! मुझे नारी-संसर्ग से जितने काम सुख प्राप्ति की अपेक्षा थी उससे अधिक तुमने अपने होंठों, बाँहों, कूचों के स्पर्श तथा चुम्बन, आलिंगन और रति-क्रीड़ा द्वारा प्रदान कर दिया। अब मेरी बात सुनो?"

"ठीक है। अपने अरमानों से मुझे अवगत कराएँ?"

"प्रिये! अस्तगामी सूर्या-सा मेरे हृदय में दुःख धड़कता है
सारा संसार दुखिया है। दुखियों का कातर दुख मुझे सालता है
पर दुःख से पीड़ित मैं तुम्हारी छुअन और चितवन को भूल जाता हूँ।
अब मैं काली रात से जागा हूँ, भूलकर भी अनुराग का बिछावन नहीं लगाऊँगा।"

प्रासाद के बाहर

राजकुमार ने अपने सारथी छन्दक को परिचारिका द्वारा अपने पास बुलाकर कहा, "छन्दक! मैं प्रासाद की भव्य दीवारों को देखते-देखते ऊब गया हूँ। शीघ्र रथ में घोड़े जोतो और सिंहद्वार से बाहर चलो। बाहर क्या हो रहा है? मैं देखना चाहता हूँ।"

"राजकुमार। आपके प्रासाद के बाहर भव्य मंदिर हैं, रंग-बिरंगे फूलों से आच्छादित पुष्पों के उपवन हैं, विशाल उद्यान हैं, फसलों से लहलहाते खेत हैं। हरे-भरे चारागाह हैं, नदी हैं, नाले हैं, वन हैं। वनों में कुलांचे भरते हिरण और नील गाय हैं।"

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

"छन्दक! हमारी राज्य-सीमा के बाद किसका राज्य है?"

"राजकुमार! महाराज बिम्बसार का विशाल राज्य है।"

"तो जल्दी से महल के बाहर चलो?"

"राजकुमार दस पल प्रतीक्षा करें। महाराज शुद्धोधन से अनुमति लेकर रथ में घोड़े नाधकर वापस आता हूँ।"

"छन्दक! विलम्ब मत करना।"

"राजकुमार! चिन्ता न करें।"

छन्दक ने महाराज शुद्धोधन को सिद्धार्थ की आकांक्षाओं से अवगत करा दिया। शुद्धोधन ने सहर्ष पुत्र के निवेदन को स्वीकार कर लिया और छन्दक से कहा, "छन्दक! कुसुमाकर ऋतु है। चारों ओर बहार ही बहार है। शीतल, मंद, सुगंधित पवन चल रहा है। सिद्धार्थ को रथ पर बैठाकर बाहर ले जाओ पर....।"

"महाराज! पर....का क्या तात्पर्य है?"

"कुछ नहीं, सारे नगर को नववधू की तरह सजा दो? हाँ, एक बात का और ध्यान रखना?"

"महाराज! क्या?"

"यही कि, कोई अप्रिय दृश्य, अँधा, लँगड़ा-लूला, अपाहिज, रोगी, कोढ़ी, दुर्बल, वृद्ध एवं आपदग्रस्त प्राणी राजमार्ग पर नजर न आए।"

आदेश का अतिशीघ्र पालन हुआ। सारा नगर फूलों, पत्तियों, रंग-बिरंगे कपड़ों, तेल-फुलेल, इत्र आदि के छिड़कने के कारण चिताकर्षक लगने लगा। जिस समय रथ पर सवार होकर सिद्धार्थ नगर में दिखाई पड़ा, स्वामिभक्त नौकर और नागरिक छतों पर चढ़कर उसके सिर पर फूलों और गुलाल की वर्षा करने लगे। नागरिकों के स्वागत-सत्कार से सिद्धार्थ गद्‌गद हो गया। अन्त में सिद्धार्थ ने कहा, "छन्दक! रथ को नगर के बाहर ले चलो। मैं आम आदमी को देखना चाहता हूँ।"

"राजकुमार! आज्ञा शिरोधार्य है।"

नगर के बाहर गरीबी, शोषण, गन्दगी, मजबूरी और विवशता का जो वीभत्स दृश्य सिद्धार्थ ने देखा, उससे उसका मन दुखी हो गया। जब रथ और आगे बढ़ा तो एक बूढ़ा आदमी जो अपनी झोंपड़ी में छिपकर बैठा हुआ था, लड़खड़ाता हुआ सड़क पर आ गया। मरियल और मैला था उसका शरीर। केवल चीथड़े थे उसके शरीर पर। शरीर सूखकर काँटा-सा लग रहा था। चेहरे की चमड़ी झुर्रीदार थी। मांस का कहीं नामोनिशान नहीं था। कमर झुकी हुई थी। दाँत टूट गए थे। उसके अंग-प्रत्यंग डगमग-डगमग हिल रहे थे। शरीर टेढ़ा हो गया था। हाथ में लकड़ी पकड़े जोर से हाँफता हुआ सड़क पर चल रहा था। कुछ लोग उसे डाँट-डपटकर

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

भगा रहे थे पर उसने चिल्लाकर कहा, "मैं जब तक राजकुमार का दर्शन नहीं कर लूँगा तब तक यहाँ अंगद के पाँव की तरह पड़ा रहूँगा।"

सिद्धार्थ ने जब उस वृद्ध को देखा तो उसके आश्चर्य की सीमा न रही। तुरन्त उसने छन्दक से पूछा, "सारथी! यह विचित्र प्राणी कौन है?"

"राजन्! यह आदमी बूढ़ा हो गया है। पहले यह भी नौजवान था। हृष्ट-पुष्ट, भरा-पूरा शरीर था इसका। इसके ललाट पर विचित्र आभा दिखलाई पड़ती थी। अब तो जरा का मारा है।"

"छन्दक। यह आदमी इतना दुःखी क्यों है?"

"राजकुमार! जरा ही इसके दुःखों का मूल कारण है।"

"छन्दक! क्या यशोधरा और मैं भी एक दिन बूढ़ा हो जाऊँगा।"

"राजकुमार! काल सर्वशक्तिमान है। वह किसी पर रहम नहीं करता। वह आप और यशोधरा को नहीं छोड़ेगा। कल आप बालक थे और अब जवान। भविष्य में न तो आप जवान रहेंगे न यशोधरा। दोनों को जरा दबोच लेगी।"

"छन्दक! धिक्कार जन्म पर। धिक्कार है जन्मने वालों पर।"

सिद्धार्थ को एक बड़े सत्य का बोध तो हुआ पर उसका मन दुःख के सागर में डूबने-उतराने लगा। अब वह वहाँ एक पल भी रुकना नहीं चाहता था। उसने छन्दक से कहा, "सारथी! रथ पीछे की ओर मोड़ो। राजमहल चलो?"

राजकुमार राजमहल में

राजकुमार मानसिक दृष्टि से थककर चूर हो गया था। जैसे आराम-कक्ष में पहुँचा, यशोधरा ने उसका स्वागत किया। चेटी से पानी गर्म करवाकर उसमें केवड़ा और गुलाब-जल छिड़कवाया। उसने अपने कोमल हाथों से सहला-सहलाकर सिद्धार्थ को स्नान करवाया। तौलिये से अंग-प्रत्यंग को अच्छी तरह पोंछकर रेशमी कुर्ता और धोती पहनाया। ताजा होकर जब सिद्धार्थ आसन पर बैठा तो यशोधरा ने मुस्कराते हुए पूछा, "प्राणेश्वर! आप इतने थके हुए क्यों लग रहे हैं?"

"प्रिये! आज तक मैं यही समझता रहा कि जैसे मैं सुख का आनन्द ले रहा हूँ, वैसे ही सभी नागरिक सुखी होंगे पर आज के भ्रमण काल में जब से दुखी इन्सानों की दयनीय अवस्था को देखा तब से मेरा मन उद्विग्न हो गया है।"

"प्रियवर! छप्पन भोग तैयार है। चलिए, डटकर भोजन कीजिए। तुरन्त थकावट और चिन्ता काफूर हो जाएगी।"

"यशोधरा! तुम कहती हो तो चलो पर भोजन करने की इच्छा नहीं है।"

"खैर; चलिए तो।"

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

सिद्धार्थ यशोधरा का हाथ थामे भोजनालय में गया तो अवश्य पर थाली पर हाथ भी नहीं लगाया। इसके बाद सिद्धार्थ मनोरंजन कक्ष में गया। देश-विदेशी की छँटी हुई रमणियों ने उसे कामासक्त करने के लिए नग्न-नृत्य किया पर उसने किसी पर आँख उठाकर नहीं देखा। जिन गायिकाओं को अपने मधुर स्वर पर नाज था, वे गा-गाकर थक गईं पर राजकुमार पर उनके संगीतों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

यशोधरा हैरान हो गई। सुबुक-सुबुककर रोती हुई बोली, "स्वामी! मैं अद्वितीय रमणी हूँ। क्या आपको मेरे आलिंगन, चुम्बन एवं स्पर्श से रंचमात्र भी कामाशक्ति उद्दप्ति नहीं होती।"

"प्रिये! भौतिक और आत्मिक सुख में आकाश-पाताल का अन्तर होता है। दुखियारे संसार को देखकर मेरा मर्म-स्थल इतना अधिक घायल हो गया है कि तुम्हारा प्रेमालाप और वीणा-वादन मुझे नीरस लगता है।"

"प्रियवर! प्रकृति का नियम अटल है। परिवर्तन अकाट्य है। मनुष्य शैशवावस्था से बालक, बालक से युवा और युवा से वृद्धावस्था तक क्रमशः चला जायेगा और एक दिन ऐसा आयेगा जब वह मृत्यु की गोद में चला जाएगा। अतीत और भविष्यत् की चिन्ता मत करो। वर्तमान को छककर भोगो।"

"यशोधरा। मेरा विचार तुम्हारे विचार से भिन्न है! मैं तो उस भविष्य को लेकर चिंतित हूँ जिस समय तुम भी बूढ़ी हो जाओगी और मैं भी। उस समय हमारा गोरा रंग और सुगठित शरीर सूखकर धनुष की तरह झुक जाएगा?"

"प्रियवर! मैं वह सुख कैसे भूल जाऊँ जिसमें हम कामासक्त होकर एक-दूसरे से जकड़े हुए थे। होंठ पर होंठ रखे स्नेह-सूत्र में इतने संलिप्त थे कि रात-दिन हमारी निकलती हुई साँस एक रहा करती थी।"

"यशोधरा! काम-विहार में दो प्राणियों में ऐक्य होना एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। पर शीघ्र ही जीवन का वसन्त समाप्त हो जाएगा। चाँदनी रात की जगह अंधेरी रात आ जाएगी।"

"फिर आपकी मनसा क्या है?"

"शान्ति-मार्ग।"

शुद्धोधन का अद्भुत स्वप्न

जिस रात सिद्धार्थ शान्ति-मार्ग की खोज के सम्बन्ध में गहन विचार करता हुआ जाग रहा था, उसी समय शुद्धोधन ने अलौकिक स्वप्न देखे। उस स्वप्न में सात झाँकियाँ थीं—सुनहला झण्डा, हाथी, कार, चक्र, विशाल नगाड़ा, मीनार, विलपती आवाज। स्वप्न में इन सातों झाँकियों को देखकर वह उद्विग्न हो गया। उस पर

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

भय का भूत सवार हो गया। वह सातों झाँकियों का अर्थ जानने के लिए व्याकुल हो उठा। सबेरा होने पर जब वह पूजा-अर्चना कर जलपान आदि से निवृत्त हुआ तो अपने मंत्री उदायी को बुलवाया। मंत्री हाथ जोड़कर काँपता हुआ महाराज के सामने खड़ा हुआ।

शुद्धोधन बोला, "मंत्रीवर। मैंने रात को स्वप्न में सात अनुपम झाँकियाँ देखी हैं। मेरा मन बहुत डर रहा है। जल्दी से स्वप्न-विश्लेषकों को खोजकर मेरे सामने उपस्थित करो?"

"जो आज्ञा, महाराज!"

उदायी ने सभी आश्रमों पर ज्योतिषियों और स्वप्न-विश्लेषकों की खोज करवाई पर कहीं भी स्वप्न-विश्लेषक नहीं मिले।

सौभाग्य की बात थी कि एक बूढ़ा व्यक्ति जो शरीर पर मृगचर्म धारण किए हुए था, सिंहद्वार पर आया। वेश-भूषा से साफ-साफ जान पड़ता था कि वह कोई एकान्तवासी है। पर, उसे नगर के किसी व्यक्ति ने कभी देखा नहीं था।

द्वारपाल से चिल्लाकर बोला, "द्वारपाल! मुझे महाराज शुद्धोधन के पास ले चलो।"

साष्टांग प्रणाम कर द्वारपाल ने कहा, "महर्षि जी! मेरे साथ महाराज के अतिथि-गृह में चलें।"

"शुद्धोधन ने एकान्तवासी का भव्य स्वागत किया और उससे पूछा, महर्षि! राजमहल में आपके पदार्पण का क्या हेतु है?"

"महाराज! मैं आपकी उन झाँकियों का स्पष्टीकरण करने के लिए आया हूँ जिन्हें आपने स्वप्न में देखा है।"

"महर्षि! आपके दर्शन से मैं कृतार्थ हो गया।"

"धन्यवाद, महाराज! आपने स्वप्न किस समय देखा है?"

"महर्षि जी! अर्द्धरात्रि को मुझे स्वप्न आया था।"

एकान्तवासी घोर श्रद्धा से विह्वल होकर झुक गया और बोला, "आपके ऊपर दिव्यशक्ति की महती कृपा है। मैं इस अनुगृहीत प्रासाद का अभिवादन करता हूँ। जहाँ से भी हो, जैसे भी, इस महल का उदय अवश्य होगा। जिस प्रकार सूर्य उदित होकर काली रात के अन्धकार को विदीर्घ कर संसार को आलोकित कर देता है उसी प्रकार तुम्हारा पुत्र संसार के अज्ञान और अंधविश्वास का उन्मूलन कर नया आलोक देगा।"

"स्वामी जी! झाँकियों को देखकर मेरा मन भयाकुल हो गया है। अतः आप कृपया उनका स्पष्टीकरण करें।"

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

"राजन्! देखो? तुम जिसे भय समझते हो, वह तुम्हारी भयंकर भूल है। ये सातों झाँकियाँ भय नहीं अपितु आनन्द एवं उल्लास की प्रतीक हैं।"

"स्वामी जी। मैंने जो व्यापक, तेजस्वी एवं सुनहला इन्द्र का बिल्ला तथा कांतिहीन पताका देखा है, उसका क्या अर्थ है?"

"राजन्! यह आपके स्वप्न की पहली झाँकी है। इसका तात्पर्य यह है कि आपके पुत्र के सद्प्रयास से पुराने धर्म का अन्त होगा और नये धर्म की प्रतिष्ठा होगी। ईश्वर सारे संसार का अधिष्ठाता और नियन्ता है, इस मत पर विराम लगेगा और ईश्वर की जगह पर मनुष्य का महत्व बढ़ेगा। मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता स्वयं बनेगा।"

"स्वामी जी! मैंने स्वप्न में जो दूसरी झाँकी देखी है उसका क्या तात्पर्य है?"

"राजन्। आपने विशाल धरती को हिलाने वाले जो दस हाथियों के झुण्ड को देखा है, वे प्रज्ञा के दस उपहार हैं।"

"स्वामी जी! क्या सिद्धार्थ राजपाट एवं राज-धर्म त्याग देगा?"

"महाराज! सिद्धार्थ का मनोबल इतना प्रबल है कि वह पलभर में राजपाट छोड़कर चला जाएगा और सत्य पथ की खोजकर संसार का अज्ञान दूर कर देगा।"

"स्वामी जी। रथ के घोड़ों की साँस से जो एक प्रकार की कान्ति (दीप्ति) निकल रही थी, उससे क्या संकेत उद्भासित होता है?"

"राजन्। वे साधना के चार सद्गुण हैं। चार आर्य सत्य हैं। ये सद्गुण आपके पुत्र सिद्धार्थ के संदेह और अज्ञान को दूर कर प्रज्ञा के क्षेत्र में पहुँचाकर सम्यक् बुद्ध बना देंगे।"

"स्वामी जी! जिसने प्रज्वलित सुनहले चक्र को घुमा दिया, फिरा दिया, उसका क्या अर्थ है?"

"महाराज! वह पूर्ण स्वभावगत धर्म का बहुमूल्य चक्र है। उसके द्वारा तुम्हारा पुत्र सारे संसार के मनुष्यों की दृष्टि एवं मनोभावों को परिवर्वित कर देगा।"

"स्वामी जी! विशाल नगाड़ा (ढोल) जिसे राजकुमार पीट-पीटकर बजाएगा उसका क्या तात्पर्य है?"

"राजन्! इस झाँकी से यह संकेत मिलता है कि सिद्धार्थ जो उपदेश देगा, उसके उपदेश की आवाज मेघ-गर्जन के समान सारे विश्व में सुनाई पड़ेगी।"

"स्वामी जी! मीनार का क्या तात्पर्य है? मीनार जो धरती से स्वर्ग तक उठा हुआ था, उससे क्या अर्थ ध्वनित होता है?"

"राजन्! आपने जो स्वर्ग की ओर ऊपर उठे हुए मीनार को देखा है, वह

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

सिद्धार्थ के विकसित नूतन पंथ तथा उसके द्वारा प्रतिपादित मानवोपयोगी सिद्धान्तों का प्रतीक है। वे साधु सिद्धान्त देवताओं तथा मनुष्यों दोनों के लिए कल्याणकारी हैं। वे संसार की अपूर्व एवं बहुमूल्य निधियाँ हैं।"

"स्वामी जी। मुँह बन्द कर जो छः मनुष्य विलाप कर रहे थे, उस झाँकी का क्या अर्थ है?"

"राजन्। इस झाँकी से द्योतित होता है कि ये रोते हुए छः मनुष्य, वे उपदेशक आचार्य होंगे जिन्हें तुम्हारा पुत्र अपने उपदेश द्वारा सत्य का अवगाहन करवाकर उनकी मूर्खता तथा उनके अंधविश्वास को दूर भगाएगा। नये सत्य से अवगत होते हुए वे धर्मोपदेश करेंगे। अतः महाराज भय को त्यागकर आनन्द मनाएँ।"

"स्वामी जी! मेरे राज्य का उत्तराधिकारी है सिद्धार्थ। अगर वह निवृत्तिमार्ग का अनुसरण करेगा तो कपिलवस्तु का संचालन कौन करेगा?"

"राजन्! सिद्धार्थ का भाग्य राजपद से बड़ा है। याद रखें, एकान्तवासी का चीथड़ा राजसी सुनहले वस्त्रों की अपेक्षा अधिक मूल्यवान है। वह त्याग और करुणा का प्रतीक है। आपका स्वप्न निरर्थक नहीं हो सकता। वह ब्रह्मलेख है। कार्यान्वित अवश्य हो गया।"

स्वप्न के घटित होने की उद्घोषणा करके एकान्तवासी, पवित्र एवं दूरदर्शी सन्त ने तीन बार धरती का स्पर्श किया और आठ बार साष्टांग प्रणाम करने के उपरान्त घूमा और पलभर में द्रुतगति से चला गया।

शुद्धोधन एकान्तवासी को बहुमूल्य उपहार देकर उपकृत होना चाहते थे। अपने अभीष्ट को पूरा करने के लिए उन्होंने हीरे-जवाहरात के साथ अपने विशेष दूत को भेजा तो अवश्य पर वह निराश होकर लौट आया।

शुद्धोधन ने उससे पूछा, "दूत! क्या तुम्हें एकान्तवासी सन्त मिला?"

"नहीं, महाराज!"

"क्यों?"

"महाराज! एकान्तवासी सन्त को पिछुआता हुआ मैं चन्द्र मंदिर तक गया। वह मंदिर में घुसा तो अवश्य पर जब मैं मंदिर के गर्भ-गृह में प्रविष्ट हुआ तो वहाँ चिरई का पूत भी नहीं था। बड़े-बूढ़ों का कहना है कि सिद्ध देवता इसी प्रकार आते हैं।"

घेराबन्दी

स्वप्न की सातों झाँकियों का स्पष्टीकरण सुनकर शुद्धोधन सतर्क हो गया। एक ओर तो उसने सिद्धार्थ को मायाजाल में फँसाने के लिए आनन्द भवन में

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

नाचने-गाने वाली रमणियों की संख्या बढ़ा दी और दूसरी ओर द्वार पर पीतल के बड़े-बड़े ताले लगवाकर पहरेदारों की संख्या बढ़ा दी। राजकुमार सिद्धार्थ के मन में आमोद-प्रमोद और परनारी संसर्ग की रंचमात्र भी लालसा नहीं थी। यशोधरा के साथ उसका एकान्तिक सम्बन्ध भरपूर था पर वह गर्भवती हो गई थी। गर्भाधान के समय वह यशोधरा से शारीरिक सम्बन्ध नहीं करता था। वह बन्दीगृह से ऊब गया। बाह्य जगत के दर्शन के लिए उसका मन फिर बेचैन हो उठा।

बाहर भ्रमण के लिए कपिलवस्तु नरेश की अनुमति आवश्यक थी। अतः उसने शुद्धोधन से अपनी प्रार्थना स्वीकार करवाने के लिए छन्दक को पिता के पास भेजा। छन्दक को देखकर महाराज समझ गए कि पुत्र का कोई न कोई संदेश अवश्य है। राजा का चरणस्पर्श कर छन्दक सिर झुकाकर खड़ा हो गया।

महाराज ने पूछा, "छन्दक। राजकुमार की क्या प्रार्थना है?"

"महाराज! राजकुमार राजमहल के बाहर सारे नगर का दर्शन करना चाहते हैं।"

"ठीक है। कल प्रातःकाल रथ सजाकर उसे उसमें बैठाकर नागरिकों एवं दर्शनीय स्थानों को दिखा दो।"

शुद्धोधन ने राजकुमार को नगर भ्रमण करने का आदेश देने के बाद राजमार्ग के दोनों ओर चौराहों, नुक्कड़ों, गली-कूचों, मंदिरों आदि को रंग-बिरंगे वस्त्रों, पुष्पों, चन्दन की मालाओं, अशोक और आम की पत्तियों से निर्मित बन्दनवारों से सुसज्जित करवाकर सर्वत्र इत्र का छिड़काव करवा दिया। सारा नगर गमकने लगा।

दूसरे दिन सूर्योदय होते ही रथ पर सवार होकर सिद्धार्थ नगर-दर्शन के लिए चल पड़ा। सर्वत्र लोग अलंकारों से लदे हुए रेशमी परिधानों को धारण किए हुए घूम रहे थे। कामनियाँ अपने-अपने कोठों पर गायन-वादन में मग्न थीं। कुछ गणिकाएँ झरोखों से अपने रूप-लावण्य तथा मनोहर अंग-प्रत्यंगों का प्रदर्शन कर रही थीं। पर अच्छे-अच्छे दृश्य और नारियाँ सिद्धार्थ को अपनी ओर आकर्षित न कर सके। कहा भी गया है, "आत्मवान, दृढ़चित्त, संयमी युवकों को न तो आकर्षक और मनोहर रमणियों के प्रति अभिरुचि उत्पन्न होती है और न ही विषय-वासनाओं में आसक्ति होती है।"

वह समाज के आभिजात्य वर्ग के वैभव एवं ऐश्वर्य को देखते-देखते ऊब गया। अतः उसने पिता से विनम्र निवेदन किया "पिताश्री! मैं धनाढ्य और संभ्रान्त वर्ग के अलावा भूमिपुत्रों, मेहनत मजदूरों, उनके परिवेश और घरों को देखना चाहता हूँ।"

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

शुद्धोधन क्या करते? तुरन्त उसे बाजार, उद्योगधन्धों तथा दलितों की बस्ती देखने की आज्ञा प्रदान कर दी। राजकुमार छन्दक के साथ बाजार तथा बड़े-बड़े गोदामों की ओर गया जहाँ धन्ना सेठ और सामन्त डोलियों और घोड़ों पर सवार थे वहाँ बेचारे कहार कंधों पर डोलियाँ ढोते-ढोते और साईस घोड़ों के पीछे भागते-भागते पसीने से तर-बतर जोर-जोर से हाँफ रहे थे। कहीं नंग-धड़ंग हम्माल सिर पर भारी बोझा लादे परेशान थे। दास-दासियाँ अपने मालिकों तथा मालकिनों के सिर पर चँदोवा लेकर चल रहे थे। पनिहारिनें कुओं से पानी निकाल रही थीं। चुड़िहारिनें युवतियों की नरम कलाइयों में चूड़ियाँ पहनना रही थीं और मालिनें बेला-पुष्प बेच रही थीं। जुलाहे करघा घरों में सूत कात रहे थे। सामाजिक विषमता के घिनौने परिदृश्य को देखकर सिद्धार्थ की आँखों से अश्रुकण लुढ़क पड़े।

अचानक उसका रथ चौमुहानी पर पहुँच गया। वहाँ सड़क के किनारे एक रुग्ण बैठा हुआ था। वह भयंकर दर्द से छटपटा रहा था। दुखयारी आवाज में कराहता हुआ वह पथिकों से चिरौरी करते हुए कह रहा था, "हे मालिक! मैं भयंकर बीमारी से व्यथित हूँ। मेरे आगे-पीछे कोई नहीं है। मेरे पैर टेढ़े हो गये हैं। इन्हें सीधा कर दो। मेरी रक्षा करो।"

संसार स्वार्थी एवं गठरी की तरह आत्मकेन्द्रित है। लोग-बाग वहाँ से गुजर रहे थे। उसकी दर्दभरी आवाज सुनते तो सभी थे, उसकी दीन-हीन अवस्था को भी देखते थे पर उसकी ओर से सारे बटोही अपनी निगाह फेर लेते थे। किसी का हृदय करुणा से विगलित नहीं हुआ।

सिद्धार्थ ने जैसे ही दर्द से छटपटाते रोगी को देखा, उसके हृदय में करुणा का सागर उद्वेलित हो उठा। झट से उसके पास पहुँच गए और बिना आगा-पीछा सोचे उसे अपने कोमल हाथों से उठा लिये। उसके शरीर को सहलाते हुए अमृतमयी वाणी में सिद्धार्थ ने पूछा, "भाई साहब! आपको क्या बीमारी है? आपको क्या हानि हुई है? आप इतने शक्तिहीन और असमर्थ क्यों हो गए हैं?" बेचारा बोल न सका।

फिर राजकुमार ने छन्दक से पूछा, "सारथी जी! इसकी शारीरिक अवस्था इतनी दयनीय क्यों हो गई है?"

"राजकुमार! यह व्यक्ति पीड़क जन्तुओं से आक्रान्त है। इसकी नसों का खून खौलकर उछल रहा है। इसे दौरा पड़ गया है।"

"छन्दक! कोई इसकी सहायता क्यों नहीं करता?"

"राजकुमार! इसे छुआछूत की बीमारी है। आप झट से इसके शरीर से अपना हाथ हटा लें, नहीं तो भयंकर रोग का शिकार होना पड़ेगा।"

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

सिद्धार्थ तो भोग-विलास एवं रम्य परिवेश में पल रहे थे। अतः संसार की नाना प्रकार के रोगों का ज्ञान कैसे होता? अतः छन्दक से पूछा, "छन्दक! क्या तुम मुझे कुछ बीमारियों के नाम बता सकते हो?"

"हाँ, राजकुमार! रक्त स्राव, खाज, कुष्ट, फफोला, तपेदिक, प्लेग, हैजा, महामारी, काला ज्वर, मियादी बुखार, मलेरिया, चेचक, संग्रहणी, पक्षाघात, हृदय रोग आदि असंख्य बीमारियाँ हैं जो मनुष्य के शरीर को पकड़ती हैं। बीमारियाँ मनुष्य के शरीर को कब जकड़ लेंगी, कोई नहीं जानता है।"

"छन्दक! क्या बीमारियाँ अलक्ष्य रूप से मानव-शरीर में प्रविष्ट होती हैं?"

"हाँ। ये गोपनशील सर्प की भाँति आती हैं और छिपकर मनुष्य को डँस लेती है। एक निरावृत्त हत्यारा राजमार्ग के पास उगे हुए कुरण्ड की झाड़ियों में छिपकर यात्रियों की बाट जोहता रहता है। जैसे ही वहाँ से कोई यात्री गुजरता है, तलवार से उसे मारकर उसके धन को लूट लेता है, वैसे ही बीमारियाँ विद्युत के समान मनुष्य को पकड़ती हैं। रोगी बेचारा क्या करे। वह तो विवश एवं असुरक्षित है।"

"छन्दक। तब तो मनुष्य बीमारियों से सदैव भयभीत रहता होगा?"

"राजकुमार! सभी मनुष्य भयाक्रान्त हैं।"

"छन्दक। तब तो कोई भी आदमी नहीं कह सकता कि वह आनन्द की नींद सोता है और प्रसन्नतापूर्वक उठता है।"

"राजकुमार! कोई नहीं कह सकता।"

"छन्दक! क्या मुझे कोई बीमारी हो सकती है?"

"राजकुमार! हाँ।"

"क्या चन्द्रमुखी यशोधरा भी रोग-ग्रस्त हो सकती है?"

"राजकुमार। बीमारी सबको समान रूप से लगती है। वह अमीर-गरीब, नर-नारि, सन्त-असन्त, विद्वान-मूर्ख, राजा-रंक, योगी-भोगी सबको समान रूप से ग्रसती है। भेदभाव वह क्या जाने? अतः यशोधरा भी व्याधि से बच नहीं सकती है।"

"छन्दक! टूटे हुए शरीर, भयाक्रान्त मस्तिष्क तथा वृद्धावस्था से मुक्ति कब तक नहीं मिलती?"

"राजकुमार! जब तक मनुष्य के पार्थिव शरीर का अन्त नहीं होता।"

"छन्दक! किन्तु यदि वे शारीरिक दृष्टि से यंत्रणा सहन नहीं कर सकते हैं तो जीना क्यों चाहते हैं?"

"राजकुमार! मनुष्य ही नहीं अपितु हर प्राणी में उत्कट जिजीविषा होती है।

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

जैसे सामने का रोगी।"

"छन्दक! क्या मनुष्य जीवन में जो पापाचार करता है, दूसरों को छलकर धोखा देता है। जीवहत्या करता है, उसके कारण शारीरिक कष्ट पाता है?"

"राजकुमार! जो जैसा काम करता है वैसा ही फल भी पाता है।"

"छन्दक! मनुष्य को हारी-बीमारी से मुक्ति कब मिलती है?"

"मृत्यु के आगमन पर। मृत्यु से ही जीवन का अन्त होता है।"

"तब तो मृत्यु देह के लिए अनमोल वरदान है।"

"राजकुमार! आपका विचार सच है।"

"छन्दक! शारीरिक सुख, नारी-संसर्ग का आनन्द और भोग-विलास मनुष्य के स्वास्थ्य पर निर्भर है। पर स्वास्थ्य सपना है। अतः भोग की कामना मृग मरीचिका है। अब आगे मत बढ़ो। रथ महल की ओर घुमा दो।"

लौटकर सिद्धार्थ जब अपने महल में पहुँचे तो यशोधरा ने मुस्कारते हुए उसे आसन के पास ले गई। गर्भाधान के कारण उसके रूप-लावण्य में कुछ परिवर्तन आ गया था। सिद्धार्थ उसे देखकर कुछ खिन्न-सा दिखलाई पड़ा। उसकी मनोदशा देखकर वह बोली, "स्वामी! घूर क्यों रहे हो? खुशी मनाओ। शीघ्र ही तुम्हारा प्रतिरूप मेरे गर्भ से अवतरित होगा। पुत्र का पैदा होना ही मनुष्य का पुनर्जन्म है। इतना ही नहीं, आप मातृ और पितृ-ऋण से उऋण हो जायेंगे।"

"यशोधरा। तुम्हारा पुत्र ही तुम्हें सहारा एवं दिलासा देगा।"

"स्वामी! क्या मेरा दोहद पूरा नहीं करोगे?"

"यशोधरा! तुम्हारा क्या उकौना है?"

"देवदह का दर्शन।"

"पिताजी से इसकी अनुमति लेनी पड़ेगी।"

मुर्दे का दर्शन

राजाज्ञा तो थी ही। दूसरे दिन भी मध्याह्नकाल में सिद्धार्थ ने छन्दक से कहा, "सांरथी! आज भी मैं नगर से लेकर रोहिणी तक लोगों का दर्शन करना चाहता हूँ। रथ तैयार करो।"

"जो आज्ञा।"

रथ पर बैठकर सिद्धार्थ राजमार्ग पर आए। घोड़े सरपट दौड़ने लगे। रथ जैसे ही नगर से बाहर आकर तीव्र गति से रोहिणी की ओर बढ़ने लगा, अचानक सिद्धार्थ को शव-शिविका का दर्शन हुआ। चार आदमी शव को अरथी पर रखकर तीव्रगति से नदी की ओर जा रहे थे। अरथी के पीछे कुछ आदमी विलाप करते हुए

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

चल रहे थे। साथ में एक आदमी गगरी में सुलगती हुई उपरी लटकाए चल रहा था। कंधे पर टिकठी ढोने वाले आदमी जब बोलते थे–'रामनाम सत्य है।' तब पीछे चलने वाले लोग समवेत स्वर में 'रामनाम सत्य है' की रट लगाते थे।

सिद्धार्थ ने छन्दक से पूछा, "छन्दक! बाँस की चारपाई पर फूलों, मालाओं, गुलाल, अबीर से सुसज्जित, बँधा-बँधाया, पीतांबर ओढ़े कौन आदमी लेटा जा रहा है?"

"राजकुमार! यह आदमी लेटा नहीं है। इसकी जीवन-लीला समाप्त हो गई है। इसका स्वर्गवास हो गया है। अब यह पुनः अपने सगे-संबंधियों से मिलेगा नहीं।"

"इसके परिवार वाले इसे कहाँ ले जा रहे हैं?"

"शव मंदिर पर।"

"कहाँ है श्मशान?"

"रोहिणी के तट पर।"

"अरथी के पीछे-पीछे रथ को धीरे-धीरे ले चलो। मुझे इसका अंतिम संस्कार देखना है।"

"ठीक है।"

नदी के किनारे श्मशान पर अरथी उतार दी गई। आनन-फानन में लकड़ी के कुन्दे जोड़-जोड़कर चिता तैयार कर दी गई। पुरोहित ने मृत आदमी के पुत्र से शास्त्रोक्त विधि से पिंडदान करवाया और तत्पश्चात शव को टिकठी से अलगकर चार आदमियों ने चिता पर रख दिया। सिर उत्तर दिशा की ओर था और पैर दक्षिण दिशा की ओर। मृतक के बड़े पुत्र ने मुखाग्नि दी। चिता पर एक टीन शुद्ध गाय का घी उड़ेल दिया गया। चिता की परिक्रमा करके सभी लोग एक जगह बैठकर शव के भस्म होने की प्रतीक्षा करने लगे। शव जलकर राख हो गया पर कपाल बचा रहा। बड़े लड़के ने बाँस लेकर भस्मीभूत शरीर के कपाल पर जोर से प्रहार किया। कपाल चकनाचूर होकर जलने लगा।

सिद्धार्थ ने छन्दक से पूछा, "सारथी! यह कौन-सी क्रिया है?"

"राजकुमार! यह कपाल-क्रिया है।"

"छन्दक! क्या सभी जीने वालों का अन्त ऐसा ही होगा?"

"हाँ।"

"छन्दक! संसार में कोई किसी का नहीं है। सारे रिश्ते और संबंध झूठे हैं।"

अन्त में सिद्धार्थ लौट पड़ा। उसे संसार की असारता का ज्ञान हो गया। सत्यबोध होने के बाद वह गंभीरतापूर्वक विचार करने लगा। आकाश की ओर

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

धर्मतत्वज्ञ आसुओं से आपूर्ण उसकी आँखें चमकने लगीं। पृथ्वी के सभी प्राणियों की भलाई के लिए उसके हृदय में दिव्य करुणा उद्‌भासित हुई।

सिद्धार्थ के चाल-चलन से ऐसा प्रतीत होता था कि उसकी आत्मा ने एकान्तिक उड़ान देख ली है। उसके मुखमंडल पर अनुपम आभा आलोकित हो रही थी। उसका उत्साह दिन दूना रात चौगुना हो गया। वह स्वतः चिल्ला उठा, "इच्छाएँ असीम हैं। जिस प्रकार गहरे जल वाली अनेक नदियों के मिल जाने के बाद समुद्र का पेट नहीं भरता, उसी प्रकार संसार के सभी पदार्थों एवं विलास के साधनों को प्राप्त करने के बाद भी लोभी का मन अतृप्त ही रहता है। सारा संसार दुखिया है। वेदना सबसे बुरी है। चूँकि आनन्द दर्द में, यौवनावस्था और वृद्धावस्था में, प्रेम अप्राप्ति में और जीवन घृणास्पद मृत्यु में और मृत्यु अज्ञात संसार में ले जाएगी। इस प्रकार जन्म और मृत्यु का चक्र अनवरत चलता रहेगा। आनन्द झूठा है। दुःख सत्य है। प्रलोभन ने मुझे धोखा दिया है।"

छन्दक राजकुमार के मनोद्‌गारों को सुनकर चिंतित हो गया। सिद्धार्थ के चित्त को शान्त करने के लिए बोला, "राजकुमार! भगवान पर भरोसा रखिये, वही आपको आत्मिक शक्ति प्रदान करेंगे।"

"छन्दक! मैं अब तक अज्ञान में पड़ा रहा। अतः दूसरों की तरह हाथ जोड़कर सहायता के लिए भगवान से प्रार्थना करता रहा पर भगवान कहाँ सुनता है। कहाँ ध्यान देता है। वह झूठा है। मुझे दुखियारों की मदद करनी है।"

"राजकुमार! वह सर्वशक्तिमान है, अन्तर्यामी है। पूर्वजन्म के कर्मों के अनुसार सबको फल दे रहा है।"

"छन्दक! ब्रह्मा तो सबका पिता है। स्रष्टा है। फिर वह लोगों को कष्ट क्यों देता है। समाज में गरीब और अमीर की दीवार खड़ी करता है। यदि वह जगतपिता है तो उसने लोगों को निस्सहाय क्यों छोड़ दिया है। वह अच्छा नहीं है। यदि उसके अन्दर दीन-हीनों तथा दलितों की रक्षा करने की शक्ति नहीं है तो वह ईश्वर नहीं है।"

राजकुमार के नवोद्‌घोष को सुनकर सारथी के आश्चर्य की सीमा न रही। वह अपलक सिद्धार्थ को निहारता रहा। अन्त में सिद्धार्थ ने उससे कहा, "छन्दक! दिवसावसान हो रहा है। रथ को घर की ओर मोड़ो?"

छन्दक ने घोड़ों को संकेत दिया। वे छिप्रगति से दौड़ने लगे। थोड़ी देर में रथ सिदार्थ के आनन्दभवन के सिंहद्वार पर पहुँचा। रथ से उतरकर वह अन्तःपुर में पहुँचा। यशोधरा नर्तकियों के साथ सज-धजकर बैठी थी। खड़ी होकर मुस्कराती उसने अपनी कोमल बाँहों को पति के गले में डाल दी। अपने स्पर्श से सिद्धार्थ ने

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

यशोधरा को शान्त किया।

छन्दक तुरन्त महाराज शुद्धोधन के पास गया और शव-शयन की घटनाओं से अवगत कराया। शुद्धोधन चौकन्ना हो गया। द्वार पर सतर्कता बढ़ा दी। शाही आदेश जारी कर दिया कि कोई भी आदमी दिन-रात किसी भी समय राजकुमार के महल में प्रवेश न करे।

महाराज से आदेश लेकर उदायी ने देश-विदेश की अद्वितीय रमणियों का सिद्धार्थ के शयनकक्ष के आस-पास ताँता लगा दिया। वे अपने-अपने अंग-प्रत्यंग को निर्वस्त्र कर विभिन्न प्रकार के हावों-भावों से राजकुमार को रिझाने का सतत् प्रयास करती रहीं पर एकनिष्ठ प्रेमी राजकुमार को झाँसा न दे सकीं।

अंत में एक दिन सिद्धार्थ ने मंत्री उदायी को अपने पास बुलाकर बोला, "मंत्रीवर! यशोधरा का मैं अनन्य प्रेमी हूँ। श्रीराम का अनुगामी हूँ। आप द्वारा नियुक्त कामनियों के उच्छृंखल हावों-भावों का मेरे ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता है। मैं पराई नारियों को अंधे के समान देखता हूँ।"

उदायी बोला, "राजकुमार! जो आदमी नारी के रूप-लावण्य को अंधे के समान देखता है और वीणा की मधुर तरंगों को सुनकर बहरा-सा बन जाता है। नारी के गौर वर्ण एवं सुगठित अंग-प्रत्यंगों को लकड़ी के समान देखता है। वह साधारण नहीं अपितु प्रशान्त व्यक्ति है। आप धन्य हैं क्योंकि आपमें तीनों गुण विद्यमान हैं।"

संन्यासी का दर्शन

रूप-रंग, संगीत, ऐश्वर एवं सतर्क नजरबंदी से सिद्धार्थ का मन पुनः उचट गया। उसने पुनः कपिलवस्तु नरेश से प्रार्थना की, "महाराज! क्या मुझे बाह्य जगत-दर्शन की आज्ञा आप पुनः दे सकते हैं?"

"राजकुमार! क्यों नहीं? अनुमति है।"

छन्दक को आदेश हुआ। वह रथ लेकर सिद्धार्थ के महल के द्वार पर उपस्थित हुआ। राजकुमार जब रथ पर सवार हो गया तो छन्दक ने पूछा, "राजकुमार आप कहाँ जाना चाहते हैं?"

"शिव-मंदिर के उद्यान में।"

जैसे ही सिद्धार्थ उद्यान में पहुँचा, वहाँ अश्वत्थ वृक्ष के नीचे एक संन्यासी दिखलाई पड़ा। उसका सिर मुड़वाया हुआ था। वह शरीर पर ऊपर से नीचे गेरुए रंग का चादर ओढ़े हुए था। दाहिने हाथ में कमण्डलु था। उसका ललाट और चेहरा एकदम प्रशान्त था। प्रसन्नचित्त था। उसके अपूर्व रूप को देखकर सिद्धार्थ

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

अनुप्राणित हो गया। उसके विषय में जानने की उत्कट जिज्ञासा राजपुत्र के मन में हुई।

छन्दक से सिद्धार्थ ने पूछा, "सारथी! यह कौन है?"

"राजकुमार! वह संन्यासी है।"

"छन्दक! संन्यासी का क्या अर्थ है?"

"यह चौथे आश्रम में पहुँच गया है। संन्यास दो शब्दों के योग से बना है। संग+न्यास। संग का अर्थ है साथ और न्यास का अर्थ है त्यागना।"

"इसने किन-किन चीजों को त्यागा है।"

"राजकुमार! सामने संन्यासी जी ने अपना घर, पत्नी, लड़के-लड़कियाँ, जायदाद, गाँव, सारा परिवार सब कुछ त्याग दिया है। इसके मन में न किसी के प्रति मोह है न ईर्ष्या, न द्वेष है न अनुराग है। अहंकार, माया, क्रोध, तृष्णा, यश-प्राप्ति की लालसा आदि सभी कामनाओं का मन से इसने त्याग कर दिया है।"

"फिर इसका पालन-पोषण कैसे होता है।"

"राजकुमार! इसे चूल्हा जलाना वर्ज्य है। इसके कर में जो भिक्षा-पात्र है, उसे लेकर घर-घर परिक्रमा करता रहता है। सद्गृहस्थ दया करके पका-पकाया जो कुछ भोजन भिक्षा-पात्र में डाल देता है उसे किसी वृक्ष के नीचे बैठकर खा लेता है। पेड़ की छाया ही इसका रैन-बसेरा है।"

"छन्दक! बड़ा संतोषी है यह।"

"राजकुमार! संन्यासी सच्चा संत होता है। वह किसी से वैर-भाव नहीं रखता। जो उसका बुरा करता है, उसका भी वह भला करता है। सत्य, त्याग, दया, सेवा, परोपकार, करुणा एवं सहिष्णुता का परित्याग स्वप्न में भी नहीं करता है। फिर भी मानवतावादी होता है। समाज, देश, मानव तथा दलितों के प्रति अपार करुणा है उसके मन में।"

"छन्दक! जब करुणा मन में बस जाती है तभी धर्म का उदय होता है।"

"राजकुमार! कितना संतोष है इस संन्यासी के मन में। संतोष कड़ुवा तो अवश्य होता है पर इसका परिणाम, फल अत्यन्त ही मधुर होता है। इसके मन में कोई विकार नहीं है।"

"छन्दक! मनोविकार मनुष्य के सबसे बड़े शत्रु होते हैं। क्रोध, छल-कपट, मान, लोभ, काम, आकांक्षा, वासना, दम्भ, ऐश्वर्य एवं नाम-लालसा—ये सारे भाव मनोविकार हैं और इस संन्यासी में किसी भी प्रकार के मनोविकार नहीं हैं।"

"पर, राजकुमार! संन्यास निवृत्ति मार्ग है और राजा होने के कारण आपके

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

लिए प्रवृत्ति मार्ग का अनुगमन ही उत्तम है।"

"छन्दक! तुम बहुत बड़े उपदेशक हो पर अब मेरे मन में आसक्ति नहीं, त्याग की उत्कट लालसा है। विरक्ति भाव मेरे मन में जड़ जमा चुका है। जिस प्रकार जलप्लावित नदी की धारा को कोई शक्ति रोक नहीं सकती है उसी प्रकार मेरे दृढ़ संकल्प को कोई अवरुद्ध नहीं कर सकता है। मैं सत्यान्वेषी बनूँगा।"

राजकुमार! निर्भयता संन्यास की सबसे बड़ी कसौटी है क्योंकि संन्यासी को एकाकी जीवन बिताना पड़ता है। उसकी रक्षा कोई अज्ञात शक्ति ही करती है। पर, एक बात महत्व की है, उसे समाज का सिरमौर माना जाता है। बड़े से बड़ा पंडित उसे प्रणाम करता है।

"छन्दक! जो होना था, हुआ और जो होना है वह होकर रहेगा। मैं दृढ़ संकल्प हूँ।"

"भगवान आपके अभीष्ट को पूरा करें। आप नूतन पथ की खोज में सफल हों।"

पुत्ररत्न की प्राप्ति

जिस समय सिद्धार्थ ने संन्यास लेने का अटल निश्चय किया उस समय उसका मन शान्त, स्थिर तथा आनन्द का आगार बन गया। आत्मिक आभा से उसका मुख-मंडल देदीप्यमान हो उठा। उसका हृदय त्याग और करुणा से आप्लावित हो उठा।

जब वह उद्यान से बाहर निकला तो सामने आनन्द से विह्वल मुस्कराता हुआ शुद्धोधन का संदेशवाहक दिखलाई पड़ा। संदेशवाहक के चेहरे पर अजीब हुल्लास था। नतमस्तक होकर संदेशवाहक बोला, "राजकुमार! जय हो।"

राजकुमार ने सतर्क होकर पूछा, "संदेशवाहक! क्या कोई विशेष बात है?"

"हाँ। राजकुमार। यशोधरा के गर्भ से आप जैसा सुन्दर शिशु उत्पन्न हुआ है। महाराज शुद्धोधन तथा महारानी महाप्रजापति पौत्र के जन्म के उपलक्ष्य में ब्राह्मणों और भिखारियों को रुपये, अनाज और मिठाइयाँ बाँट रहे हैं। नर्तकियाँ नाच रही हैं। बधाई देने वालों का ताँता लग गया है। मुझे भी आप नेग दें।"

"संदेशवाहक! नेग तो तब देता जब मुझे नवजात के आगमन पर प्रसन्नता हुई होती।"

"राजकुमार! पुत्ररत्न कुल का दीपक होता है।"

"संदेशवाहक! मेरे कुल का दीपक नहीं अपितु 'राहु' पैदा हुआ है। यह मेरे भावी मार्ग का रोड़ा है। बन्धन है।"

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

बेचारा संदेशवाहक अपना-सा मुँह लेकर रह गया। जब यह शब्द शुद्धोधन के कानों में पड़ा तो उसने ब्राह्मणों से विचार-विमर्श करके पौत्र का नाम राहुल रख दिया।

प्रव्रज्या का प्रस्ताव

नियति की लीला कितनी विचित्र है! राजमहल में बड़े धूमधाम से राहुल का जन्मोत्सव मनाया जा रहा था। कहीं नृत्य और गान हो रहा था, कहीं खेल-तमाशा; कहीं कपड़ा और बर्तन बँट रहा था; कहीं दान-दक्षिणा; कहीं प्रीति-भोज चल रहा था, कहीं सोहर हो रहा था। पर, सिद्धार्थ को अपने पुत्र के जन्मदिवस के उपलक्ष्य में राजमहल के अन्दर जो कार्य-कर्म चल रहे थे, उनसे कोई सरोकार न था। जरा, रोगी, शव तथा संन्यासी को देखकर सिद्धार्थ के मन में जो वैराग्य-भाव उत्पन्न हुआ था वह अपने चरमबिन्दु पर पहुँच गया। राजकुमार प्रव्रज्या ग्रहण करने के लिए पूर्ण रूप से तत्पर हो गया। वह अपने संकल्प से माता और पिता को अवगत कराने के लिए शुद्धोधन के मंत्रणा-कक्ष में पहुँचा। वहाँ शुद्धोधन महाप्रजापति के साथ राजसिंहासन पर बैठे हुए थे। राजकुमार को देखकर दोनों के मन में पुत्र-स्नेह उसी प्रकार उमड़ पड़ा जिस प्रकार पूनम के दिन पूर्णचन्द्र को देखकर प्रशान्त समुद्र का हृदय उद्वेलित हो उठता है। अपनी स्नेहाभिव्यक्ति के लिए गौतम दम्पत्ति आसन छोड़कर खड़ा हो गया। शुद्धोधन बोला, “पुत्र! आओ गले लग जाओ। राहुल तुम्हारे पुरुषार्थ का ज्वलन्त प्रतीक है। अब हमारा वंश-वृक्ष सतत् पुष्पित, पल्लवित एवं फलित होता रहेगा।”

“पिताश्री। मैं तो आपके रंग में भंग उपस्थित करने आया हूँ।”

“समझा नहीं।”

“पिताश्री! अब मैं पितृऋण से उऋण हो गया हूँ। अतः गृहस्थाश्रम त्यागकर प्रव्रज्या ग्रहण करने की अनुमति लेने आया हूँ।”

“पुत्र! संसार में मानव-शरीर कई जन्मों के सत्कर्म एवं तपस्या से मिलता है। जीवन भोगने के लिए मिला है। छककर इसे भोगो। भगवान ने तुम्हें अकूत धन दिया है, धन-धान्य से आपूर्ण राज्य है। तुम्हारे आस-पास विश्व की अनन्यतम रमणियों का ताँता लगा हुआ है। उनके साथ केलि-क्रीणा करो।”

“पिताजी! नारी-संसर्ग, सुरापान, असीमित भोग-विलास और ऐश व आराम से मनुष्य अधःपतन की ओर जाता है। इनकी अपेक्षा सदाचार, पवित्र जीवन, सात्विक भोजन, ब्रह्मचर्य-पालन, संयम, एकनिष्ठ प्रेम, त्याग, परोपकार, परसेवा आदि का पालन करने से मनुष्य को परम शान्ति एवं आन्तरिक आनन्द प्राप्त

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

होता है। विषयभोग विश्व के महारोग हैं। मनुष्य की तृष्णा का कभी अन्त नहीं होता। आनन्द मिलता है, संतोष से, आत्मसंयम से, चित्त की एकाग्रता से। अब किसी भी हालत में संभोग लिप्त नहीं हो सकता।"

"पुत्र! विवेक से काम लो।"

"पिताश्री! जीवन, वैभव, धन, यौवन एवं रूप बिजली की चमक के समान चंचल और अस्थिर हैं।"

"पुत्र! अभी तो गृहस्थाश्रम का आनन्द लो। उसके बाद वानप्रस्थ आश्रम का काल आएगा। संन्याश्रम में यौवन ढलने पर चले जाना।"

"पिताश्री! अब मैं भ्रम और माया के जाल में नहीं पड़ सकता हूँ। जीवन में दुःख ही दुःख है। सुख में भी दुःख है। भोग में भी दुःख है। संयोग में महादुख है। वियोग में भी दुःख है। जहाँ देखो, वहाँ दुःख है। विपत्तियाँ तो गृहस्थी में पिछुआती रहती हैं। चन्द्रमा और सूर्य आकाश में स्थित संसार के जाज्वल्यमान ग्रह हैं पर राहु-केतु उन्हें दबोच लेते हैं। वे भी विपत्ति में फँस जाते हैं। फिर मनुष्य किस खेत की मूली है।"

"सिद्धार्थ! मैं तो तुम्हें जीवन को सफल एवं सुखी बनाने के मार्ग की ओर उन्मुख करने का प्रयास कर रहा हूँ फिर भी तुम अपनी जिद्द पर अड़े हुए हो। ध्यान रखो, धन, साधन, समय, कर्म तथा स्थान पर अच्छी तरह विचार करने के वाद किसी लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए आगे बढ़ना चाहिए।"

सिद्धार्थ को पिता द्वारा कहा गया विचार प्रियतर नहीं लगा। विनम्रतापूर्वक वह बोला, "पिताश्री! मनुष्य को 'स्व' की चिन्ता के साथ-साथ 'पर' की भी चिन्ता करनी चाहिए। आपके राज्य में कोई जरा से संत्रस्त है, कोई महारोग से। मृत्यु, सभी के केश को पकड़े हुए है। वह खोज-खोज कर लोगों की मार रही है, कहाँ मारेगी, कोई माई का लाल नहीं जानता। दुःख सर्वत्र है। गरीबी में दुःख है। अमीरी में भी दुःख है। भोग में दुःख है। शोक में दुःख है। संयोग में दुःख है। वियोग में दुःख है। जहाँ देखो, वहाँ दुःख ही दुःख है।"

"पुत्र! जब सर्वत्र दुःख ही दुःख है तो एकांत-निवास में भी कष्ट ही होगा।"

"पिताश्री! नहीं पिताजी, नहीं। जब मनुष्य की कामनाओं एवं इच्छाओं का अन्त हो जाता है। अपरिग्रह की भावना उत्पन्न हो जाती है। तब शान्ति मिलती है। त्याग ही मन शान्ति का मूल है। एकान्त मनुष्य को बड़े सौभाग्य से प्राप्त होता है। अतः अब मेरे लिए मुक्ति का एक ही मार्ग शेष रह गया है और वह है वैराग्य।"

पुत्र के निर्णय को सुनकर राजा-रानी भौंचक्के हो गए। फिर भी शुद्धोधन ने हार नहीं मानी। उन्होंने पुत्र को आगा-पीछा समझाने का सद्प्रयास किया।

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

सिद्धार्थ से बोला, "पुत्र संन्यास मार्ग बड़ा दूभर है। अहंकार एवं स्वाभिमान को त्यागकर हाथ में भिक्षा-पात्र लेकर चलना पड़ता है। कभी-कभी रूप-लावण्यमयी नारियों को देखकर स्खलित होना पड़ता है। बड़े-बड़े महात्मा आवेश में आकर प्रव्रज्या ग्रहण कर लिया पर माया के चक्कर से बच ही नहीं पाए। गृहस्थाश्रम संन्यासाश्रम से उत्तम है। अतः जिद्द मत करो।"

"पिताश्री! इस संसार में सब कुछ अनित्य है। प्रत्येक वस्तु नश्वर है, क्षणभंगुर है। मानव शरीर पानी का बुलबुला है। एक न एक दिन नष्ट अवश्य होगा। एक न एक दिन राजपाट भी नष्ट हो जाएगा। आज तक चाहे राम हो, चाहे कृष्ण, यमराज के फन्दे से कहाँ बच पाए। सोने की लंका और द्वारका का क्या हस्र हुआ?" बीच में महाप्रजापति बोल उठी, "महाराज! सिद्धार्थ बात तो ठीक ही कह रहा है। मनुष्य अनेक छल-बल से राज्य और धन प्राप्त करता है पर एक दिन में सारा अर्जित धन धरती पर छोड़कर चला जाता है।"

"माताजी! मनुष्य संसार में अकेले आता है और अकेला ही चला जाता है। अतः हर मनुष्य का यह धर्म है कि वह अपनी ही उन्नति तक संतुष्ट न रहे, सबकी उन्नति में सहायक बनकर मानवता का मार्ग प्रशस्त करे।"

अन्त में शुद्धोधन बोला, "बेटा! अब अपने आनन्दभवन में जाओ और राहुल का मुँह देखकर मन को शान्त करो।"

पहरा दसगुना बढ़ गया

सिद्धार्थ अपने शयन-मंदिर में लौट आया। रात में खाकर वह अपनी सुसज्जित पलंग पर लेट गया। महाराज शुद्धोधन का आदेश था। अतः राजकुमार के मनोरंजन के लिए नर्तन, गायन एवं सुरीले वाद्ययंत्र का कार्यक्रम अबाध गति से चलने लगा। कामिनियाँ और मनोहर रमणियाँ अनावृत्त होकर उसके मन में कामासक्ति उत्पन्न करने के लिए हर प्रकार का संभव प्रयास करने लगीं पर विषयी इन्द्रियों और मन को बस में और संयम में रखने वाले सिद्धार्थ के कानों और आँखों में जूँ नहीं रेंगी। उसने मन को एकाग्रकर अपनी कर्मेन्द्रियों पर संयम का ताला लगा कर उन्हें प्रशान्त कर दिया था। एकाग्रचित्तता एक ऐसी कुंजी है जो संसार के असंभवों का ताला खोलकर उन्हें संभाव्य बना देती है।

कामनियाँ क्या करतीं! नाच-नाचकर, गा-गाकर, पायल और नूपुर बजा-बजाकर थककर चूर हो गईं। बीत-राग पर उनका कोई जादू नहीं चल सका। अस्त-व्यस्त होकर औंधे मुँह फर्श पर पसर गईं। उनको देखकर सिद्धार्थ के मन में भयानक वितृष्णा उत्पन्न हुई।

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

महाभिनिष्क्रमण

अर्द्धरात्रि का आगमन होते ही सिद्धार्थ की नींद उचट गई। रमणियों की दीन-हीन अवस्था को देखकर सोचने लगा। धिक्कार है इनके रूप-लावण्य को। सौन्दर्य, भोग, कामसक्ति—सब कुछ धोखा है। वे महामूर्ख हैं जो काम के वंशीभूत होकर उन पर अपनी जान न्यौछावर करते हैं।

संयोग से जब वितृष्णा पैदा होती है तो उत्कट वैराग्य-भाव उत्पन्न होता है। उसके मन में त्याग-भाव का समावेश हो गया। उसे अब न तो यशोधरा का मोह रहा, न पुत्र राहुल का, न माता-पिता और न ही राज-पाट का।

महाभिनिष्क्रमण का दृढ़ निश्चय कर पलंग से तुरंत उतर पड़ा। किवाड़ खोल कर बोला, "भाई! यहाँ कौन है?"

"राजकुमार! मैं छन्दक हूँ।"

"छन्दक! अंतिम निर्णय है। घर-बार छोड़कर तपस्या के लिए प्रस्थान करना है। अश्व तैयार करो?"

"राजकुमार! आपकी आज्ञा का तुरन्त पालन होगा।"

छन्दक अश्वशाला की ओर बढ़ा। उसे देखते ही कंथक हिनहिनाने लगा।

समय पाकर सिद्धार्थ के मन में यह विचार आया कि चलते-चलते जरा यशोधरा एवं पुत्र राहुल का मुँह तो देख लूँ। अन्दर कमरे में देखा तो उस समय यशोधरा फूलों से सुसज्जित शय्या पर पुत्र के सिर पर हाथ रखकर गहरी निद्रा में निमग्न थी।

वह असमंजस में पड़ गया। सोचा कि यदि वह यशोधरा को जगा देगा तो पुत्र भी जाग जायेगा। महाभिनिष्क्रमण का नाम सुनकर दोनों रोने लगेंगे। इसके कारण जो कारुणिक दृश्य उपस्थित होगा, उसे मेरा नवनीत-सा कोमल हृदय कैसे सहन करेगा। रोना-धोना सुनकर अन्य लोग भी जाग जायेंगे। बहुत बड़ा व्यतिक्रम उपस्थित हो जाएगा।

अतः देहली से ही झाँककर राहुल और यशोधरा के मुखकमल को ध्यान से देखा और निस्पृह होकर लौट पड़ा।

चित्त को पलभर में दृढ़ कर वह अपने महल से बाहर निकला। सामने देखा तो छन्दक कंथक को सुसज्जित कर लगाम हाथ में थामे खड़ा था। उचककर सिद्धार्थ क़ंथक की पीठ पर सवार हो गया। छन्दक का इशारा पाकर कंथक चल पड़ा।

शुक्ल पक्ष था। आषाढ़ की पूर्णिमा थी। सर्वत्र स्वच्छ चाँदनी छिटकी हुई थी। रातभर कंथक सरपट मारता रहा। सिद्धार्थ धवल चाँदनी तथा पेड़-पौधों को

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

मौन होकर एकाग्र दृष्टि से निहार रहा था। चलते-चलते अश्व गोरखपुर के पास अनोमा नदी के तट पर पहुँचकर रुक गया। सिद्धार्थ-झट से घोड़े पर से उतर पड़ा। जिस प्रकार अनोमा नदी का जल शीतल, पवित्र एवं शान्त था उसी प्रकार सिद्धार्थ का मन सभी विकारों से रहित होकर शान्त, एकाग्र एवं निर्मल हो गया।

संन्यास-ग्रहण

सिद्धार्थ ने राजसी परिधानों एवं बहुमूल्य अलंकारों को पलभर में उतारकर छन्दक को प्रदान कर दिया। तलवार तो उस समय उसके हाथ में थी ही। उससे उन्होंने सिर के बालों, दाढ़ी और मूँछ को काटकर साफ कर दिया। गेरुवा वस्त्र साथ में था ही, तुरन्त धारण कर संन्यासी बन गए। अब इस रूप में वे वन्दनीय पूजनीय तथा नमनीय बन गए।

सिद्धार्थ संन्यास धारण के लिए लकीर के फकीर नहीं बने। न तो उन्होंने पारंपरिक विधि-विधानों का पालन किया और न ही किसी ऋषि से दीक्षा ग्रहण की। उनका संन्यास स्वतःस्फूर्त था। प्रव्रज्या धारण करने के समय उनकी उम्र उन्तीस साल की थी।

अनोमा नदी को पारकर वे अकेले मगध की ओर चल पड़े। चलते-चलते अनुप्रिया गाँव के सन्निकट पहुँचे। गाँव के पास एक घना आम्रवन था। उस वन में वे रुक गए। वहाँ पर अकेले एक सप्ताह तक संन्यास सुख का पहला अनुभव किए।

वहाँ से मगध की राजधानी राजगृह की ओर अग्रसर हुए। शरीर पर गेरुआ वस्त्र था और हाथ में भिक्षा-पात्र। संन्यास रूप धारण के बाद उनका रूप इतना भव्य, तेजस्वी, आकर्षक और अलौकिक लगता था कि मन्मथ भी उनके सामने फीका लगता था। वहां राजमार्ग पर चलने वालों के दर्शन के केन्द्र बिन्दु बन गए। उनके रूप-लावण्य को देखकर नर-नारी मार्ग में ठिठक जाते थे और हाथ जोड़कर प्रणाम करते थे।

राजगृह और बिम्बसार

काषाय चीवरधारी परिव्राजक शाक्यमुनि सत्य की खोज में लगन, निष्ठा, संयम, एकाग्रचित्तता के साथ सांसरिक कामनाओं एवं तृष्णाओं को तिलांजलि देकर राजगृह की ओर अनवरत बढ़ते रहे। अभी-अभी उन्होंने राज-वैभव त्यागा था। स्वर्णमयी रथ तथा अश्व को छोड़कर प्रथम बार नंगे पैर पद-यात्रा कर रहे थे। पर आश्यर्च की बात है कि उन्हें रंचमात्र भी थकावट मालूम नहीं हुई। यात्रा की दूरी

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

भी कम नहीं अपितु 200 कोस की थी। पद-यात्रा में उन्हें जो आनन्द प्राप्त हुआ, वह रथ-यात्रा में कभी भी नहीं मिला था। राजगृह में जब पहुँचे तो दर्शनार्थी उनके चमकते हुए भव्य ललाट और गोरे अंग को देखकर लहालोट हो गए।

धर्म के सैलानी ने राजगृह के प्राकृतिक वैभव को गौर से देखा। यह स्थान पाँच पहाड़ियों से घिरा हुआ था। इसका सारा परिवेश मंगलमय, कल्याणदायक एवं शान्ति-प्रदायक प्रतीत होता था। सारा वातावरण शान्त एवं रम्य था। इसके चारों ओर लोध्र वृक्षों से आच्छादित वनस्थली थी जहाँ मयूर नृत्य एवं कलरव में तल्लीन थे। यहाँ पर एक पाण्डु नायक मनोहर गुफा थी। यह गुफा करुणा और शान्ति के प्रणेता को भा गई। अतः उन्होंने विश्राम करने के लिए एक पर्णकुटीर बना ली।

दूसरे दिन प्रातःकाल उठकर स्नान-ध्यान किए और काषाय वस्त्र धारण कर हाथ में भिक्षा-पात्र लेकर भिक्षाटन करने लगे। एक दिव्य, शान्त, आकर्षक एवं स्प्रहणीय व्यक्ति और हाथ में भिक्षापात्र, लोग देखकर आश्चर्यचकित हो गए। आस-पास से चारों ओर उनके दर्शन के लिए जन-सैलाव उमड़ पड़ा।

उस समय महाराज बिम्बसार राजमहल के बरामदे में टहल रहे थे। अचानक उनकी दृष्टि दिव्य एवं परिवर्तनकामी पुरुष पर पड़ गई। अलौकिक महात्मा के व्यक्तित्व के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने के लिए उनका मन ललक उठा। तुरन्त एक राजपुरुष को बुलाया। साष्टांग प्रणाम कर वह बोला, "महाराज! क्या आज्ञा है?"

"सेवक! देखो? उस भिक्षु संन्यासी, जिसके पीछे भीड़ लगी है, के पास जाओ और पता लगाओ कि वह कौन है?"

"जो आज्ञा।" कहकर वह परिव्राजक का पता लगाने चल पड़ा।

एक धर्मचेता गृहस्थिन ने जैसे स्वामी जी को देखा, अपनी रसोई से पका हुआ अन्न लेकर उनके भिक्षापात्र में डाल दिया। खाद्य भिक्षा लेकर स्वर्णमयी आभा से देदीप्यमान संन्यासी पाण्डु गुफा की एक चट्टान पर आसन लगाकर बैठे और भोजन करने लगे। भोजन निर्धन गृहस्थ द्वारा प्रदत्त था। अतः स्वाद रहित एवं फीका था। कहाँ छप्पन भोग और कहाँ रुखा-सूखा अन्न? पहला कौर जब मुँह में डाले तो भोजन अटपटा लगा। मन विचलने लगा। तुरन्त उन्होंने उस पर संयम की लगाम लगा दी। उनके मन में बिजली की तरह यह सत्य कौंध उठा कि "अब तो इसी प्रकार के अन्न को खाकर जीवन-यात्रा करनी होगी। धैर्य के साथ चबा-चबाकर भोजन करने लगे।"

महाराज बिम्बसार के राजसेवक द्वारा यह हृदय-विदारक दृश्य देखा न गया।

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

अविलम्ब राजमहल जाकर मगध नरेश को उसने इस दुखद घटना से अवगत कराया। बिम्बसार सिंहासन से उतरकर दौड़ा-दौड़ा शाक्य मुनि के पास आया।

मगध नरेश के पहुँचने के पहले ही शाक्यमुनि भोजन समाप्त कर चुके थे। हाथ-मुँह धोकर अपने आसन पर शान्तचित्त बैठे हुए थे। उनका रूप और व्यक्तित्व उषा काल के बाल सूर्य-सा उद्भासित हो रहा था। उन दिनों मुनियों, यतियों, तपस्वियों, परिव्राजकों और ऋषियों का समाज में बहुत अधिक सम्मान था। राजा हो या महाराज, श्रेष्ठी हो या ब्राह्मण सभी उनके सामने श्रद्धा से नतमस्तक हो जाया करते थे।

तरुण परिव्राजक के सन्निकट पहुँचकर बिम्बसार ने साष्टांग प्रणाम कर उनकी परिक्रमा की। उनके निराले एवं अप्रतिम व्यक्तित्व से मगध नरेश विशेष रूप से प्रभावित हुआ। वह तरुण स्वामी को अपना आधा राज्य न्यौछावर करने के लिए उद्यत हो गया पर प्रशासन-भार सौंपने के पहले तरुण स्वामी का परिचय प्राप्त करना चाहा।

विनम्रतापूर्वक बोला, "स्वामी जी! मैं मगधराज बिम्बसार आपसे कुछ प्रश्न पूछने की आज्ञा चाहता हूँ।"

"बिम्बसार जी! राजा तो देश की नियामक शक्ति होता है। उसकी छत्रछाया में गृह त्यागियों तथा तपस्वियों के जीवन की रक्षा होती है। आप एक नहीं अपितु हजार प्रश्न पूछ सकते हैं।"

"स्वामी जी! आपका कुल, गोत्र और परिचय क्या है?"

"महाराज! मैं सूर्यवंशी क्षत्रिय है। मैं शाक्य हूँ। मेरा गोत्र गौतम है। मैं कपिलवस्तु नरेश शुद्धोधन का पुत्र हूँ पर अब तो एक संन्यासी और गृह-त्यागी हूँ। साधुओं, मुनियों और संन्यासियों का कुल नहीं देखा जाता। उनका त्याग, धर्म और आचरण विचारणीय होता है।"

"स्वामी जी! अभी आपकी तरुणावस्था है। यह अवस्था तो राजसुख भोगने की है। जब चौथी अवस्था आएगी तो संन्यास ग्रहण कर लेना। शास्त्र का यही विधान भी है।"

"महाराज! आपका विचार रजोगुण सम्पन्न है। एक राजा की यही सोच होनी चाहिए। मैं आपके विचारों का हृदय से स्वागत करता हूँ।"

"स्वामी जी। आप भिक्षा-पात्र और काषाय वस्त्र त्याग दें?"

"क्यों?"

"स्वामी जी! आपके अपूर्व व्यक्तित्व को देखकर मैं आह्लादित हो गया हूँ। अतः मैं आपको अपने आधे राज्य का आधिपत्य सौंपना चाहता हूँ। आप मेरे इस

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

सद्प्रस्ताव को स्वीकार कर मुझे कृतार्थ करें।"

"राजन्! सुख में तो बड़ा दुःख है। एक राजा रात-दिन अपने राज्य की रक्षा के लिए चिंतित रहता है। उसे केवल बाहरी शत्रुओं का ही भय नहीं रहता अपितु आन्तरिक विद्रोह का आतंक भी उसके सिर पर मँडराया करता है। अपने स्वार्थ और भोग को पूरा करने के लिए वह किसानों, मजदूरों, दासों का शोषण करता है। उसकी काम-भावना को संतुष्ट करने के लिये देश-विदेश की हजारों नारियाँ उसके अन्तःपुर में रात-दिन तड़पती रहती हैं। निःसहाय नारियों एवं निर्धन मजदूरों तथा दासों का शोषण करना बहुत बड़ा अमानवीय कृत्य है।"

"स्वामी जी। आप एक बार मेरे सद्प्रस्ताव पर पुनर्विचार करें?"

"राजन्। मैंने अच्छी तरह सोच-समझकर राज-सुख का परित्याग किया है। अब अज्ञान और ऐन्द्रिय सुखों की कामना से पूरी तरह विमुक्त हो गया हूँ। संसार के समस्त ऐहिक सुख अनित्य हैं, अस्थिर हैं, क्षणभंगुर हैं, नश्वर हैं। पार्थिव सुख मनुष्य को नाना प्रकार की कामनाओं के पाश में बाँधकर उसके चित्त को आँधी की तरह चंचल और अशान्त बना देते हैं। रात-दिन उसे चैन नहीं लेने देते। विषयासक्त मनुष्य का अन्त क्लेशक होता है। सुखदायी स्थिति आज नहीं तो कल अवश्य दुखदायी बन जाएगी।"

तरुण परिव्राजक के नकारात्मक उत्तर को सुनकर बिम्बसार नतमस्तक हो गया। अपने मन में सोचने लगा, "यह युवक परमसत्य का अन्वेषी है। मोह-माया के जाल से विमुक्त हो चुका है। यह लगन, निष्ठा और त्याग का अधिष्ठाता है। योगी है योगी। इसके लिए लोकोत्तर आनन्द के सामने ऐहिकतापरक बातें नगण्य हैं।"

तरुण संन्यासी के दृढ़ निश्चय को देखकर मगध नरेश को पक्का विश्वास हो गया कि एक न एक दिन यह युवक संसार का महापुरुष बनेगा। अतः हाथ जोड़कर बोला, "महात्मन! आप सच्चे त्यागी हैं। मेरा आप से विनम्र निवेदन है। कृपया स्वीकार करें?"

"कहिए?"

"जब आपको लक्ष्य-प्राप्ति हो जाए तो राजगृह में अवश्य पधारें?"

"तथास्तु।"

बिम्बसार प्रकोष्ठ

बिम्बसार के समय में बिम्बप्रकोष्ठ नामक एक प्रसिद्ध तपोवन था। वहाँ पर ध्यानाचार्य 'अराड-कालाम' का निवास-स्थान था। वे निःश्रेयस ज्ञान के मर्मज्ञ था।

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

उनके वारे में सिद्धार्थ अनेक प्रकार की चर्चाएँ सुना करते थे। संन्यास धारण के वाद वह संसार के सभी प्राणियों को क्लेश और अविद्या से मुक्त करने के लिए एक नये मार्ग को खोज निकालना चाहते थे। उनके मन में यह विश्वास दृढ़ हो गया कि आचार्य अराड-कालाम का सान्निध्य सत्यान्वेषण के मार्ग में विशेष रूप से सहायक होगा।

सिद्धार्थ एक साधारण विद्यार्थी नहीं अपितु एक परिव्राजक थे। अतः उन्हें देखकर 'अराड-कालाम' फूले न समाये। उन्होंने भव्य युवक संन्यासी का यथोचित सम्मान किया। तपोवन की भव्यता और शान्ति तथा ध्यानाचार्य के औदार्य एवं आतिथ्य-सत्कार से वह गद्गद हो गए। थोड़ी देर तक मौन धारण किए। उनके मौन को तोड़ने के लिए 'अराड-कालाम' अत्यन्त ही मधुर वाणी में वोले, "परिव्राजक जी। आपने किस हेतु मेरी कुटिया को पवित्र किया है?"

"आचार्यश्री। आप इस समय संसार में निःश्रेयस ज्ञान के सर्वश्रेष्ठ विशेषज्ञ हैं। आपसे मैं ध्यान-योग के विभिन्न अंगों और प्रयोग-विधियों का ज्ञान प्राप्त करना चाहता हूँ।"

"स्वामी जी! आप इस समय राजकुमार नहीं अपितु संन्यासी हैं और एक संन्यासी समाज में सर्वोपरि महात्मा माना जाता है। अतः आप मेरे पूजनीय हैं। आपके ललाट से तो स्वयं ज्ञान की एक प्रचण्ड ज्योति उद्भासित हो रही है। आप तो स्वयं ही एक नयी साधना पद्धति का आविष्कार करेंगे। फिर भी मुझे योग-सम्बन्धी जो भी ज्ञान और अनुभव है, उससे आपको अवगत कराऊँगा।"

"आचार्य प्रवर! योग के कितने अंग हैं?"

"आठ।"

"क्या आप उनके नाम गिना सकते हैं।"

"हाँ। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ये योग के आठ अंग है—सुविधा के लिए इन्हें दो वर्गों बाँटा गया है—पहला बाह्य और दूसरा अन्तरंग। यम, नियम, आसन, प्रणाम और प्रत्याहार—ये पाँच योग-साधना के बहिरंग साधन हैं और धारणा, ध्यान और समाधि योग के अंतरंग साधन हैं।"

"आचार्य श्री! क्या अष्टांग योग द्वारा संसार के नाना प्रकार के दुःखों से मुक्ति मिल सकती है?"

"परिव्राजक जी! हाँ। देखिए। मनुष्य क्रमशः क्लेशों एवं सकाम कर्मो द्वारा बहिर्मुख होकर नाना प्रकार के कष्टों को भोगता है। इसका मूल कारण अविद्या है। अविद्या से अस्मिता, अस्मिता से राग, राग से द्वेष, उत्पन्न होता है। सकाम कर्मों की वासनाओं से जन्म, आयु, भोग और उन सकाम कर्मों के पाप-पुण्य के अनुसार

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

चेतन प्राणी को दुःख-सुख प्राप्त होता है। बहिर्मुखी दुःखों से मनुष्य को तभी मुक्ति मिलती है जब वह अन्तर्मुखी होता है। अष्टांग योग अन्तर्मुखी होने का सर्वश्रेष्ठ एवं सरलतम उपाय है।"

संन्यासी सिद्धार्थ की जिज्ञासा बढ़ गई। एक विनम्र साधक की तरह बोले, "आचार्य प्रवर। सर्वप्रथम आप मुझे यम की सम्यक व्याख्या कर समझाएँ?"

"ठीक है। ध्यान दें। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। मनुष्य जो समाज के अन्य प्राणियों के साथ सद्व्यवहार करता है, उसका ज्ञान और अभ्यास योग के बहिर्मुखी साधन यम द्वारा समृद्ध होता है। यमों द्वारा मनुष्य का जीवन सात्विक और पवित्र बनता है। सकाम कर्म जो जन्म, आयु तथा भोग का जनक है, वह शान्त हो जाता है। राग-द्वेष तथा अभिनिवेश क्लेश, जिनका सम्बन्ध समाज के बाहरी व्यवहार से है, कृश हो जाते हैं।"

"आचार्य श्री। यम कितने प्रकार का है।"

"पाँच।"

"उन्हें स्पष्ट करें?"

"ध्यान दें। अहिंसा, मन, वचन तथा कर्म से किसी पराये प्राणी की हिंसा न करना अहिंसा है।"

"और दूसरा?"

"सत्य। मानव-जीवन में सतत् और असत्य—ये दो चीजें विद्यमान हैं। जब मनुष्य मन वाणी और कर्म से इन दोनों से दूर रहता है तो उसे सत्य कहा जाता है। सत्य सदा सर्वहितकारी होता है।"

"तीसरा?"

"अस्तेय। जब मनुष्य मन, वाणी और कर्म से किसी की कोई वस्तु नहीं चुराता है तो उसे अस्तेय कहते हैं। अस्तेय स्तेय (चोरी करने की क्रिया) का विरोधी है। स्तेय असत्य है, स्तेय हिंसा है।"

"चौथा?"

"ब्रह्मचर्य। मन, वाणी और कर्म से नारी-संसर्ग से बचना ब्रह्मचर्य है।"

"पाँचवाँ?"

"अपरिग्रह। इसका अर्थ होता है—परिग्रह न करना। धन का संचय न करना अपरिग्रह है। हर मनुष्य को परोपकर के लिए धन का त्याग करना चाहिए।"

"आचार्य प्रवर। अष्टांग योग के दूसरे अंग की व्यवस्था करें?"

"अष्टांग योग का दूसरा अंग नियम है। इसका सम्बन्ध व्यक्तिगत शरीर, इन्द्रियों तथा अन्तःकरण से होता है। नियमों के सम्यक पालन से मनुष्य का सारा

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

व्यावहारिक जीवन राजसी, तामसी, विक्षेप तथा आवरण रूप मलों से शुद्ध होकर सात्विक, दिव्य और पावन हो जाता है। इसमें पवित्रता, संतोष, तपस्या, स्वाध्याय, ईश्वर प्राणिधान की प्रधानता रहती है।"

नियम के स्पष्टीकरण से परिव्राजक जीवनधारी सिद्धार्थ का मन प्रसन्न हो गया क्योंकि वह कड़ाई से सद्नियमों का पालन करते थे। उनकी जिज्ञासा बढ़ गई। वह पुनः प्रश्न कर बैठे, "आचार्यप्रवर! आसन क्या है?"

"परिव्राजक (सिद्धार्थ) जी! आसन एक प्रकार की शारीरिक क्रिया है। इसके द्वारा शरीर की रजरूप चंचलता तथा अस्थिरता और तमरूप आलस्य और प्रमाद से मुक्ति मिलती है। अतः साधक के मन में सात्विक तथा दिव्य भावों का प्रादुर्भाव होता है। आसन पर अधिकार हो जाने पर साधक पर शीत और ताप का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।"

"आचार्यश्री। अब आप प्राणायाम का विवेचन करें?"

"परिव्राजक जी। प्राणायाम योग का चौथा अंग है। आसन के स्थिर हो जाने पर श्वास-प्रश्वास की गति को रोकना प्राणायाम है। नियंत्रित गति से श्वाँस को धीरे-धीरे बाहर छोड़ने की प्रक्रिया को वाह्य प्राणायाम की संज्ञा दी गई है और श्वास को धीरे-धीरे अन्दर लेना आभ्यान्तर प्राणायाम कहलाता है। साधारण स्थिति में एक मिनट में श्वास पन्द्रह बार बाहर-भीतर जाता है। इस स्थिति में श्वास की स्थिति इस प्रकार होती है–(1) श्वास का भीतर जाना–श्वास, (2) भीतर रुकना–विराम, (3) बाहर निकलना–प्रश्वास, (4) बाहर रुकना–विराम।"

"आचार्य जी! श्वास-प्रश्वास को कैसे रोका जाता है?"

"श्वास-प्रश्वास की गतियों के प्रवाह को तीन प्रकार से रोका जाता है–रेचक, पूरक और कुंभक। इनके द्वारा श्वास-प्रवास को वाह्याभ्यन्तर दोनों स्थान पर रोकना प्राणायाम है।"

"आपके कहने का तात्पर्य यह है कि प्राणायाम तीन प्रकार का होता है।"

"हाँ। वाह्यवृत्ति, आभ्यान्तर वृत्ति और स्तम्भ वृत्ति–ये तीनों प्राणायाम के तीन प्रकार हैं। देश, काल और संख्या की दृष्टि से प्राणायाम हल्का और लम्बा होता है।"

"आचार्य श्री। आप इन तीनों प्रकारों को सुबोध ढंग से व्याख्यायित करें?"

"ठीक है। सर्वप्रथम हम रेचक को समझाते हैं। (1) रेचक–इसकी गणना वाह्य वृत्ति (प्रश्वास) के अन्तर्गत होती है। जब साधक श्वास को बाहर निकालकर उसकी स्वाभाविक गति का अभाव कर देता है तो उसे रेचक प्राणायाम कहा जाता है।"

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

"और पूरक?"

"यह श्वास की आभ्यान्तर वृत्ति है। जब एक साधक श्वास को अन्दर खींचकर उसकी स्वाभाविक गति का अभाव कर देता है तो इसे पूरक प्राणायाम कहते हैं।"

"धन्यवाद। अब आप कुम्भक प्राणायाम पर प्रकाश डालें?"

"कुम्भक प्राणायाम का आधार स्तम्भ वृत्ति है। जब एक साधक श्वास-प्रश्वास दोनों प्रक्रियाओं के अभाव से प्राण को जहाँ-का-तहाँ अवरुद्ध कर देता है तो उसे कुम्भक प्राणायाम कहते हैं। कुम्भक प्राणायाम में श्वास-प्रश्वास दोनों की गति का एक साथ अभाव हो जाता है। इनके अलावा एक चतुर्थ प्राणायाम की भी परिकल्पना की गई है।"

"आचार्य श्री। उसे भी समझा दें?"

"परिव्राजक रूपधारी सिद्धार्थ! चतुर्थ प्राणायाम में श्वास-प्रश्वास की गति को बिना अवरुद्ध किये रेचक सम्पन्न किया जाता है। एक साधक जब इसका सतत अभ्यास करता है तो श्वास-प्रश्वास की गति देश, काल और संख्या के परिणाम से दीर्घ और सूक्ष्म होती हुई स्वतः अवरुद्ध हो जाती है।"

"आचार्य श्री! आप प्राण के भेद बतलाते हुए उनके स्थान भी स्पष्ट करें?"

"परिव्राजक महोदय! प्राण के पाँच भेद हैं—प्राण, अपान, समान, व्यान, उदान। जहाँ प्राण का निवास-स्थान है वहाँ अपान का मूलाधार है। समान का संबंध नाभि से है। पूरक में प्राण समान से नीचे जाकर अपान के साथ मिलता है। रेचक में अपान समान से ऊपर जाकर प्राण से मिलता है। प्राणायाम का मूल लक्षण प्राण और अपान का मिलाना है। प्राणायाम कहने से रेचक, पूरक और कुम्भक की क्रिया का द्योतन होता है।"

प्राणायाम का मूल लक्ष्य चित्तवृत्तियों को नियंत्रित करना है। प्राणायाम से बड़ा कोई तप नहीं है। उससे मन के सारे विकार और इन्द्रियों के मल धुल जाते हैं। प्राणायाम से कर्मेन्द्रियों तथा ज्ञानेन्द्रियों के सभी मल उसी प्रकार नष्ट हो जाते है, जैसे अग्नि से तपाने पर स्वर्ण आदि धातुएँ के मल नष्ट हो जाते हैं। पुनः संन्यास रूपधारी सिद्धार्थ ने प्रश्न किया, "ध्यान-मार्ग से क्या मन को वश में किया जा सकता है?"

"हाँ, यदि एक साधक ध्यान-मार्ग अपनाकर प्रयोग तथा अविरत अभ्यास द्वारा अपनी सांस पर नियंत्रण प्राप्त कर ले तो उसका चित्त स्वतः एकाग्र और सांद्रित हो जाता है।"

"आचार्य जी! श्वास को संयमित एवं नियंत्रित करने वाली प्रक्रिया को किस

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

नाम से अभिहित किया जाता है?"

"आनापानसति। रेचक, पूरक तथा कुम्भक की गणना इसी के अन्तर्गत होती है।"

"अच्छा। अब आप प्रत्याहार को परिभाषित और व्याख्यायित करें?"

"परिव्राजक जी। प्रत्याहार का अर्थ है—पीछे हटना, उल्टा होना, विषयों से विमुख होना। जब इन्द्रियाँ बाह्य विषयों की आसक्ति से विमुख होकर अन्तर्मुखी हो जाती हैं तब इस अवस्था को प्रत्याहार कहा जाता है। इन्द्रियों का अपने विषयों से सम्बन्ध न होने पर चित्त के स्वरूप का अनुकरण जैसा करना प्रत्याहार है। यम, नियम, आसन और प्राणायाम का सतर्कता एवं एकाग्रतापूर्वक जब सतत अभ्यास किया जाता है तब इन्द्रियाँ चित्त वे वश में होकर काम करती हैं। जब चित्त का बाह्य विषयों से उपराग होता है तभी उनको ग्रहण करती है।"

"आचार्य श्री! आपके कहने का तात्पर्य यह है कि जब यम, नियम, आसन और प्राणायाम आदि के प्रभाव से मन बाहरी विषयों से विरत होकर समाहित होने लगता है तब इन्द्रियाँ भी चित्त (मन) का अनुसरण करती हुई अन्तर्मुखी हो जाती हैं। यह उनका प्रत्याहार है।"

"स्वामी जी! आप तो स्वयं त्रिकालदर्शी एवं विलक्षण प्रतिभा सम्पन्न हैं। आप सूर्य हैं और मैं दीपक। एक बात का ध्यान रखें। प्रत्याहार की अवस्था में चित्त तो बाहरी विषयों से विरत होकर आत्मतत्त्व की ओर अग्रसर होता है पर इन्द्रियों की विरक्तता केवल बाह्य विषयों तक ही सीमित है। प्रत्याहार में इन्द्रियाँ पूर्ण रूप से मन के वश में हो जाती हैं।"

"आचार्य श्री। आपके स्पष्टीकरण से मुझे अपार संतोष प्राप्त हुआ है। प्रत्याहार में सफलता पाने के बाद साधक पूर्णरूप से जितेन्द्रिय हो जाता है।"

"हाँ। और स्वामी जी! इस समय संसार में आपसे बड़ा जितेन्द्रिय और कोई नहीं है। अगर आप इसका अभ्यास करेंगे तो रोग और पाप स्वतः विनष्ट हो जाएंगे। उनके विनष्ट होने पर तप भी बढ़ता है और मन भी निर्मल हो जाता है। प्राणायाम से मन नियंत्रित होता है और प्रत्याहार से इन्द्रियाँ।"

आसन के जीतने पर प्राणायाम की स्थिरता होती है और प्राणायाम की स्थिरता से प्रत्याहार की सिद्धि होती है। योग के आठ अंगों में से ये पाँच अर्थात् यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार योग के बहिरंग साधन हैं।

"आचार्य श्री। आपने जो योग के पाँच अंगों का विवेचन किया है, उनका अभ्यास प्रातःकाल एवं सायंकाल करता रहूँगा। अब आप योग के अन्तरंग साधनों का सम्यक विश्लेषण करें?"

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

"परिव्राजक सिद्धार्थ! योग के अन्तरंग साधन हैं—धारणा, ध्यान और समाधि। इन तीनों के संयुक्त रूप को संयम कहा जाता है। इन तीनों अन्तरंग साधनों का अभ्यास वैराग्य के बिना संभव नहीं है।"

"आचार्य जी! संसार की कामनाओं एवं वासनाओं से मैं मुक्त हो गया हूँ। वैराग्य का पालन तो कर ही रहा हूँ। अब आप धारणा का स्पष्टीकरण करें?"

"ध्यान दीजिए! चित्त का वृत्तिमात्र से किसी स्थान विशेष में बाँधना धारणा कहलाता है। जब एक साधक अपने मन को अभ्यास द्वारा अन्य विषयों से हटाकर वृत्तिमात्र से एक ही ध्येय विषय पर केन्द्रित कर लेता है तो उसे धारणा कहा जाता है।"

"आचार्य जी। चित्तवृत्ति को किन स्थानों पर केन्द्रित करके धारणा का अभ्यास किया जाता है?"

"नाभि, हृदय कमल, नासिका का अग्रभाग, भ्रकुटी, ब्रह्मरन्ध्र आदि ये आध्यात्मिक देशरूप विषय हैं। इनके अलावा कुछ साधक चन्द्र, ध्रुव आदि बाह्य देश विषय पर अपना मन केन्द्रित करते हैं। जिसमें ध्यान लगाया जाता है उसे ध्येय कहते हैं।"

"आचार्य श्री! ध्यान क्या है?"

"धारणा में मन जिस वृत्तिमात्र से ध्येय में लगता है, जब वह वृत्ति व्यवधान रहित सतत समान प्रवाह से उदय होती रही तो उसको ध्यान कहते हैं। ध्यान में साधक लगातार वस्तु-विशेष पर चिंतन करता है और अन्य विचारों की सीमा से मन को बाहर कर देता है। एक ही ध्येय वस्तु पर सतत मन की शक्तियों का एकाग्र करना ही ध्यान है।"

"और समाधि?"

"समाधि शब्द (सम्+आ+धा+कि) के योग से बना है। इसका अर्थ होता है—मन को किसी एक विषय पर केन्द्रित करना। यह योग की अंतिम अवस्था है। वह ध्यान ही समाधि है, जब उसमें केवल ध्येय अर्थ मात्र से भासता है और ध्यान का स्वरूप शून्य जैसा हो जाता है। ध्यान में ध्येय मात्र का नहीं अपितु ध्येय का भान होता है। पर समाधि में ध्यान ध्येय मात्र से भासता है।

जिसमें मन विक्षेपों को हटाकर यथार्थता से धारण किया जाता है, वह समाधि है। समाधि में मन शरीर से मुक्त होकर एक अनन्त ज्योति में अन्तर्लीन हो जाता है।"

परिव्राजक रूपधारी सिद्धार्थ ने अराड-कलाम द्वारा निर्देशित अष्टांगिक योग का अभ्यास लगन और निष्ठा के साथ किया। एक दिन उन्होंने आचार्य से

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

प्रश्न किया, "आचार्य जी! जरा, मरण और मृत्यु से जीव कैसे विमुक्त हो सकता है?"

अराड-कलाम ने शास्त्रोक्त निश्चय के आधार पर संसार की उत्पत्ति एवं विवर्तन के सिद्धान्त को अच्छी तरह समझाया और नैष्ठिक पद की प्राप्ति का उपाय भी अष्टांगिक मार्ग द्वारा समझाया।

अभ्यास करते-करते अष्टांग योग पर जब सिद्धार्थ ने अधिकार प्राप्त कर लिया तब एक दिन विनम्रतापूर्वक अराड-कलाम से पूछा, "आचार्यश्री! अब तो योग के आठों अंगों का अभ्यास कर लिया? क्या और कोई विधि अभी शेष रह गई है?"

"नहीं। अब आप 'उद्रक-रामपुत्र' के आश्रम पर जाएँ क्योंकि उन्होंने एक अनोखी ध्यान-विधि का आविष्कार किया है।"

"अच्छा! आज ही चला जाऊँगा।"

उद्रक-रामपुत्र का आश्रम

सत्य का अन्वेषी सिद्धार्थ पैदल चलकर उद्रक रामपुत्र के आश्रम में पहुँचे। उनके भव्य रूप और संन्यास-वेश को देखकर आचार्य उद्रक रामपुत्र आश्चर्य में पड़ गये। आसन से उठकर उन्होंने सिद्धार्थ का हृदय से स्वागत किया।

जब संन्यासी सिद्धार्थ आसन ग्रहण कर लिये तब उद्रक-रामपुत्र ने उनसे प्रश्न किया, "स्वामी जी! किस हेतु आपने मेरे आश्रम को पवित्र किया है?"

"आप द्वारा आविष्कृत नूतन ध्यान-विधि को सीखना चाहता हूँ।"

"तथास्तु।" कहकर आचार्य ने अपनी ध्यान-विधि उन्हें सिखला दी।

कुछ ही दिन में अभ्यास करते-करते उस ध्यान-विधि में सिद्धार्थ दक्ष हो गये। पर उनकी जिज्ञासा का अभी अन्त नहीं हुआ। अतः विनम्रतापूर्वक बोले, "आचार्य श्री! क्या अभी और कुछ सीखना बाकी है?"

"नहीं।"

क्या करते? सिद्धार्थ वहाँ से चल दिए। समाधि-मार्ग का अभ्यास करते रहे।

वियोगाकुल कपिलवस्तु

सत्यान्वेष की उत्कट आकाँक्षा से अभिभूत होकर सिद्धार्थ यशोधरा और पुत्र राहुल को निद्रा-निमग्न छोड़कर कपिलवस्तु से चले गये और ध्यान योग में तल्लीन हो गए। सुप्तावस्था में यशोधरा को सिद्धार्थ के पलायन का पता नहीं चला। ब्राह्ममुहूर्त में उसने एक अद्‌भुत स्वप्न देखा, "राजकुमार सिद्धार्थ अपना राजसी

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

परिधान एवं अलंकार त्याग कर कोमल केशों को काटकर गैरिक वस्त्र धारण कर लिए हैं।" स्वप्न जरा विचित्र एवं अप्रत्याशित था। अतः वह हड़बड़ाकर उठ बैठी। राहुल के सिर पर हाथ रखे हुए उसने दीपक को दीप्त किया। उसने शयनकक्ष और सिद्धार्थ की शय्या को देखा तो पतिदेव का कहीं अता-पता नहीं था। आरव पाकर चेटी जाग उठी। साड़ी सँभालकर यशोधरा से बोली, "स्वामिनी! आप इतना अधिक उद्विग्न क्यों हैं?"

"देखती नहीं हो? पतिदेव की शय्या सूनी है। सारा कक्ष खाने को दौड़ रहा है। चलो? बाहर देखें? छन्दक और कंथक कहाँ हैं?"

"देवि! आप राहुल को सँभालें? मैं छन्दक और कंथक का पता लगाकर वापस आती हूँ।"

"ठीक है। शीघ्रता करो।"

चेटी ने सारा द्वार छान मारा। छन्दक का पता नहीं चला। घबड़ाकर वह अश्वशाला में गई पर वहाँ कंथक भी अपने स्थान पर नहीं मिला। निराश होकर मुँह लटकाए वह यशोधरा के पास आई। उसे उदास देखकर यशोधरा का मन शंका से भर गया। फिर भी साहस बटोरकर उसने पूछा, "क्या राजकुमार का कोई पता चला?"

"नहीं देवि। छन्दक भी गायब है और कंथक भी।"

"जो होना था हो गया। मेरी शंका सत्यसिद्ध हुई। अमृत की खोज में वह साधना और ध्यान-पथ की ओर अग्रसर हो गए।"

यशोधरा प्रत्युत्पन्न मति, धैर्यशील, पतिपरायणा तथा धर्मात्मा थी पर पति-वियोग ने उसके संयम को तोड़ दिया। राहुल को एक विश्वस्त परिचरी को देकर दहाड़ मारकर रोने लगी। स्वामिनी को रोते देखकर सारा अन्तःपुर शोकाकुल हो गया। सभी की आँखें अश्रुपूर्ण एवं रुदनपूर्ण थीं। सर्वत्र विलाप ही विलाप था।

एक चतुर चेटी सुमुखी से रहा न गया। वह दौड़ती हुई शुद्धोधन के महल में पहुँच गई और उनके शयन-कक्ष के दरवाजे की साँकल खटखटाने लगी। साँकल बजने की आवाज सुनकर महाप्रजापति और शुद्धोधन दोनों साथ-साथ दरवाजा खोलकर बाहर आ गए। सामने दासी को देखकर उनका कलेजा धक-धक करने लगा। कंपित स्वर से शुद्धोधन बोले, "सुमुखी! क्या बात है?"

"राजन्! आश्चर्य है। आश्चर्य है। राजकुमार सिद्धार्थ न तो कहीं दिखलाई पड़ते हैं और न ही छन्दक और कंथक। सिद्धार्थ के वियोग में यशोधरा छाती पीट-पीटकर रो रही है।"

पुत्र-पलायन का समाचार सुनकर महाप्रजापति मूर्छित होकर गिर पड़ी।

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

महाराज ने मुँह पर पानी छिड़कर उन्हें होश में लाये और धैर्य बँधाकर बोले, "चलो, चलें यशोधरा के पास?"

ससुर को देखकर यशोधरा उनके पास आई और करुणाद्र स्वर में बोली, "पिताजी! आपकी धरोहर तथा उत्तराधिकारी अतिमाभ (सिद्धार्थ) को मैं अपने प्रेम-पाश में बाँधे रख नहीं पाई। इस असावधानी के लिए क्षमा करें।"

"बहू! घबराने की बात नहीं है। घूम-घामकर वापस आ जाएगा।"

धीरे-धीरे सिद्धार्थ के गृह-त्याग का समाचार दावाग्नि के समान सारे नगर में व्याप गया। सिद्धार्थ के वियोग में सारे पुरवासी शोक-संतप्त हो गये। पर, प्रत्येक व्यक्ति के मन में यह आशा अवश्य थी कि छन्दक अपने स्वामी को कंथक की पीठ पर बैठाकर अवश्य लौटेगा। सबके मुख से केवल यही वाक्य निकल रहा था कि "हमारा भाग्य खोटा था। इसलिये हमारा भावी नरेश देश छोड़कर चला गया।"

सायंकाल छन्दक कंथक की लगाम पकड़े कपिलवस्तु लौट आया पर घोड़े की पीठ खाली थी। हाँ, छन्दक के हाथ में राजकुमार के राजसी परिधान और अलंकार अवश्य थे। सबकी आशा का बाँध टूट गया। सभी लोग जमीन पर लोट-लोटकर, तड़पते हुए कहने लगे, "राजकुमार! हम लोगों से क्या अपराध हुआ कि आपने हमें ठुकरा दिया।" राजकुमार के वियोग में सारे नगरवासी तड़पने लगे।

जब महाराज शुद्धोधन के सामने छंदक कंथक को लेकर खाली हाथ वापस आ गया तो पुत्र-वियोग में वह अपने आपको संभाल न सके। रो-रोकर कहने लगे, "पुत्र! मैंने तुम्हारे सुख और भोग के लिए कोई कोर-कसर नहीं की। पर तुम अपनी लगन, निष्ठा और अपने संकल्प के पक्के निकले। तुमने पत्नी, पुत्र, परिवार तथा राज-लिप्सा को पलभर में त्याग दिया। तुम्हारे वियोग में मैं दुखाग्नि में जलता रहूँगा।"

महाप्रजापति भी कातर हो उठी। उसने सच्चे हृदय से सिद्धार्थ को पाला-पोसा था। सिद्धार्थ के मार्ग की कठिनाइयों का अनुमान लगाकर वह फूट-फूटकर रोने लगी। वह अपने अन्तःकरण के दुःख को प्रकट करती हुई अन्तःपुर की चेटियों से कहती है, "राजकुमार के मार्ग में घने जंगल हैं, कहीं-कहीं कँटीली झाड़ियाँ हैं और कहीं-कहीं नदी-नाले हैं। बीहड़ वनों में हिंसक जीवों की भरमार है। बियाबान जंगलों में मेरे भोले-भाले और निहत्थे पुत्र की रक्षा कौन करेगा?"

यशोधरा अपनी सासु को ढाढ़स बँधाते हुए कहती है, "माताजी! धैर्य और संयम से काम लें। आर्यपुत्र 'अमृत कलश' की खोज में गए हैं। वह 'स्व' एवं 'पर' की भावना से ऊपर उठ गए हैं। 'स्व' कल्याण के साथ मानव-जाति का कल्याण उनके इस जन्म का श्रेय-प्रेय है।"

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

सासु के द्वन्द्व को शान्त करने के बाद वह ससुर से कहती है, "पिताजी! जहाँ संयोग है वहाँ निश्चित रूप से वियोग आता है। गाड़ी के पहिए के समान सुख-दुःख, जन्म-मृत्यु, यश-अपयश, उत्थान-पतन, स्वस्थता-अस्वस्थता, सफलता-असफलता, दिन-रात, उषा-सायं, लाभ-हानि, मिलन-बिछुड़न का क्रम चलता रहता है।"

"बहू! सिद्धार्थ के अभाव में सारा धन-दौलत, राज-पाठ, संसार सूना-सूना लगता है। हृदय विदीर्ण हो रहा है। धैर्य कैसे धारण करूँ?"

"तात! उनकी अभीष्ट-प्राप्ति की कामना करें। लक्ष्य सिद्ध होने के बाद आपका दर्शन करने वह अवश्य आयेंगे। अतः आप धैर्य धारण कर उनके आगमन की प्रतीक्षा करें।"

"बहू! सारे परिवार के साथ चलो, उसे खोज लाएँ?"

"नहीं, पिताजी! उनके सत्यान्वेषण के मार्ग में मैं भूलकर भी बाधा उपस्थित नहीं कर सकती। उन्हें सहज ज्ञान का प्रकाश प्राप्त हो चुका है।"

"बहू! तुम कितनी कठोर हो?"

"पिताजी! मैं सच्चे धर्म का पालन कर रही हूँ।"

"बहू! तुम पतिपरायणा ही नहीं अपितु सती एवं पतिव्रता हो। अतः तन-मन से उसकी तपस्या में बाधक नहीं बनना चाहती है। तुम्हारी यह तपस्या सिद्धार्थ की तपस्या से रंचमात्र भी कम नहीं है।"

शुद्धोधन को उसने शालीनतापूर्वक सांत्वना दी पर उसके हृदय सागर में उद्वेलित होने वाली उद्वेग की उत्तुंग लहरों को कैसे शान्त करे?

अचानक उसके मन में शृंगार, आभूषण एवं रेशमी परिधानों के प्रति घोर वितृष्णा का भाव उत्पन्न हुआ। वह सोचने लगी, "जब स्वामी ने राजसी वेशभूषा को त्याग दिया है तो मुझे काली नागिन-से बालों और अलंकारों की क्या आवश्यकता है? ये सब तो उन्हें रिझाने और आकर्षित करने के लिए थे।"

वह अपनी सेविका को अपनी सहेली कहने लगी। उसके समता भाव से दासी प्रसन्न हो गई और अपनी स्वामिनी के लिए जान न्यौछावर करने के लिए तैयार रहती थी। उसने उससे प्रार्थना की, "प्रिय सखी! कैंची लाओ। चेटी ने अविलम्ब उसकी आज्ञा का पालन किया। कैंची उसकी ओर बढ़ाती हुई बोली, "स्वामिनी! यह रही कैंची।"

यशोधरा ने कैंची से चोटी से लेकर एड़ी तक लटकते हुए भौंरों से काले-काले बालों को काटकर अलग रख दिया। रेशमी परिधानों एवं रत्न-जटित आभूषण को त्याग दिया। पतिदेव की तरह काषाय वसन धारण कर लिया। अब

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

सौभाग्य का निशान रह गया--सिंदूर-बिन्दु और रह गईं हाथ की चूड़ियाँ। त्याग से उसका सारा बदन महिमा मंडित हो गया।

वह अपनी सहेली से बोली, "सखी! ध्यान से देखो? मेरा संन्यासिनी रूप कितना अच्छा लग रहा है!"

"स्वामिनी! परिवर्तन सदैव अच्छा लगता है। अतीत और भविष्यत् की जगह अब आप अपने वर्तमान पर ही ध्यान केन्द्रित करें।"

"अब अपने आनन्ददायक भविष्य को संपूर्ण रूप से भूल चुकी हूँ। अब मेरे लिए वर्तमान ही सब कुछ है।"

"स्वामिनी! आप तो रो रही हैं?"

"कैसे आँखों से प्रवहमान अश्रु-धारा को रोकूँ। मेरे भाग्य में रोना-रोना लिखा है। पूर्व-जन्म में जैसा कर्म किया है वैसा फल मुझे इस जन्म में मिला है।"

"स्वामिनी! समाज पुरुष प्रधान है। नारी उसकी फिरकी है। पुरुष जैसे चाहे उसे नचाए। झख मारकर उसे पुरुष के आदेशानुसार नाचना ही पड़ेगा।"

"सखी। तुम्हारे उद्‌बोधन को मैं दाद देती हूँ। मैं अबला हूँ। सिद्धार्थ वीर तथा प्रज्ञा पुरुष हैं। मैं तो उन्हें अपने हावों-भावों और विषय-वासनाओं में आजीवन अनुरक्त रखना चाहती थी पर वह विषयाकुल न बन सके।

"स्वामिनी! साधु-संत तथा वैरागी नारी को माया कहकर सिद्धि-मार्ग में बाधक मानते हैं।"

"तुम्हारा कहना सही है। स्वामी ने भव-बाधाओं से मुक्ति पाने के लिए मुझे और लाड़ले पुत्र को त्यागा है। सत्य की खोज के लिए त्यागा है। यह बड़प्पन और गौरव की बात है पर वह मुझे बिना बताए चले गए, इसका मुझे गहरा क्षोभ है। यदि वह सच्चे दिल से मुझे अपने लक्ष्य और अभीष्ट से अवगत कराते तो मैं उनके सिद्धि मार्ग में आड़े न होती।"

"स्वामिनी! यह राजकुमार की भूल है।"

"सखी! पुरुष नारी से नहीं अपितु उसके रूप-लावण्य से प्यार करता है। यदि वह नारी के अन्तर्तम को सच्चे हृदय से ज़ानता तो उसकी उपेक्षा न करता। प्यार दिल से होना चाहिए, शरीर से नहीं।"

"स्वामिनी। सिद्धार्थ ने आपसे प्रेम तो अवश्य किया पर आपने को पहचाना नहीं।"

"तुम्हारा कहना सच है। सारा इतिहास क्षत्राणियों के त्याग एवं आत्मोत्सर्ग से भरा पड़ा है। जब जब देश पर विदेशी आततताइयों एवं राजाओं का आक्रमण

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

हुआ है, क्षत्रियों की बहुओं एवं बेटियों ने अपने वीर पतियों के ललाट पर तिलक लगाकर उनकी आरती करके रणस्थल में भेजा है। पर, मैं तो बड़ी अभागिन हूँ। मुझे वह अवसर भी नहीं मिला।"

"स्वामिनी! राजकुमार का हृदय नवनीत की तरह कोमल है। वह करुणा के सागर हैं। यदि वह अपने 'महाभिनिष्क्रमण' की बात आपको बताते तो आपकी आँखों में आँसुओं का सैलाब उमड़ पड़ता। आपकी आँसुओं को देखकर वह ऊहा-पोह में पड़ जाते। वह निष्ठुर नहीं हैं। गये अवश्य पर तरस खाते-खाते गए।"

"प्यारी सखी! मैं उन्हें उलाहना नहीं दे सकती। उन्होंने आत्मिक अभ्युदय के लिए सर्वस्व त्यागा है। उन्हें सम्पूर्ण सिद्धि मिले, यही मेरी हार्दिक कामना है।"

"स्वामिनी! आपकी सोच बिल्कुल सही है। वह नये सत्य की खोजकर संसार में मध्यम मार्ग की प्रतिष्ठा करेंगे।"

"सखी! जब उन्हें अनुपम सिद्धि प्राप्त हो जाएगी तो एक न एक दिन अवश्य कपिलवस्तु पधारकर सबका कल्याण करेंगे।"

"भगवान आपकी मनोकामना पूरी करें।"

तपस्या

श्रमण सिद्धार्थ सत्यनिष्ठ, संकल्पशील एवं सत्यान्वेषी थे। अतः उन्होंने आचार्य अराड-कलाम तथा आचार्य उद्रक रामपुत्र द्वारा निर्देशित ध्यान मार्ग की पद्धतियों का लगन और निष्ठा के साथ अभ्यास किया। योग-मार्ग के अंतिम अंग 'समाधि' का भी दत्तचित्त उन्होंने अभ्यास किया। इस ध्यान-प्रक्रिया से उन्हें इस सत्य का ज्ञान हो गया कि योग मार्ग की साधना लौकिक समाधि है और इसका सम्बन्ध काम, रूप तथा अरूप भूमियों की मन की एकाग्रता से है। मन की एकाग्रता ही समाधि है। 'लौकिक समाधि' में मन की जो एकाग्रता होती है वह दोषरहित होती है और उसका विपाक सुखमय और आनन्ददायक होता है। लौकिक समाधि मार्ग को 'शमथ-यान' भी कहा जाता है। शमथ (शम्‌अथच्) के योग से बना है। इसका अर्थ होता है—मानसिक शान्ति। मन की एकाग्रता से ही मानसिक शान्ति प्राप्त होती है। लौकिक समाधि में मन के विकारों एवं उद्वेगों का शमन होता है। मन की चंचलता दूर हो जाने से मानसिक शान्ति तो अवश्य मिलती है पर 'परम सत्य' का पूर्ण बोध नहीं होता है।

लौकिक समाधि में साधक का मन कुछ सीमा तक निर्मल, शुद्ध, पवित्र तथा द्वन्द्व-रहित अवश्य हो जाता है पर मनुष्य के अन्तर्चित में कई जन्मों का संचित

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

कर्म की कषाय-क्लेश की जो जड़ कुण्डली मारकर बैठी हुई है उसका कुछ अंश शेष रह जाता है। अतः जब तक कषाय-क्लेष समूल नष्ट नहीं हो जाता तब सही अर्थों में मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता है।

लौकिक समाधि में साधक भवाग्र (संसार का अंतिम छोर) ब्रह्मलोक का अधिकारी तो हो जाता है पर भावातीत निर्वाण (मोक्ष) की अवस्था को प्राप्त नहीं कर पाता। लौकिक समाधि में साधक इन्द्रियातीत अनुभूतियों को प्राप्त कर अलौकिक ऋद्धियों एवं सिद्धियों को पाने में सफल हो जाता है पर अन्तिम सत्य तथा परमशान्ति उसके लिए मृगमरीचिका ही रह जाती है।

श्रमण गौतम को लौकिक समाधि का भव चक्र, लोक-चक्र तथा दुःख-चक्र से मुक्ति दिलाने में असमर्थ और अयोग्य प्रतीत हुआ। अतः उन्होंने यौगिक ध्यान-प्रक्रिया को त्याग दिया।

श्रमण गौतम के समय नैष्ठिक-पद की प्राप्ति के लिए तप आवश्यक माना जाता था अतः उन्होंने कठोर तप करने का निर्णय किया। मन ही मन उन्होंने विचार किया कि मुझमें श्रद्धा है, वीर्य है, स्मृति है, समाधि है, प्रज्ञा है। अतः कठोर तपस्या कर मैं धर्म का साक्षात्कार अवश्य कर लूँगा।

तपस्या का दृढ़ निश्चय कर वह वैशाली से मगध की ओर चल पड़े।

उरुवेला नेरंजना (फाल्गी)

बुद्ध-काल में नैष्ठिक-पद को प्राप्त करने के लिए 'तपस्या' को बहुत बड़ा उपयुक्त मार्ग माना जाता था। तपस्या करने के लिए एकांत, शांतिमय, रम्य वनस्थली, छायादार वृक्ष, शीतल, मंद समीर तथा स्नान एवं पीने के लिए शीतल, स्वच्छ एवं पवित्र जल की आवश्यकता होती है। अतः वह दृढ़ निश्चय करके तपस्या के लिए उचित स्थान की खोज में चल पड़े।

रास्ते में श्रमण गौतम को पाँच पंचभद्रवर्गीय ब्रह्मचारी मिले। वे श्रमण गौतम के अलौकिक आभामय ललाट एवं आकर्षक व्यक्तित्व को देखकर बहुत अधिक प्रभावित हुए और बोले, "श्रमण परिव्राजक कहाँ जा रहे हो?"

"तपस्वी ब्रह्मचारियो। मैं घोर तपस्या करके जीवन-मरण से मुक्ति प्राप्ति का आकाँक्षी है। उसके उपयुक्त स्थान की खोज में जा रहा है।"

"तब तो हम पाँचों तथा आप सहयात्री हैं। चलिए उरुवेला चलें?"

"यह स्थान कहाँ है?"

"गया के पास। नेरंजना नदी के तट पर।"

श्रमण गौतम पाँचों ब्रह्मचारियों के साथ चल पड़े। इन छः तपस्वियों के

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

दर्शन के लिए आदिवासी पुरुष और नारी, बालक एवं बालिकाएँ जगह-जगह पर हाथ जोड़कर खड़े हो जाते थे। जब वे उरुवेला के वन में पहुँचे तो आदिवासियों का मुखिया कुछ युवकों के साथ श्रवण गौतम के सामने जमीन पर लोटकर प्रणाम करने लगा। करुणा के सागर श्रमण गौतम ने उसे गले लगा लिया। आदिवासियों के मुखिया ने हाथ जोड़कर कहा, "महात्मन्! आप लोग भूखे हैं और बहुत अधिक थक गए हैं। क्या आप लोग मुझ अकिंचन का आतिथ्य स्वीकार करेंगे?"

"क्यों नहीं? चलिए सर्वप्रथम तपस्या के लिए उपयुक्त स्थान बताइए। वहीं पर आप जो कुछ खिलायेंगे, हम लोग स्वीकार कर उसका आस्वादन करेंगे।"

"चलिए?" आगे-आगे भीलराज और पीछे-पीछे छओ तपस्वी। उरुवेला के घने जंगल में नेरंजना के तट पर जाकर वह रुक गया और श्रमण तपस्वी गौतम से बोला, "यह है नेरंजना नदी। देखिए यह कितनी निभ्रान्त स्थान है। जरा नदी के नीर पर गौर करें?"

श्रमण तपस्वी गौतम बोले, "कितना रम्य, शान्त एवं शीतल, मन्द, सुरभिमय परिवेश है! नदी का पानी परदर्शी, स्वच्छ, पवित्र एवं शीतल है।"

"तो आप लोग स्नान-ध्यान, पूजा-आराधना कर लीजिए। तब तक मैं आप लोगों के लिए भोजन की व्यवस्था करता हूँ।"

सभी तपस्वी नेरंजना नदी के जल में घुस पड़े। नहा-धोकर जब बाहर निकले तब एक पीपल के पेड़ के नीचे पत्तों पर सजे हुए कन्द, मूल, आम, अंकुर तथा मिट्टी के पुरवे में शहद का रस देखे। बैठने के लिए छः आसनियाँ भी बिछी हुई थीं।

हाथ जोड़कर भीलराज ने कहा, "तपस्वियो! आसन ग्रहण कर सुस्वादु पदार्थों का आस्वादन करें।"

"धन्यवाद।" कहकर तपस्वी खाद्य पदार्थों से अपनी रसना को संतुष्ट करने लगे।

उरुवेला में नेरंजना नदी के तटप्रदेश में श्रमण गौतम पंचभद्रीय तपस्वियों के साथ तपस्या-रत हो गए। उस समय उन्हें पक्का विश्वास था कि सभी कामनाओं से मुक्त होकर जब मैं कठिन तपस्या में सफल हो जाऊँगा तो मेरा अन्तर्मन प्रकाशमय हो जाएगा और मुझे आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक इन त्रिविध दुःखों से छुटकारा मिल जाएगा। तपस्योपरान्त मुझे नैष्ठिक पद की प्राप्ति भी हो जाएगी और धर्म का साक्षात्कार भी हो जाएगा।

शरीर को कष्ट देने तथा भोग-लोलुप इन्द्रियों पर लगाम लगाकर उन्होंने व्रत, उपवास करना प्रारम्भ कर दिया। अनशन के पीछे उनका मूल लक्ष्य यही था

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

कि जन्म-जन्मान्तर के कर्म-क्लेश धुल जाएंगे और जन्म-मरण से मोक्ष मिल जाएगा।

सात्विक जीवन बिताने के लिए कुछ दिन तो फलाहार पर रहे। प्रकृति के सुनसान खुले प्राँगण में क्रमशः जाड़े, गर्मी और वर्षा के समय शरीर को अनेक यातनाएँ देते रहे। सदैव उनके मन में यही विचार गरुड़ की तरह मँड़राता रहा कि शारीरिक-ताड़ना से पूर्वजन्म, बचपन तथा जवानी में किए गए बुरे कर्मों के कारण चित्त में जो मैल संगृहीत एवं संचित हैं, वे जड़ से नष्ट हो जाएँगे। मन गंगा की तरह निर्मल एवं पवित्र हो जाएगा।

एक-दो वर्ष शीतकाल में पछुवाँ के भयंकर झोंकों, तूफान और बर्फफात को दृढ़ता के साथ सहते रहे। घोर ठंडक से शरीर थर-थर काँपता था। रोंगटे खड़े हो जाते थे। दाँत बजने लगते थे। अंग-प्रत्यंग में रक्त-प्रवाह रुक-रुक जाता था। बेचारे आदिवासी तपस्वियों की भयंकर तपस्या देखकर दाँतों तले अँगुली दबाते थे। हिंसक जीव उन पर आक्रमण न कर दें, इसलिए वे उनकी रक्षा के लिए थोड़ी दूर रहकर रात-दिन पहरा दिया करते थे। कितनी करुणा एवं सद्भावना थी आदिवासियों के मन में!

ग्रीष्म-काल में दोपहर के समय जब चिलचिलाती धूप में धरती तवे के समान जलने लगती थी तब तपस्वी नंगे पैर जमीन पर खड़े होकर तपते रहते थे। रात-दिन बियाबान मैदानों में रहते थे। मच्छर चाहे खून चूसे या भिनभिनाएँ, इसकी चिन्ता उन्हें कहाँ थी।

वर्षाकाल में जब मेघों के बीच से बिजली कौंधती और जोर-जोर से कड़कती थी तब भी वे खुले मैदान को छोड़कर वृक्ष तले नहीं जाते थे। भीग-भीगकर वे थर-थर काँपते रहते थे। सारे शारीरिक कष्टों को मुक्ति की आशा में वे सहते रहते थे। परम सत्य की प्राप्ति की आशा में वे सारे प्राकृतिक प्रकोपों को दृढ़तापूर्वक सहन कर लेते थे। फलाहार के बाद कुछ दिन तिल-तांडुल पर बिताए पर अन्त में सभी तपस्वी निराहार रहने लगे।

कुछ समय तक वे केवल नेरंजना नदी के पावन जल को पीकर तपस्या करते रहे। उसके बाद पानी पीना भी बन्द कर दिये और पवन-पान करते रहे। जब उपवास की इस चरम तपस्या से भी सत्य-बोध न हुआ तो वे प्रातःकालीन एवं सायंकालीन सूर्य-किरणों का निरीक्षण कर ऊर्जा ग्रहण करते रहे। इस प्रकार अनशन, व्रत, शीतकाल, ग्रीष्मकाल एवं वर्षाकाल के तूफानों, झंझावातों, शीत, गर्मी, आर्द्रता, गीलापन, पवन-पान सूर्य किरणों का साक्षात्कार आदि का प्रयोग और अनुभव करते-करते छः वर्ष बीत गए।

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

तपस्वी श्रमण गौतम का शरीर सूखकर काँटा हो गया। अंग-प्रत्यंग में न तो रक्त का अता-पता था और न ही मांस-मज्जा का। चमड़ी सिकुड़ गई थी। उनका कूल्हा सूखकर ऊँट के पैर के समान हो गया था। पीठ के काँटे सुओं की ऊँची-नीची पाँती से लगते थे। पसलियाँ शाल की पुरानी कड़ियों के समान टेढ़ी-मेढ़ी हो गई थीं। उनके सिर की खाल पिचककर वैसे ही मुरझा गई थी जैसे डंठल से तोड़ी हुई लौकी धूप और हवा से सूखकर तूम्बा हो जाती है। जिस प्रकार गहरे कुएँ में तारा दिखाई देता है वैसे ही उनकी आँखें हो गई थीं। पीठ के काँटे और पैर की खाल सट गई थी। उनका सारा रूप-सौष्ठव लुप्त हो गया था। थे तो पैंतीस वर्ष के पर अस्सी वर्ष के लगते थे। सारा शरीर पंजरों का पिंजरा-सा लगता था।

शारीरिक क्षीणता के कारण उठना भी भारी हो गया था। पेशाब और मल-त्याग के लिए जब उठते तो भहरा कर गिर पड़ते थे। वे जब अपने शरीर को हाथ से सहलाते हुए मसलते तो सड़ी-गली जड़ वाले रोम पतझड़ में पत्तों के समान अपने-आप झड़ जाते थे। धूप-सेवन से गोरा रंग काला हो गया था। सहारे के बिना उठ-बैठ नहीं सकते थे।

श्रमण गौतम की तपोभूमि के चारों ओर धीवर, शबर, कोलभील और निषाद रहते थे। एक दिन सरकते-सरकते तपस्वी गौतम नेरंजना नदी के तट पर चले गए। घुटनेभर पानी में नहाने लगे। शरीर इतना क्षीण हो गया था कि जब खड़े होने की कोशिश करते तो लड़खड़ाकर गिर पड़ते थे। बाहर निकलना कठिन हो गया। पानी में ऊपर-नीचे जाने लगे। अचानक निषादराज और धीवरों की निगाह उन पर पड़ गई। झटपट वे नदी में कूद पड़े। दो लोग हाथ पकड़े, दो लोग पैर और दो हाथों से पीठ को सहारा देकर तपस्वी गौतम को बाहर निकाले। चीवर का पता ही नहीं था, कहाँ बह गया।

निषादराज ने पत्नी श्रद्धा को पुकारा। पति की आपातकालिक आवाज सुनकर वह अपनी झोंपड़ी से बाहर आकर बोली, "मालिक। क्या आज्ञा है?"

"श्रद्धा! मैंने कल जो गेरुए रंग की धोती खरीदी है, उससे चीवर सीकर शीघ्र दे दो?"

"अच्छा।" कहकर चीवर तैयार कर आँख बन्द कर उसने पति के हाथों पर रख दिया।

चीवर लेकर निषादराज साष्टांग प्रणाम कर बोला, "तपस्वी महाराज। यह घाट है। यहाँ से लोग नदी पार करते हैं। यहाँ नंगा रहना सामाजिक अपराध माना जाता है। अतः आप यह चीवर स्वीकार करें।"

"लाओ? निषादराज।" उन्होंने अपने हाथ में चीवर ग्रहण कर अपने शरीर

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

पर धारण कर लिया।

एक दिन गया से कुछ महिलाएँ उरुवेला आईं। जैसे ही नदी पार किया उनकी निगाह तपस्वी पर पड़ गई। क्षीणकाय शरीर देखकर उनका हृदय-सागर करुणा से उमड़ पड़ा। अश्रुपात करती हुई गीत गाने लगी—

हे तपस्वी!
लघु नहीं, महामानव हो
सुन सको तो सुनो
यह काया देवों की धरोहर है
इसे स्वार्थ नहीं, परमार्थ के लिए पाए हो।
उपवास और तप त्यागो
शरीर-ताड़ना से कुछ नहीं पाओगे
काल और ज्वार
किसी की प्रतीक्षा नहीं करता है।
वीणा के तारों को
ढीला मत छोड़ो
ढीला छोड़ देने से
मधुर स्वर विरम जाएगा।
अभी समय है
एक बात और सुनो
तारों को इतना मत कसो
कि वे टूटकर बिखर जाएँ।

जैसे ही स्वरों का उतार-चढ़ाव उनके कानों में पड़ा, उन्हें आत्मबोध हो गया। 'अन्नमयो प्राणः' कहकर वह भूख-भूख की रट लगाने लगे। निषादराज आतिथ्य प्रिय था। उसकी पत्नी श्रद्धा मेहमानवाजी की कला में माहिर थी। तुरन्त उसने पत्तल पर चावल, दोने में दाल और एक कटोरा सजाव दही लाकर श्रमण गौतम के सामने परस दिया।

हाथ जोड़कर बोली, "तपस्वी जी! सामने घड़े में स्वच्छ पानी है। शीघ्र हाथ-पैर धोकर आसन ग्रहण कर भोजन करें?"

'तथास्तु' कहकर विभुक्षु गौतम हाथ-पैर धोए और आसन पर बैठकर भोजन करने लगे। भोजन उन्हें अमृतोपम लगा।

जब भोजन समाप्त हो गया तो निषादराज ने एक बड़े पुरवे में शहद का रस उनके सामने रख दिया। हाथ जोड़कर बोला, "तपस्वी जी। शहद के रस का पान

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

कीजिए। तुरन्त ऊर्जस्वान हो जाएँगे।" तपस्वी गौतम श्रद्धालु निषादराज की प्रार्थना को अस्वीकार न कर सके।

भद्रवर्गीय तपस्वियों को श्रमण गौतम का आचरण अच्छा न लगा। उनका पारा चढ़ गया। समवेत स्वर में बोले, "श्रमण गौतम! तुम पथभ्रष्ट हो गए। तुम्हारी तपस्या भंग हो गई।"

"तपस्वियो! संसार में दो महापातक हैं।"

"कौन से?"

"पहला भोग-विलास और काम-सुख में लिप्त होना।"

"और दूसरा?"

"शरीर को यातना या पीड़ा देना। संसार की ये दो अतियाँ हैं। भोग करना और शरीर को कष्ट देकर कठोर तपस्या करके सुखाना—ये दोनों मार्ग जीवन की दो अतियाँ हैं। इसलिए मैंने इन दोनों मार्गों का अच्छी तरह अनुभव कर परित्याग कर दिया है। "अति सर्वत्र व्रजयेत।"

"श्रमण गौतम! आप किस मार्ग अन्वेषण करने जा रहे हैं।"

"मध्यम मार्ग का।"

तपस्वी बोला, "श्रमण गौतम। आप स्वतंत्र हैं। जो चाहें, करें। हम आपको तपस्याच्युत एवं पथभ्रष्ट समझकर परित्याग कर रहे हैं।"

तपस्या त्यागने के बाद श्रमण गौतम चावल, दाल, दही, फल आदि खाने लगे। परिणामतः कुछ ही दिनों में तन-मन से पूर्ण स्वस्थ हो गए। नियमित आहार-विहार कर वह योग-सिद्धि की ओर उन्मुख हुए। ग्रामीण महिलाओं ने आपस में विचार-विमर्श करके उनके लिए जलपान और दोनों समय के भोजन का समुचित प्रबन्ध कर दिया। क्रम से गृहस्थों ने अपनी-अपनी बारी निश्चित कर ली। अतः प्रतिदिन उन्हें संतुलित भोजन मिलने लगा।

एक दिन वह एकान्त देखकर ध्यान-मग्न हो गए। उनके अचेतन स्मृति में बचपन के ध्यान की एक संक्षिप्त घटना संचित थी। बाल्यकाल में उन्होंने जो जामुन के पेड़ के नीचे बैठे-बैठे प्रथम ध्यान किया था, उसकी याद आ गई। उन्होंने सोचा शायद वह मार्ग आत्मज्ञान का द्वार खोल दे। अतः उन्होंने ध्यान-मार्ग के अभ्यास का निश्चय किया।

सुजाता की खीर

अनुभव मनुष्य का सबसे बड़ा गुरु है। कई वर्षों की कठिन तपस्या के बाद श्रमण गौतम को यह आत्मबोध हुआ कि पूर्ण शान्ति एवं मन की एकाग्रता के लिए शरीर

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

का स्वस्थ रहना आवश्यक है। कई दिनों तक सात्विक एवं पौष्टिक भोजन प्राप्त करने के बाद जब वह स्वस्थ हो गये तो एकांत एवं शांतिमय स्थान की खोज में जुट गए। सौभाग्य से नेरंजना नदी के तट पर एक छायादार एवं विशाल वटवृक्ष मिल ही गया। वटवृक्ष की जड़ के पास एक समतल एवं स्वच्छ स्थान देखकर पद्मासन लगाकर बैठ गए। इस अवस्था में उन्हें देखकर ऐसा लगता था कि वे अलौकिक एवं दिव्यशक्ति हैं।

उरुवेला वनस्थली में एक गाँव था। नाम था—'सेनाग्राम।' उस गाँव में एक गृहस्वामी था जिसका नाम सेनानी था। उसकी सुपुत्री सुजाता बचपन से ही वृक्षों, देवताओं तथा ईश्वर की श्रद्धापूर्वक पूजा-पाठ एवं आरती करती थी।

जिस वटवृक्ष की छाया तले श्रमण सिद्धार्थ ध्यानस्थ बैठे हुए थे, उसकी वह बचपन से पूजा किया करती थी। उसकी सच्ची भक्ति ने उसके भाग्य का द्वार उन्मुक्त कर दिया। पन्द्रह वर्ष की अवस्था में उसका पाणिग्रहण-संस्कार वाराणसी के एक धनाढ्य व्यापारी के पुत्र के साथ हो गया। परिणामतः वट-देवता के प्रति उसकी भक्ति और श्रद्धा और प्रगाढ़ हो गई।

सौभाग्य से उसकी कोख भी पवित्र हो गई। उसने एक पुत्र को जन्म दिया। उसका कुलदीपक जगमगा उठा। उसका विश्वास और भी पक्का हो गया। वट-देवता के प्रति उसकी आस्था और भी दृढ़ हो गयी।

प्रत्येक वर्ष जब वैशाख पूर्णिमा का दिन सन्निकट आता था तो वह सास-ससुर से आज्ञा लेकर 'सेना' ग्राम चली जाया करती थी। अपने इष्ट देवता वट की पूजा-अर्चना एवं आरती करने के बाद सुस्वादु खीर चढ़ाया करती थी।

वैशाख पूर्णिमा का दिन निकट आने पर वह अपने पिता के घर गई। मुनक्का, बादाम, गरी, छुहारा, इलायची, काजू आदि सूखे मेवे डालकर उसने उत्तम खीर तैयार की। पुण्णा नाम की उसकी दासी थी। मालकिन की आज्ञा से वह वट-वृक्ष तले प्राँगण की सफाई करने के लिए पूज्य वट के पास गई। वहाँ पहुँचकर उसने जब वहाँ पर आभामंडित ललाट एवं गौरांग बदन महापुरुष को आसनासीन देखा तो उसके हर्ष एवं उल्लास की सीमा न रही। विचारमग्न होकर वह परिकल्पना करने लगी, "आज वटदेव ने मालकिन पर अनुग्रह कर स्वयं साकार रूप धारण कर लिया है।" वटदेव को साष्टांग प्रणामकर उसने वहाँ की जमीन को लीप-पोतकर चमका दिया।

घर वापस आकर सुजाता से कहने लगी, "देवि! आज तो अनुपम दृश्य उपस्थित हो गया है।"

"साफ-साफ बता?"

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

"आप पर महती कृपा कर वटदेव साकार रूप में प्रकट होकर ध्यान-मग्न बैठे हुए हैं।"

"तुम सुखी रहो। खीर का स्वर्ण पात्र सँभालो।"

दासी को साथ लेकर वह नेरंजना नदी के तट पर गई और नहा-धोकर हाथ में ख़ीर से भरा स्वर्णपात्र लेकर वटदेव के पास गई। साष्टांग प्रणाम कर बोली, "हे प्रभु! आप दीन-दयालु हैं। इस अकिंचन पर आपने महती कृपा की है। यह खीर भरा स्वर्णपात्र ग्रहण करें?"

"साधु, साधु, साधु" कहकर गौतम ने खीर-पात्र हाथ से ग्रहण कर लिया।

सुजाता गौतम के औदार्य को देखकर गद्‌गद हो गई। भक्ति की जगह उसके हृदय में वात्सल्य-भाव उमड़ पड़ा। मंगल कामना व्यक्त करती हुई बोली, "हे देव। आप जिस अभीष्ट को पूरा करने के लिये ध्यान लगाए हुए हैं, वह अवश्य पूरा हो।"

नेरंजना नदी के तट पर सुपत्तिट्ठ नाम का एक रम्य स्थान था। गौतम खीर लेकर वहाँ पहुँच गए। नहा-धोकर उन्होंने खीर का आस्वादन किया। बड़ी ही स्वादिष्ट और पौष्टिक खीर थी। खाकर वह तरोताजा हो गए।

मन में जिस 'नूतन मार्ग' का अन्वेषण कर उसे व्यावहारिक रूप देने के लिए वह प्रयोग करने जा रहे थे, उसकी सफलता जानने की जिज्ञासा उत्पन्न हुई। अतः नदी-प्रवाह में स्वर्णपात्र फेंककर बोले, "यदि मुझे 'परम सत्य की प्राप्ति होने वाली हो तो यह स्वर्णपात्र ऊपर की ओर प्रवहमान हो, नहीं तो नीचे की ओर।"

संकल्प सच्चा था। हृदय से निकला था। स्वर्णपात्र ऊपर की ओर अर्थात विपरीत दिशा की ओर अग्रसर हुआ और नाग-नरेश काल के भवन के सन्निकट जाकर पानी में डूब गया। उन्हें पक्का विश्वास हो गया कि सफलता अवश्य मिलेगी।

पाँच स्वप्न

बैशाख शुक्ल चतुर्दशी की रात थी। बोधिसत्व सिद्धार्थ वटवृक्ष के नीचे पद्मासन लगाकर ध्यान-मग्न बैठे रहे। ब्राह्म-मुहूर्त में उन्हें नींद आ गई। निद्रावस्था में पाँच स्वप्न देखे। ब्राह्म-मुहूर्त में देखे गए सपने प्रायः सच निकलते हैं। अतः तपस्वी गौतम को महती प्रसन्नता हुई।

प्रथम स्वप्न--स्वप्न से सर्वप्रथम उन्हें यह अद्‌भुत प्राकृतिक दृश्य दिखलाई पड़ा। उनका शरीर धरती पर लेटा हुआ है। नेपाल और भारत की धरती पर उनका रूप विराट होता जा रहा है। हिमालय की उच्चतम चोटी उनकी तकिया बनी हुई है। उनका बायाँ हाथ गंगासागर पर स्थित है और सागर की उत्तुंग लहरें

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

उनके हाथों का अभिषेक कर रही हैं। दक्षिण में हिंद महासागर के तट पर उनके दोनों पैर हैं जिनको सागर की लहरें बार-बार चूमकर आनन्द-विभोर हो रही हैं। यह स्वप्न गौतम के मध्यममार्गीय धर्म के प्रचार-प्रसार का प्रतीक था।

द्वितीय स्वप्न–दूसरे स्वप्न में उन्हें यह दृश्य दिखलाई पड़ा। उनकी नाभि से एक पौध निकलकर उठता हुआ आकाश में पहुँच गया। यह स्वप्न इस बात का द्योतक था कि वह मानव के भी शास्ता बनेंगे और देवताओं के भी। समस्त विश्व का वह कल्याण करेंगे।

तृतीय स्वप्न–तीसरे स्वप्न में उन्होंने देखा कि असंख्य जीव, जिनके सिर काले और रंग सफेद था, उनके पास एकत्र होकर उन्हें साष्टांग प्रणाम कर रहे हैं। यह स्वप्न इस सच्चाई का प्रतीक था कि काले-काले बाल वाले दुखिया सांसारिक मनुष्य धवल वस्त्र धारण कर उनकी शरण में आयेंगे और मोक्ष-प्राप्त करेंगे।

चतुर्थ स्वप्न–चौथा स्वप्न और भी निराला था। उन्होंने देखा कि सभी दिशाओं से असंख्य पक्षी उनकी गोद में आ-आकर बैठ रहे थे। उनमें से कुछ पक्षी नीले थे, कुछ स्वर्णिम, कुछ लाल और कुछ भूरे रंग के। गोद में आसीन होने के बाद वे श्वेतवर्ण में परिवर्तित हो गए। यह दृश्य इस तथ्य का उद्घोषक था कि चारों वर्ण से सम्बद्ध लोग सम्यक् बुद्ध बनकर जन्म-मरण के आवागमन से मुक्त हो जायेंगे।

पंचम अर्थात् अन्तिम स्वप्न–अंतिम स्वप्न में उनके सामने यह दृश्य प्रकट हुआ कि वह मल-मूत्र से दूषित मिट्टी पर भ्रमण कर रहे हैं पर उनके पद कमल बर्फ के समान स्वच्छ, शीतल और पवित्र थे। इस स्वप्न से उन्हें यह आभास हो गया कि भविष्य में सांसारिक बुराइयाँ उनके मार्ग में अवरोधक नहीं बनेंगी।

गया

पाँचों स्वप्नों का विश्लेषण कर तपस्वी गौतम इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि उन्हें 'बोधि' की प्राप्ति अवश्य होगी। दृढ़ संकल्प करके उन्होंने उरुवेला को त्याग कर 'गया' के लिए प्रस्थान किया। पदयात्रा करते-करते वह 'गया' पहुँच गए। वहाँ उन्हें एकान्त जगह में हरा-भरा छायादार अश्वत्थ वृक्ष दिखलाई पड़ा। बड़ा ही शान्त, पवित्र, प्रेरणादायक एवं ध्यानस्थ होने योग्य परिवेश था उसका।

उपयुक्त स्थान देखकर वह उस वृक्ष तले खड़े हो गए। अतिशीघ्र दिव्यपुरुष के आगमन का समाचार वनस्थली एवं आस-पास के गाँवों में पहुँच गया। दर्शनार्थ श्रद्धालुओं की भीड़ एकत्र हो गई।

वन-प्रमुख की अनुभवी आँखों को समझने में देर नहीं लगी कि आगुन्तक

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

ध्यानमग्न होना चाहता है। उसने हाथ जोड़कर पूछा, "तपस्वी! क्या आप यहाँ ध्यान लगाना चाहते हैं?"

"हाँ।"

झटपट उसने फावड़ा लेकर झाड़-फूस काटकर झाड़ू से पीपल के आस-पास की भूमि को साफ कर चमका दिया।

पुनः साथियों के साथ हाथ जोड़कर बोला, "महात्मन्! आप कितनी बार भोजन करेंगे?"

हाथ के संकेत द्वारा तपस्वी गौतम ने उसे बता दिया, "तीन बार।"

उपस्थित जन-समूह को बड़ी प्रसन्नता हुई। वन-प्रमुख ने प्रतिज्ञा करते हुए कहा, "महात्मन्। प्रातःकाल जल-पान में हम आपके लिए अंकुर, फल, कन्द, मूल तथा शहद-रस की व्यवस्था कर देंगे।"

"और दोपहर?"

"महात्मन्! दोपहर को आपको सात्विक एवं स्वादिष्ट भोजन परसा जाएगा। भोजन में आपको दाल, चावल, रोटी, सब्जी और दही आदि की व्यवस्था रहेगी।"

"आप लोगों का मंगल हो।"

"और महात्मा शाम को आपको तपस्वी-भोजन मिलेगा।"

"मतलब?"

"अर्थात् सन्तरा, अनार, लीची, समसामयिक फल और गाय का दूध मिलेगा। हम लोग उचित समय पर आपको जलपान, भोजन एवं फलाहार देते रहेंगे।"

भोले-भाले अनपढ़, शोषित मानवों के औदार्य, श्रद्धा तथा सौजन्य को देखकर गौतम अभिभूत हो गए। अपने हार्दिक उद्‌गार को वह रोक न सके। बोले, "आप लोगों का कल्याण हो।"

शरीर को ऊर्जा प्रदान करने वाले भोजन की व्यवस्था हो जाने पर वह पूर्ण रूप से निश्चिन्त हो गए। जम्बूदीप में ही नहीं, सारे भारतवर्ष में पूजा-उपासना और ध्यान लगाने के लिए पूर्व दिशा उत्तम मानी जाती रही है। सूर्य की प्रथम किरण का दर्शन सर्वप्रथम पूर्व में ही होता है। अतः पूर्व जन्मों के संगृहीत चित के मलों अर्थात् क्लेशों के उन्मूलन के लिए अश्वत्थ के तले पूर्व की ओर मुँह करके पद्मासन लगाकर वह बैठ गए।

ध्यान लगाने के पूर्व उन्होंने दृढ़ प्रतिज्ञा की, "चाहे मेरी काया सूख जाए, चाहे मेरा हाड़-मांस, त्वचा, रक्त सब कुछ विनष्ट हो जाये, मैं तब तक इस आसन पर ध्रुवतारे के समान अचल रहूँगा जब तक मुझे सम्यक् 'बोधि' प्राप्त नहीं हो जाती।"

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

काल और स्वर्णप्रभा

गया में अश्वत्थ वृक्ष के सन्निकट ही नागराज काल और उसकी पत्नी स्वर्णप्रभा का निवास था। काल बड़ा ही तेजस्वी एवं भविष्यज्ञाता था। पति-पत्नी दोनों की निगाह ध्यानस्थ तपस्वी गौतम पर पड़ी। दोनों जाग्रत हो गए। उनका अज्ञान काफूर हो गया। गौतम के दर्शन से हृद्देश आलोकित हो उठा। गौतम की साधना से वे अनुप्राणित ही नहीं हुए अपितु दोनों को पक्का विश्वास हो गया कि निश्चित रूप से इस महापुरुष को बुद्धत्व प्राप्त होगा।

दोनों हाथ जोड़कर गौतम की स्तुति करते हुए बोले, "महात्मन्। आपका व्यक्तित्व एवं तेज भगवान भास्कर के समान जाज्वल्यमान हो रहा है। जिस पृथ्वी पर आप पाँव मोड़कर ध्यानस्थ हैं, वह आपके भार से गुंजायमान हो रही है। इससे यह सत्य संकेतित हो रहा है कि आपको अवश्य ही बुद्धत्व प्राप्त होगा।"

"महात्मन्! सम्यक बुद्ध होने का एक और लक्षण दिखलाई पड़ रहा है। वह यह है कि चारों ओर शीतल, मन्द और सुरभिगम्य मलयपवन चल रहा है और देवताओं के समान अंतरिक्ष में भ्रमण करने वाले पक्षी आपको नमन कर रहे हैं। आपको बुद्धत्व प्राप्त होकर रहेगा।"

गौतम अपने अधिष्ठान पर अटल रहे।

मार और उसकी पुत्रियाँ

प्रायः यह देखा जाता है कि जब कोई प्रबुद्ध तपस्वी पद्मासन लगाकर अधिष्ठान करके ध्यान लगाता है तो अनेक बुरे विचार, चिन्ताएँ तथा अनेक प्रकार की विघ्न-बाधाएँ मँडरा-मँडरा कर मन को उद्भ्रान्त करती हैं।

मार बड़ा ही ईर्ष्यालु एवं मायावी होता है। तपस्वी को तपस्या से च्युत करना उसका मूल लक्ष्य होता है। तपस्वी गौतम जब दृढ़-निश्चय कर अपने मन को एकाग्र कर ध्यानमग्न हो गए तो मार डाह से भर उठा। वह उन्हें लक्ष्य-सिद्धि से विचलित करना चाहता था। अतः अपनी विशाल सेना लेकर उन्हें घेर लिया। पर, तपस्वी गौतम सांसारिक कामनाओं एवं प्रपंचों से पूर्ण रूप से मुक्त हो चुके थे। अतः मार का सारा षड्यंत्र एवं प्रयास विफल हो गया। पराजित मार आग-बबूला हो गया। गर्जता हुआ बोला, "तपस्वी! जिस वज्रासन (गया में बोधिवृक्ष के नीचे वह शिला जिस पर गौतमबुद्ध ने आसन लगाकर बुद्धत्व प्राप्त किया था) पर तुम विराजमान हो, वह तेरा नहीं, मेरा है। अतः उसे शीघ्रातिशीघ्र त्याग दो?"

तपस्वी गौतम अपने संयम पर अडिग रहे। अपनी जगह से न तो रंचमात्र हिले न डुले। पर मार को उत्तर तो देना ही था। निर्भय होकर बोले, "मार! तुमने

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

अपनी कलाबाजी से अनेक ऋषियों, महर्षियों एवं मुनियों को तपच्युत किया है पर मैंने तो अपनी कर्मेन्द्रियों पर नहीं अपितु ज्ञानेन्द्रियों पर भी संयम की लगाम लगा दी है। अतः मेरे सामने तुम्हारी एक भी चाल सफल न होगी।"

मार बोला, "क्यों?"

"क्योंकि इस वज्रासन पर उसी का अधिकार है जिसने सभी पारमिताएँ सम्पन्न कर ली हैं। उन्हें मैंने पूरी तरह से संचित कर लिया है।" तपस्वी गौतम की यह घोषणा सत्य थी। इधर उनकी घोषणा और उधर धरती का थर-थर कंपन। लगता था कि पृथ्वी उनके कथन को सत्यापित कर रही है।

बेचारा मार क्या करता, अपनी सारी सेना लेकर वहाँ से नौ दो ग्यारह हो गया।

मार की पुत्रियाँ

मार की तीन पुत्रियाँ थीं। नाम था उनका—तृष्ठा, द्वेष (आरती) और राग (रगा)। अद्वितीय रूप-सौष्ठव था उनका। पराजित पिता मार का उतरा हुआ चेहरा देखकर उनसे रहा न गया। ढाढ़स बँधाते हुए बोलीं, "पिताश्री! हम आपका पराभव नहीं देख सकतीं। आज्ञा दीजिए। तिरिया-चरित्र द्वारा माया और प्रपंच का सहारा लेकर हम सब तपस्वी गौतम को छका देंगी।"

"ठीक है। जाओ।"

हँसती, मचलती, खिलखिलाती तीनों ध्यानरत गौतम के सन्निकट पहुँच गईं। हँसकर, मुस्कराकर, गुनगुनाकर, नेत्रों तथा अंग-प्रत्यंग का उन्मुक्त प्रदर्शन कर वे उनके ध्यान को भंग करने का हर संभव प्रयास करने लगीं, पर गौतम तो सिद्धध्यानी थे। उनका मन उसी प्रकार नियंत्रित और वश में था जिस प्रकार विशाल हाथी पीलबान के वश में रहता है। आँखों को ज्यों का त्यों बन्द ही रखा। वाक् पर लगाम कसे रहे।

अन्त में हर प्रकार से निरुत्साह होकर तीनों हाथ जोड़कर बोलीं, "महात्मन्! हमें देखना चाहें या न चाहें पर सेवा करने का सुअवसर तो दें।" तपस्वी गौतम मौन और अचल पड़े रहे।

बेचारी क्या करतीं? अपना-सा मुँह लेकर अपने घर लौट गईं।

बुद्धत्व की प्राप्ति

बैशाख मास का शुक्ल पक्ष प्रारम्भ हो गया था। अतः रात के समय प्रकृति का प्राँगण अत्यन्त ही रमणीय, शान्त, शीतल, अह्लादकारी तथा आध्यात्मिक प्रेरणा का

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

स्रोत बन गया था। किसानों तथा आदिवासियों के लिये जहाँ चाँदनी रात आनन्ददायिनी बन गई थी वहीं चोरों, प्रेतों, विकारग्रस्त पुरुषों तथा हिंसक प्राणियों के लिए कष्टदाई। सन्तों, ऋषियों, मुनियों का मन चाँदनी में प्रवहित शीत, मन्द तथा सुगन्धित वायु के सेवन से सब प्रकार के मलों एवं विकारों से शुद्ध होकर समाधि में लीन हो गया।

जब पूर्णमासी की रात आई तब चन्द्र-ज्योत्स्ना ने पृथ्वी, आकाश, नदी-नालों, झीलों-तालाबों एवं पहाड़ों पर पसर कर बोधिगया के आस-पास के परिवेश को बर्फ के समान स्वच्छ बना दिया। इस दुग्ध-धवल वातावरण में सत्यान्वेषी सिद्धार्थ बुद्धगया में अश्वत्थ (बोधिवृक्ष) के नीचे एक शिला पर पद्मासन लगाकर मौन होकर आँखें बन्द कर मन को सभी विकारों, क्लेशों तथा मलों से विशुद्ध तथा निर्मल कर समाधिस्थ हो गये थे।

बैशाख पूनम की रात में प्रथम याम (प्रहर) का समय था। सिद्धार्थ गौतम प्रथम ध्यान में लीन होने के बाद क्रमशः दूसरे, तीसरे और चौथे ध्यान में समाहित हुए। रात के प्रथम याम में ध्यानरत सिद्धार्थ गौतम की स्मृति में पूर्व-जन्मों का सारा इतिहास चल-चित्र के समान उजागर हो गया। पूर्व जन्मों का सम्पूर्ण अभिज्ञान होने पर उन्हें इस परम सत्य का पूर्ण ज्ञान हो गया कि मनुष्य का अपने कर्मों के अनुसार कहाँ जन्म होता है। बार-बार जन्मों के उपकरणों को जब उन्होंने अपने दिव्यचक्षु से देखा तो उनके लिए निर्वाण का मार्ग उन्मुक्त हो गया।

रात्रि के दूसरे में याम उनका दिव्य-चक्षु विशुद्ध हो गया। रात्रि के अन्तिम याम में द्वादश प्रतीत्य-समुत्पाद का साक्षात्कार हुआ और अरुणोदय होते-होते उनको सर्वज्ञता का प्रत्यक्ष हुआ। इस प्रकार उन्हें बुद्धत्व प्राप्त हो गया और उस दिन से उन्हें भगवान बुद्ध की उपाधि से विभूषित किया गया। वह सिद्धार्थ गौतम के स्थान पर भगवान बुद्ध कहलाने लगे। यथाभूत सत्य का ज्ञान बुद्ध का सद्धम्म है।

सर्वज्ञता का साक्षात्कार होने पर भगवान बुद्ध के मुँह से यह प्रीतिवचन निकला, "कष्टमय जन्म बार-बार लेना पड़ा। मैं गृहकारक की खोज में संसार में व्यर्थ भटकता रहा। किन्तु गृहकारक! अब मैंने तुझे देख लिया। अब तू गृह निर्माण न कर सकेगा। तेरी सब कड़ियाँ टूट गईं, गृह-शिखर ढह गया। चित्तनिर्वाण का लाभ हुआ; तृष्णा का क्षय देख लिया।"

बुद्धत्त्व-लाभ

वैशाख पूर्णिमा के दिन जिस बोधि-वृक्ष के नीचे भगवान बुद्ध को प्रथम बुद्धपद (अभिसंबोधि) प्राप्त हुआ था, उसी के नीचे एक आसन पर बैठे हुए वह एक

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

सप्ताह तक मोक्ष का आनन्द लेते रहे। रात के प्रथम याम में उन्होंने प्रतीत्य-समुदाय का अनुलोम (आदि से अन्त की ओर) और प्रतिलोम (=अन्त से आदि की ओर) मनन किया।

उन्हें इस सच्चाई का अभिज्ञान हुआ, अविद्या के कारण संस्कार होता है, संस्कार के कारण विज्ञान होता है, विज्ञान के कारण नाम-रूप, नाम-रूप के कारण छः आयतन, छः आयतनों के कारण स्पर्श, स्पर्श के कारण वेदना, वेदना के कारण तृष्णा, तृष्णा के कारण उपादान, उपादान के कारण भव, भव के कारण जाति, जाति (=जन्म) के कारण जरा (=बुढ़ापा), मरण, शोक, रोना-पीटना, दुःख, चित्त-विकार और चित्त-खेद उत्पन्न होते हैं। इस तरह इस (संसार) की—जो केवल दुःखों का पुंज है—उत्पत्ति होती है। अविद्या के बिलकुल विराग से, (अविद्या का) नाश होने से, संस्कार का विनाश होता है। संस्कार-नाश से विज्ञान का नाश होता है। विज्ञान-नाश से नाम-रूप का नाश होता है। नाम-रूप के नाश से छः आयतनों का नाश होता है। छः आयतनों के नाश से स्पर्श का नाश होता है। स्पर्श-नाश से वेदना का नाश होता है। वेदना-नाश तृष्णा का नाश से होता है। तृष्णा-नाश से उपादान का नाश होता है। उपादान-नाश से भव का नाश होता है। भव-नाश से जाति का नाश होता है। जाति-नाश से जरा, मरण, शोक, रोना-पीटना, दुःख, चित्त-विकार और चित्त-खेद नाश होते हैं और इस प्रकार दुःख-पुंज का नाश होता है। जिस समय भगवान बुद्ध को इस अर्थ का अभिज्ञान हुआ उसी समय उनके मुँह से यह प्रीति वचन (उदान) निसृत हुआ—

"जब धर्म होत जग प्रकट, सोत्साह ध्यानी विप्र के।
तब शांत हों काँक्षा सभी, देखे स-हेतू धर्म को।"

जब रात का मध्यम याम हुआ तब बुद्ध ने पुनः प्रतीत्य-समुत्पाद को अनुलोम-प्रतिलोम से मनन किया—"अविद्या के कारण संस्कार होता है, दुःख पुंज का नाश होता है।" इस अर्थ का अभिज्ञान होने पर उनके मुँह से यह प्रीतिवचन (उदान) निकला—

"जब धर्म होते जग प्रकट, सोत्साह ध्यानी विप्र को।
तब शांत हो काँक्षा सभी ही जानकर क्षय कार्य को॥"

रात के अन्तिम-याम में भगवान ने पुनः प्रतीत्य-समुत्पाद को अनुलोम-प्रतिलोम करके मनन किया।—"अविद्या केवल दुःखपुँज का नाश होता है।" इस अर्थ को जानकर बुद्ध ने उसी समय यह प्रीतिवचन (उदान) कहा—

"जब धर्म होते जग प्रकट, सोत्साह ध्यानी विप्र को।
ठहरै काँपता मार-सेना, रवि प्रकाशै गगन को ज्यों॥"

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

अजपाल नामक बरगद के नीचे आसन

बोधगया में बुद्ध बुद्धत्व प्राप्त करने के पश्चात सात सप्ताह तक रहकर स्थान बदल-बदलकर आसन लगाकर लोकोत्तर समाधि में मग्न रहते थे। बोधिवृक्ष के नीचे एक सप्ताह आसन लगाने के बाद भगवान बुद्ध समाधि से उठकर अजपाल नामक बरगद वृक्ष के पास गए और उसके नीचे सप्ताहभर आसन लगाकर मोक्ष का, लोकोत्तर आनन्द का लाभ उठाते रहे।

संयोग की बात है कि उस काल में पास के एक गाँव में एक ब्राह्मण रहता था। धर्म-शास्त्रों का अध्येता होने के कारण उसे अपने ज्ञान पर बड़ा घमण्ड था। जब भगवान के लोकोत्तर ज्ञान की प्राप्ति का समाचार उसके कानों में पड़ा तो वह ईर्ष्या और द्वेष से जलने लगा। वह नहा-धोकर शुभ्रवस्त्र धारण कर भगवान का दर्शन करने के लिए चल पड़ा।

भगवान मौन होकर केवल अपनी श्वासों के आवागमन एवं ऊपर के होंठ से लेकर नासिका के अग्रभाग के तिकोने स्थान को ही नहीं देखते थे अपितु अपनी चाल को भी देखा करते थे। पद्मासन पर बैठकर जब एकाग्रचित होकर देखते-देखते पैरों की थकान एवं जकड़न का अनुभव करते तो आसन से उठकर टहला करते थे। टहलते समय अपनी चाल पर मन को एकाग्र करने की चेष्टा करते थे। पहले एक पैर आगे बढ़ता और फिर दूसरा। इस-तरह फिर पहला और उसके बाद दूसरा।

टहलने के बाद जैसे ही भगवान वज्रासन पर बैठे, सामने आकर ब्राह्मण खड़ा हो गया। कुशल-क्षेम पूछने के बाद वह भगवान के तेज से पराभूत होकर चुपचाप उनके अलौकिक रूप को निहारने लगा।

भगवान समझ गए कि आगन्तुक ब्राह्मण कुछ पूछना चाहता है। उनके मन में करुणा की सरिता प्रवहमान हो उठी।

बोले, "ब्राह्मण! क्या तुम्हारे मन में कुछ जिज्ञासा है?"

"हाँ।"

"तो पूछो?"

"हे गौतम! ब्राह्मण कैसा होता है। उसे बनाने वाले कौन से धर्म हैं?"

भगवान बुद्ध उस ब्राह्मण के आशय को समझ गए। उत्तर गद्य में न देकर पद्य में दिए। उनके मुँह से यह प्रीतिवचन (उदान) निकला—

"जो विप्र बाहित-पाप मल-अभिमान-बिनु संयत रहे।
वेदांत-पारग; ब्रह्मचारी ब्रह्मवादी धर्म से।
सम नहिं कोई जिससा जगत् (में)॥"

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

मुचलिंद वृक्ष

जब फिर एक सप्ताह बीत गया तो भगवान् बुद्ध अजपाल बरगद के नीचे की अपनी लोकोत्तर समाधि से उन्मुक्त होकर वहाँ से चल दिए। जब वह एक मुचलिंद वृक्ष के नीचे पहुँचे तब वहाँ एकांत, शान्त एवं स्वच्छ स्थान देखकर उनका मन आनन्द-विभोर हो उठा। वहाँ वज्रासन लगाकर बैठ गए और निर्वाण-सुख का आनन्द लेने लगे। असमय आकाश मेघाच्छित हो उठा और शीतल हवा के झँकोरे चलने लगे। यह मेघयुक्त शीतल बदली एक दिन नहीं अपितु पूरे सप्ताहभर उत्पात मचाए रही। पर भगवान बुद्ध अपने आसन से टस से मस नहीं हुए। वहाँ मुचलिंद नामक एक नागराज रहता था। वह अपने विषैले स्वभाव को त्याग कर अपने घर से बाहर आकर बुद्ध भगवान के पवित्र शरीर को अपने शरीर से सात बार लपेटकर, उनके सिर पर अपना विशाल फन फैलाकर चुपचाप खड़ा हो गया। इस प्रकार अपने बुद्धिबल से नागराज ने भगवान बुद्ध की शीतलता, उष्णता, डँस, मच्छर, वात, धूप, वर्षा एवं रेंगने वाले जन्तुओं से रक्षा की।

जब सप्ताह बीत गया तो आकाश भी बदली के छँट जाने से शुद्ध एवं स्वच्छ हो गया। आनन्दमय एवं प्रेरणादायक परिवेश को देखकर वह निश्चिन्त हो गया। धीरे से उसने अपने शरीर को बुद्ध के शरीर से हटाकर छिपकर बालक-रूप धारण कर लिया। हाथ जोड़कर उन्हें नमन कर, उनकी परिक्रमा कर वह सामने खड़ा हो गया।

मुचलिंद नामक नागराज के सद्व्यवहार, श्रद्धा एवं परोपकार को देखकर बुद्ध भगवान के मुँह से यह प्रीति-वचन (उदान) निकल पड़ा—

"सन्तुष्ट देखहार श्रुतधर्मा, सुखी एकान्त में।
निर्द्वन्द्व सुख है लोक में, संयम जो प्राणी मात्र में।
सब कामनाएँ छोड़ना, वैराग्य है सुख लोक में।
है परम सुख निश्चय वही, जो साधना अभिमान का ॥"

राजायतन वृक्ष

जैसे ही सप्ताह-समापन हुआ, भगवान समाधि से उन्मुक्त होकर उठ गए। वहाँ से वह राजयतन वृक्ष के नीचे गए। स्थान दिव्य भी था और शान्त भी। भगवान समाधि लगाकर सप्ताहभर मोक्ष का आनन्द लेने लगे।

उस समय उक्कल (उत्कल आज का उड़ीसा) के कुछ निवासी आजीविका खोज में उत्कल (उड़ीसा) अपनी जन्म-भूमि छोड़कर ब्रह्मदेश की इरावदी नदी के मुँहाने पर जाकर उर्वर भूमि देखकर वहाँ बस गए। उन लोगों ने वहाँ पर एक नये नगर की प्रतिष्ठा की। उन्हें अपनी जन्म-भूमि उक्कल (उत्कल-उड़ीसा) से गहरा

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

लगाव था। अतः अपनी जन्मभूमि की याद में उन लोगों ने इस नव प्रतिष्ठित नगर का नाम उक्कल रखा। वाणिज्य विस्तार के लिए कुछ साहसी व्यापारी वहाँ जाकर बस गए। आयात-निर्यात के लिए श्रेष्ठी वर्ग भारत से ब्रह्मदेश और ब्रह्मदेश से भारत आता-जाता रहा।

अफगानिस्तान में मजारे शरीफ से अठारह किलोमीटर पश्चिम में बाल्हिक नामक एक जगह थी। उसे आजकल बलख कहा जाता है। वहाँ से दो सगे भाई तपस्सु और भल्लिक व्यापार करने के लिए अफगानिस्तान से निकलकर उक्कल में जाकर बस गए।

भगवान बुद्ध के बुद्धत्व प्राप्त करने का समाचार व्यापरियों द्वारा अविलम्ब ब्रह्मदेश के उक्कल नगर में फैल गया। तपस्सु और भल्लिक के जाति-बिरादरी के देवता ने उन्हें अपने पास बुलवाया। दोनों हाथ जोड़कर अपने देवता के सामने खड़े हुए और बोले, "देव महाराज! हम लोगों के लिए क्या आदेश है?"

"तुम दोनों, बोधगया जाओ?"

"देव! वहाँ भेजने का क्या हेतु है?"

देवता ने तपस्सु और भल्लिक से कहा, "व्यापार-कला में दक्ष दोनों मार्ष (मित्र) बोधगया में राजायतन वृक्ष के नीचे जाओ। भगवान बुद्ध बुधत्व को प्राप्त कर राज़ायतन तले विहार कर रहे हैं। मट्ठे (=मन्थ) और लड्डू (मधुपिंड) लेकर उनके पास जाओ और विनम्रतापूर्वक इन दोनों चीजों से भगवान को सम्मानित करो। यही दान तुम दोनों के लिए चिरकाल तक हितकारी और सुखदायक होगा।"

"तथास्तु।" कहकर दोनों अपने जात-बिरादरी के देवता के आदेश का पालन करने के लिए मट्ठा और लड्डू हाथ में लेकर समुद्री नाव द्वारा भारत आए और चलते-चलते बोधगया पहुँच गए।

जब राजायतन वृक्ष के पास गये तो वहाँ वज्रासन पर विराजमान भगवान का उन्हें दर्शन हुआ। पास जाकर उन्हें अभिवादन कर वे एक ओर हाथ जोड़े खड़े हो गए। कुछ देर दोनों मौन रहे। पर, पलभर में उन्हें आत्म-प्रेरणा हुई। अतः उन दोनों (अर्थात् तपस्सु और भल्लिक) ने कहा, "भन्ते! भगवान! हम आपके लिए ब्रह्मदेश के उक्कल नगर से मट्ठे और लड्डू लाए हैं। कृपया स्वीकार कर चिरकाल तक हमारा कल्याण करें और सुख प्रदान करें।"

उनकी प्रार्थना को सुनकर बुद्ध भगवान ने सोचा—"तथागत भिक्षा को हाथ में नहीं ग्रहण किया करते, मैं मट्ठा और लड्डू किस पात्र में ग्रहण करूँ।"

तब चार दिशाओं के चारों महाराजा भगवान बुद्ध के अन्तःकरण की बात जान गए। चारों दिशाओं से चार पत्थर के (भिक्षापात्र) उनके पास ले गए और

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

बोले, "भन्ते! भगवान! इस पत्थर के पात्र में मट्ठा और लड्डू ग्रहण करें।"

"बुद्ध भगवान ने उस नवनिर्मित शिलापात्र में मट्ठा और लड्डू ग्रहण कर भोजन कर लिया।"

भगवान को मट्ठा तथा लड्डू खाते देखकर तपस्सु और भल्लिक फूले न समाए। अन्त में दोनों ने हाथ जोड़कर कहा, "भन्ते! हम दोनों भगवान तथा धर्म की शरण जाते हैं। आज आप हम दोनों को अंजलिबद्ध शरणागत उपासक जानें।"

भगवान तो शरणागत वत्सल थे ही। उनकी प्रार्थना को स्वीकार कर लिए। तपस्सु और भल्लिक को भगवान बुद्ध ने अपने सिर के आठ गुच्छे बाल प्रदान किए।

भगवान द्वारा प्रदत्त अनुपम भेंट अपने हाथ में लेकर वे तत्काल उक्कल लौट गए। उन दोनों ने उक्कलापति को भगवान के बालों के कुछ गुच्छों को भेंट कर दिया। उक्कला नरेश ने भगवान बुद्ध के नाम पर बोटटौं, सूले तथा मुख्यतः श्वेडगोन स्तूपों का निर्माण करवाया। इन स्तूपों के गर्भगृह में महाराज ने भगवान के बालों की प्रतिष्ठा की। इनकी पूजा आज भी वहाँ के निवासी श्रद्धापूर्वक करते हैं।

कालोपरान्त भगवान की प्रेरणा से तपस्सु और भल्लिक पुनः मगध आए और बुद्ध की शरण में जाकर धर्म-शिक्षा प्राप्त की। प्रव्रज्या के बाद वे दोनों अनास्रव अरहंत हो गए। ब्रह्मदेश में बुद्ध की शिक्षा के प्रचार-प्रसार में इन दोनों की अहम भूमिका रही है। इन दोनों भाइयों को बुद्ध द्वारा 'अग्र' की उपाधि प्राप्त हुई थी।

भगवान बुद्ध की शिक्षा से अनुप्राणित होकर तपस्सु और भल्लिक उत्तरापथ में स्थित अपने पूर्वजों के भूमि बलख पहुँच गए। वास्तव में इन दोनों भाइयों का जन्म बलख के सन्निकट असितंजन नामक स्थान पर हुआ था। असितंजन नामक नगर के सिंहद्वार के समीप तपस्सु एवं भल्लिक ने एक स्तूप का निर्माण करवाया और बुद्ध द्वारा प्रदत्त बचाये हुए बालों को श्रद्धा और आदर के साथ स्तूप के गर्भगृह में समाहित करवा दिया।

ब्रह्मयाचन

राजायतन वृक्ष के नीचे एक सप्ताह समाधि लगाने के उपरान्त बुद्ध भगवान पुनः अजपाल वृक्ष के तले जाकर विहार करने लगे। निर्जन स्थान तो था ही। ध्यानावस्थित हो गए। अचानक उनके चित्त में यह वितर्क उत्पन्न हुआ—"मैंने गंभीर दुर्दर्शन, दुर्-ज्ञेय, शांत, उत्तम, तर्क से अप्राप्य, निपुण, पण्डितों द्वारा ग्रहणीय

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

धर्म को प्राप्त कर लिया है। अब मैं इस धर्म को जनता को कैसे समझाऊँ? अधिकांश जन काम-तृष्णा से आक्रान्त होकर काम-रत हैं। मुझसे अन्वेषित धर्म कार्य कारण रूपी प्रतीत्य-समुत्पाद है। वह काम-रत जन के लिए दुर्दर्शनीय है। प्रतीत्य-समुत्पाद भी दुर्दर्शनीय है क्योंकि यह सभी संस्कारों का शमन, सभी मंत्रों का परित्याग, तृष्णा का क्षय, विराग, निरोध (=दुख-निरोध) और निर्वाण है। यदि मैं मोह-ग्रस्त जनता को सत्धर्म से अवगत कराने का प्रयास करूँ और वे उसे न समझ सकें तो मुझे बहुत अधिक दुःख और पीड़ा होगी। पवित्र चिन्तन की इस मधुर वेला में उनके मन में यह अद्‌भुत गाथाएँ कौंध पड़ीं—

यह धर्म पाया कष्ट से, इसका न युक्त प्रकाशना।
नहिं राग-द्वेष-प्रलिप्त को है सुकर इसका जानना।
गंभीर उल्टी-धारयुत दुर्द्दश्य सूक्ष्म प्रवीण का।
तम-पुंज-छादित रागरत द्वारा न संभव देखना॥

अचानक सहापति ब्रह्मा को भगवान बुद्ध की मनःस्थिति का परिज्ञान हो गया। सहापति ब्रह्मा सोचने लगे, "यदि तथागत अर्हत् सम्यक् सबुद्ध का चित्त धर्म-प्रचार की ओर न झुककर, अल्प-उत्सुकता (=उदासीनता) की ओर झुक गया तो लोक का विनाश हो जायेगा।"

लोकहित की भावना से अनुप्राणित होकर सहापति ब्रह्मा ब्रह्मलोक से उतरकर धरती पर आकर बुद्ध भगवान के सामने हाथ जोड़कर खड़े हो गए। श्रद्धा और भक्ति के साथ भगवान बुद्ध को नमन कर प्रार्थना किए—"भन्ते। भगवान् धर्मोपदेश करें, सुगत! धर्मोपदेश करें। इस धरती पर बहुत से अल्पमल प्राणी भी हैं। यदि आप उन्हें सत्धर्म नहीं सुनायेंगे तो वे नष्ट हो जायेंगे। उपदेश करें, धर्म के सुनने वाले भी होवेंगे।"

भगवान बुद्ध सहापति ब्रह्मा को देखने लगे। सहापति ब्रह्मा के मुँह से यह वाक्य भी उद्‌घोषित हुआ—"मगध में मलिन चित्त वालों से चिन्तित, पहले अशुद्ध धर्म पैदा हुआ। (अब दुनिया) अमृत के द्वार को खोलने वाले विमल (पुरुष) से जाने गये इस धर्म को सुने।"

पुनः उन्होंने बुद्ध भगवान से प्रार्थना की, "बुद्ध! जिस तरह पथरीले पर्वत के शिखर पर खड़ा पुरुष चारों ओर की जनता को देखता है उसी तरह हे सुमेध! हे सर्वत्र नेत्र वाले! धर्म रूपी महल पर चढ़कर सारी जनता की ओर देखें।"

भगवान बुद्ध सहापति ब्रह्मा के निवेदन को चुपचाप सुनते रहे। पुनः सहापति ब्रह्मा ने हाथ जोड़कर भगवान से प्रार्थना की, "हे शोक रहित भगवान! शोक-निमग्न जन्मजरा से पीड़ित जनता को देखें। उठें, उपदेश करें। हे संग्रामजित! हे सार्थवाह!

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

हे उऋण-ऋण! संसार में यत्र-तत्र विचरण करते हुए धर्म-प्रचार करें। आपके धर्मोपदेश से लोक का बहुत बड़ा कल्याण होगा।"

भगवान बुद्ध सहापति ब्रह्मा की लोक-कल्याणकारी सलाह से सहमत हो गए और बोले, "हे ब्रह्मा! (वृथा) पीड़ा का गौर कर मैं मनुष्यों को निपुण एवं उत्तम धर्म को नहीं बतलाना चाहता था पर अब मैं जनता को शुद्ध धर्म से अवश्य अवगत कराऊँगा। सारे विश्व में मानव-कल्याण के लिए शुद्ध धर्म का प्रचार करूँगा।"

जब भगवान बुद्ध ने सहापति ब्रह्मा द्वारा प्रस्तावित धर्मोपदेश की पावन सलाह को स्वीकार कर धर्म चक्रवर्तन का संकल्प किया तो सहापति ब्रह्मा का हृदय अह्लादित हो गया। उनके मुँह से अचानक यह बात निकल पड़ी, "भगवान ने मेरी नेक सलाह को स्वीकार कर ली।" भगवान बुद्ध का अभिवादन कर तुरन्त वे अदृश्य हो गए।

धर्मचक्र प्रदर्तन

भगवान बुद्ध सर्वप्रथम ध्यानाचार्य अराड-कलाम को धर्म का उपदेश देना चाहते थे पर जब अन्तर्चक्षु से चारों ओर देखे तो उन्हें यह अभिज्ञान हो गया कि अराड-कलाम अब इस धराधाम पर नहीं है।

फिर उनके मन में यह विचार उठा कि आचार्य अराड-कलाम नहीं है तो मैं उद्रक-रामपुत्र को प्रथम धर्म-देशना दूँगा। पर, तुरन्त ही उन्हें आत्मज्ञान हो गया कि आचार्य उद्रक-रामपुत्र भी काल-कवलित हो गए।

सात सप्ताह तक भगवान बुद्ध अनेक प्रकार के वृक्षों के नीचे समाधि लगा-लगाकर लोकोत्तर आनन्द का साक्षात्कार करते रहे पर अन्त में वे 36 वर्ष की अवस्था में बोधगया को छोड़कर चारिका (=रामत) के लिए वाराणसी की ओर निकल पड़े। बोधगया और गया के बीच उपक आजीवक की निगाह उन पर पड़ गई। भगवान बुद्ध के शान्त, निर्मल एवं भव्य रूप को देखकर वह अपनी जिज्ञासा को रोक न सका।

वह बुद्ध से बोला, "आयुष्मान! आपकी समस्त इन्द्रियाँ विमल, आलोकमय एवं अह्लादित हैं। चक्षु दिव्य एवं देदीप्यमान हैं। काँति परिशुद्ध एवं उज्ज्वल है। क्या मैं आपसे कुछ प्रश्न कर सकता हूँ?"

"करो?"

"हे आवुस। किसको गुरु मानकर आप प्रव्रजित हुए हैं?"

"उपक आजीवक! मेरा कोई गुरु नहीं है। मैं सबको पराजित करने वाला एवं जानने वाला हूँ। देवताओं सहित इस लोक में मेरे समान और कोई पुरुष नहीं है।"

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

"आप किस धर्म को मानते हैं?"

"मेरी किसी धर्म विशेश में आसक्ति नहीं है। मैं सभी धर्मों में निर्लेप हूँ।"

"क्या आप वैरागी हैं?"

"हाँ। मैं सर्व त्यागी हूँ। तृष्णा के क्षय से मुक्त हूँ। मैं स्वतः अर्जित सत्धर्म की देशना करूँगा।"

"क्या आप अर्हत् हैं?"

"हाँ। इस संसार में मैं अपूर्व उपदेशक हूँ।"

"क्या आप मोक्ष-प्राप्त हैं?"

"हाँ। मैं सम्यक संबुद्ध हूँ। मुझे पूर्ण शान्ति और निर्वाण प्राप्त है।"

"आप कहाँ जा रहे हैं?"

"वाराणसी।"

"किस उद्देश्य से?"

"धर्म का चक्का घुमाने के लिए।"

"काशी तो शिवपुरी है। वह तीनों लोकों से न्यारी है।"

"उपक आजीवक। वहाँ अन्धे हुए लोक में अमृत-दुन्दुभी बजाऊँगा।"

भगवान बुद्ध की वाणी के श्रवण से उपक आजीवक के ज्ञान-चक्षु उन्मीलित हो गए। वह बोला, "आपका दावा शत-प्रतिशत सच है। उससे अनन्त जिन हो सकते हैं।"

"उपक आजीवक। जिनके चित्तमल (=आस्रव) नष्ट हो चुके हैं, वे ही मेरे जैसे जिन हो सकते हैं। मैंने जीवन की समस्त बुराइयों पर विजय प्राप्त कर ली है। अतः मैं जिन हूँ।"

उपक आजीवक बोला, "अवश्य होंगे, आयुष्मान!" यह कहकर वह वहाँ से नौ दो ग्यारह हो गया।

भगवान बुद्ध वाराणसी की ओर अग्रसर हुए।

बुद्धत्व का समाचार कपिलवस्तु में

उधर सिद्धार्थ गौतम को अमृततत्त्व प्राप्त हो गया और इधर कपिलवस्तु में वियोगाग्नि में यशोधरा रात-दिन जल रही थी। वह कातर होकर अपने पति सिद्धार्थ से प्रार्थना करती हुई कहने लगी, "हे भगवान। मुझे आपका वियोग असह्य हो गया है। यदि आपको अभीष्ट की सिद्धि हो गई हो तो मुझ अकिंचन को दर्शन देने की कृपा करें। आपके पुत्र राहुल का बुद्धि-वैभव पराकाष्ठा पर पहुँच गया है। अतः वह ऐसे-ऐसे विचित्र प्रश्न करता है जिनका उत्तर देना मेरे लिए दुष्कर हो जाता है। मैं तो एक

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

अबला और अज्ञानी नारी हूँ पर मातृत्व पद की गरिमा की रक्षा करते हुए आपकी अमूल्य धरोहर राहुल की सेवा-शुश्रूषा तहेदिल से कर रही हूँ।"

"जन्म का मूलस्रोत तो माता ही है। अतः उस मातृत्व को समाप्त करें जिससे हर प्राणी चौरासी लाख योनियों में जन्म लेने एवं मरने के चक्र से मुक्त हो जाये।"

"यह कितनी बड़ी विडम्बना है कि आपने ही मुझसे सम्बन्ध जोड़ा और स्वयं सुप्तावस्था में पीठ फेरकर मुझे छोड़कर चले गए।"

"जल में कमल खिले हुए हैं। हे कमलाक्ष यदि आप घर होते तो कितना अच्छा लगता! आकाश में मेघ छाये हुए हैं और मेरे मेघरूपी दोनों नेत्रों से आँसुओं की लगातार वर्षा हो रही है पर मेरा मन तो प्यासा का प्यास ही है।"

गौतमी का प्रवेश

जिस समय प्रकृति के विभिन्न माध्यमों द्वारा यशोधरा अपने मन की विह्वलता को बिम्बित कर रही थी, उसी समय अचानक हाँफती-हाँफती गौतमी उसके कमरे में प्रविष्ट हुई। गौतमी को हड़बड़ाई हुई देखकर यशोधरा बोली, "गौमती! क्या बात है? इतनी उतावली में क्यों हो?"

"यशोधरा! जिसके वियोग में तुम्हारा खाना-पीना, सोना-जागना और उठना-बैठना दूभर हो गया है, उसका पता अब चल गया है।"

"गौतमी! वह तो एकान्तवासी मुनि हैं। उनका पता कैसे चला?"

"यशोधरा! मगध से कुछ व्यापारी अपने व्यापार के सम्बन्ध में कपिलवस्तु पधारे हुए हैं। उनके द्वारा यह पता चला है कि बैशाख पूर्णिमा की रात में सिद्धार्थ मुनि को सम्यक् बुद्धत्व प्राप्त हो गया।"

"उन्हें मोक्ष कैसे प्राप्त हुआ?"

"देवि! सिद्धार्थ ने ध्यान एवं विपश्यना के द्वारा अमरत्व प्राप्त किया है। उन्होंने लोकोत्तर समाधि द्वारा जो निर्वाण प्राप्त किया है उसका अभ्यास वे 49 दिनों तक 'बोधगया' में करते रहे।"

"अब कहाँ हैं?"

"अब गया से वाराणसी की ओर चल पड़े हैं।"

"गौतमी। यदि तुम्हारा कथन सत्य है तो मैं कृतार्थ हो गई। अब मेरा सारा उलाहना काफूर हो गया।"

"यशोधरा। भगवान बुद्ध को सारे पूर्व जन्मों का सम्यक् ज्ञान हो गया। जन्म-मरण के रहस्य को जानकर अब वे जन्म-मरण के चक्र से मुक्त हो गए हैं। मानव-योनि में यह उनका अन्तिम जन्म होगा।"

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

"गौतमी। मैं उनकी हूँ और वे मेरे हैं। हर जन्म में मैं उनकी पत्नी और वे मेरे पति रहे हैं। पर मुझे अभी उनसे एक प्रश्न पूछना है?"

"कौन-सा प्रश्न है?"

"यही कि उन्होंने पूर्व जन्मों में मुझे जो कुछ प्रदान किया, उन ऋणों से मुझे मुक्ति मिली कि नहीं।"

महाप्रजापति, शुद्धोधन और राहुल का आगमन

गौतमी और यशोधरा का वार्तालाप चल ही रहा था कि बीच में राहुल और महाप्रजापति के साथ महाराज शुद्धोधन वहाँ आ गए। यशोधरा के पास जाकर राहुल कहता है, "माँ! जरा मुँह ऊपर करो। सामने दादा-दादी आ रहे हैं। कितने प्रसन्नचित्त हैं वे! अविलम्ब रोना-धोना बन्द करो।"

जैसे ही महाप्रजापति और शुद्धोधन कक्ष में पधारे, यशोधरा दौड़कर उनके पैरों पर गिर पड़ी। शुद्धोधन आशीर्वाद देते हुए बोले, "बेटी! तुम्हारा सौभाग्य अमर रहे। तेरा व्रत और तुम्हारी तपस्या सफल हुई।"

महाप्रजापति चुप कैसे बैठती। बोली, "बहू। तुम्हारा विषम वियोग महान है। कपिलवस्तु में तुम तपी और गया में सिद्धार्थ। तुम्हारी तपस्या और तुम्हारा त्याग सिद्धार्थ से रंचमात्र भी कम नहीं है।"

यशोधरा सास के चरणों पर गिर पड़ी।

महाराज शुद्धोधन अपने मन के उद्‌गार को रोक न सके। बोले, "बेटी। तुम सावित्री के समान पातिव्रत्य धर्म-पालन में निष्णात हो। तुम्हारे पुण्य, त्याग और प्रताप से सिद्धार्थ को लोकोत्तरता प्राप्त हुई है।"

"पिताजी। आपने मेरे सम्बन्ध में जो विचार व्यक्त किए हैं, उसके लिये मैं कृत-कृत्य हो गई।"

"यशोधरा! शिष्यों को खोजकर सच्चे धर्म की शिक्षा देने के लिए सिद्धार्थ सारनाथ आ रहा है।"

"पिताजी! ज्ञान प्राप्त कर दूसरों को उस ज्ञान से अवगत कराना बड़ा पुनीत कार्य है। यह परम्परा प्राचीन-काल से आज तक ऋषियों-महर्षियों द्वारा चली आ रही है।"

"बेटी! सपरिवार चलो, चलें वाराणसी में?"

"किसलिए?"

"महात्मा बुद्ध का स्वागत करने के लिए।"

"नहीं, पिताजी! नहीं।"

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

"क्यों?"

"पिताजी! मैं उनकी पत्नी हूँ। हमारी भारतीय परम्परा यही कहती है कि पत्नी को पति की आज्ञा के विना अपना घर नहीं छोड़ना चाहिए।"

बीच में प्रजापति बोल उठी, "वहू! अब भी उससे आज्ञा पाने की आशा क्यों कर रही हो?"

"माँ। समाज सदैव से पुरुष शासित रहा है। समाज में पुरुष प्रधान है और नारी गौण रही है। घर और नगर से बाहर जाने के लिए पति की अनुमति लेना आवश्यक है।"

अपना अधिकार जताते हुए शुद्धोधन बोले, "बेटी! मैं कपिलवस्तु नरेश भी हूँ और सिद्धार्थ का पिता भी हूँ। क्या तुम्हें आज्ञा देने का अधिकार मुझे नहीं है?"

"तात। आपको पूरा अधिकार है पर, मैं भाग्यहीना हूँ।"

महारानी प्रजापति से रहा न गया। बोली, "बहू! तुम एक नारी हो। जितना तेज, घमण्ड तथा साहस तुम प्रदर्शित कर रही हो, वह औचित्य से परे है।"

विनम्रता और शालीनता के साथ यशोधरा ने सास को उत्तर दिया, "माँ! वह अपना अभीष्ट पूरा करने के लिए बिना बताए मुझे त्याग कर चले गये। अतः इच्छा मेरी नहीं अपितु उनकी बलवान है। मैं उनके प्रति सम्पूर्ण रूप से समर्पित हूँ। अतः जब उनकी अनुकम्पा होगी तो स्वतः वह आकर मेरे ऊपर अनुग्रह कर दर्शन देंगे अथवा मुझे अपने पास बुलाकर चरणों में शरण देंगे।"

महाप्रजापति बोलीं, "बहू। सिद्धार्थ के पास चलने में तुम्हें कौन-सी बाधा चक्कर में डाल रही है?"

"माँ! धर्म के अनुसार उनके पास जाने से मुझे कोई रोक नहीं सकता। इच्छा भी होती है पर मेरे अन्दर पता नहीं, वह कौन-सी आद्यशक्ति है जो बिना बुलाये उनके पास जाने की आज्ञा नहीं देती। इतनी बात कहकर यशोधरा मूर्छित हो गई।"

बहू की बेहोशी देखकर शुद्धोधन हक्का-बक्का हो गए। वह अपनी मनोवेदना को रोक न सके। बोले, "बेटी! तुम्हारे बिना सिद्धार्थ मुझे स्वीकार नहीं। अरे! वह कितना निर्मम है! संसार के सारे रिश्ते झूठे हैं। अरे! कोई माई का लाल है जो जाकर बुद्ध से मेरा यह संदेश कहे—"दया करके वह मुझे, बहू तथा प्रजापति को भवसागर से उबार ले।"

यशोधरा की मूर्छितावस्था

यशोधरा को मूर्छित देखकर अन्तःपुर में हलचल मच गई। कोई नारी अपने हाथ में लोटे में पानी भरकर दौड़ी, कोई कस्तूरी और चन्दन। यशोधरा की गोबरपत्थी

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

जल्दी-जल्दी से जड़ी-बूटी उखाड़कर हाथ में लेकर दौड़ी। पास पहुँचकर उसने जड़ी-बूटी को यशोधरा के दोनों कानों और नथुनों में लगा दिया। तुरन्त यशोधरा होश में आ गई।

सामने खड़ा राहुल रो रहा था। उसे गोद में लेकर वह उसे सहलाने लगी। शुद्धोधन, महाप्रजापति तथा परिचारिकाओं की जान में जान आई।

राहुल यशोधरा-वार्तालाप

राहुल को बार-बार पिता की याद सताने लगी। अपने मनोभावों से माँ को अवगत कराते हुए बोला, "माँ! मुझसे तुम्हारा दुःख देखा नहीं जाता। अब तो पिताजी का अभीष्ट पूरा हो गया है। कहो तो उनके पास जाऊँ और चिरौरी-मिनती कर तुम्हारे पास बुला लाऊँ।"

"नहीं बेटे! उनके पास जाना अनुचित है। जव उनकी तपस्या सफल हुई है तो मेरी भी तपस्या सफल होगी। धैर्य रखो।"

"माँ। शैशवावस्था से आज-तक तो धैर्य ही रख रहा हूँ।"

"बहुत अच्छे लड़के हो। धीर पुरुप बनो। कार्यसिद्धि होगी ही। विलम्ब अवश्य हो रहा है पर हमें अपने सर्वस्वभूत धैर्य को नहीं छोड़ना चाहिए।"

"अच्छा। माँ! तुम्हारे साथ मैं उनके आगमन की प्रतीक्षा करता रहूँगा।"

ऋषि-पतन मृगदाव (सारनाथ)

भगवान बुद्ध के मन में बार-बार यह विचार उठने लगा कि अराड कलाम एवं आचार्य उद्रक रामपुत्र अव इस संसार में नहीं हैं तो किसे धर्म की देशना (उपदेश) करूँ। अचानक उन्हें उन पंचवर्गीय भिक्षुओं की याद आई जो अन्न ग्रहण करने के कारण उन्हें योग भ्रष्ट समझकर साथ छोड़कर अन्यत्र चले गए थे। सोचने लगे, "वे इस समय कहाँ निवास कर रहे हैं?" दिव्य चक्षु तो उन्हें मिल ही गया था। जब चारों दिशाओं में दिव्य नेत्रों को घुमाकर देखे तो पता चल गया कि 'पंचवर्गीय भिक्षु इस समय वाराणसी के ऋषिपत्तन मृगदाव में तपस्या कर रहे हैं। बस क्या? गया से पैदल ही वाराणसी की ओर चल पड़े।

शरीर से लम्बे कद वाले एवं अजानबाहु थे। सम्यक् बुद्ध बनने के बाद उनका व्यक्तित्व प्रभावशाली एवं मुखमण्डल भगवान भास्कर के समान अलौकिक आभा से देदीप्यमान हो रहा था। गजब की तेजस्विता थी उनकी!

तीव्रगति थी उनकी। पद-यात्रा करते-करते मृगदाव में पहुँच गए। उन्हें देखकर पाँचों भिक्षुओं ने आपस में विचार-विमर्श करके यह निर्णय किया कि

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

श्रमण गौतम आ रहा है। हमें इसका सम्मान नहीं करना चाहिए पर पलभर में उन्हें 'अतिथि देवो भव।' का परिज्ञान हो गया। अतः जब भगवान बुद्ध उनके पास आए तो झट से एक ने चीवर, एक भिक्षु ने उनका पात्र चीवर अपने हाथ में ले लिया, दूसरे ने उनके बैठने के लिए आसन बिछाया। तीसरे ने पादोदक दिया। चौथे ने पादपीठ रखा और पाँचवे ने पादकलिका लाकर पास में रख दी। भगवान बुद्ध ने आसन ग्रहण कर पैर धोए।

जब पंचवर्गीय भिक्षुओं ने भगवान बुद्ध को 'आवुस' शब्द से संबोधित किया तो भगवान ने सस्नेह उनसे कहा, "भिक्षुओ! तथागत अर्हत सम्यक् सम्बुद्ध हैं।"

पाँचों भिक्षुओं को आत्मज्ञान हुआ। उनके सामने नतमस्तक होकर वे खड़े हो गए और बोले, "तथागत! आपका उपदेश हम सुनना चाहते हैं।"

"तो ध्यान से सुनो। तुम लोगों से अलग होने के बाद मुझे जो अमृत प्राप्त हुआ है उसी का उपदेश तुम लोगों को देना चाहता हूँ।"

"तथागत! हम श्रद्धापूर्वक आपका उपदेश सुनेंगे और तदानुसार आचरण करेंगे।"

"तथास्तु सुनो।"

बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओ! इन दो अतियों (=चरम पंथों) का सेवन नहीं करना चाहिए।"

"तथागत! कौन-सी दो अतियों से साधक को बचना चाहिए। समझाइए?"

"पहली है—कामवासना में लिप्त होना।"

"तथागत। और दूसरी?"

"शरीर को पीड़ा में लगाना। कायाक्लेश आर्य मार्ग नहीं अपितु अनार्य मार्ग है।"

"तथागत! मानव-संसार में आज तक तो केवल दो ही मार्ग प्रचलित हैं अर्थात काम-सुख में लिप्त होना और शरीर को तपाकर मोक्ष प्राप्त करना। विषय-वासनाओं में मग्न रहना एक दिशा में अति है और व्रत-उपवास के द्वारा आत्मपीड़न दूसरी दिशा में अति है। इनकी जगह पर आपने कौन से नूतन मार्ग का अन्वेषण किया है?"

"भिक्षुओ! मैंने सर्वसाधारण के लिए 'मध्यम मार्ग' का अन्वेषण किया है। इसका स्वतः अभ्यास भी किया है, प्रयोग भी किया है और वैज्ञानिक आधार पर इसे व्यावहारिक रूप भी दिया है।"

"भगवान! क्या आप सहज रूप में मध्यम मार्ग को समझा सकते हैं?"

"हाँ। ध्यान से सुनो। मैंने आर्य-अष्टांगिक मार्ग की प्रतिष्ठा की है।"

"तथागत। सहज रूप में 'अष्टांगिक मार्ग' का बोध कराएं?"

"भिक्षुओ! अष्टांगिक मार्ग के अन्तर्गत आठ बातों को महत्त्व दिया जाता

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

है। ये हैं—(1) ठीक (सम्यक्) दृष्टि; (2) ठीक (सम्यक्) संकल्प; (3) ठीक (सम्यक्) वचन; (4) ठीक (सम्यक्) कर्म; (5) ठीक (सम्यक्) जीविका; (6) ठीक (सम्यक्) प्रयत्न; (7) ठीक (सम्यक्) स्मृति; (8) ठीक (सम्यक्) समाधि।"

"भगवान! आपके उपदेश को सुनकर हमारी अविद्या काफूर हो गई।"

आर्य-सत्य

"भिक्षुओ! दुःख आर्य सत्य है। आर्य सत्य चार हैं।"

"तथागत! नाम बताएँ?"

"भिक्षुओ! चार आर्य सत्य ये हैं—(1) दुःख (2) दुःख समुदय, दुःख का कारण (3) दुःख-निरोध (4) दुःख निरोधगामिनी प्रतिपद, दुःख निरोध का मार्ग।"

"भगवान! दुःख-सत्य की व्याख्या करें?"

"भिक्षुओ। जन्म भी दुःख है, बुढ़ापा भी दुःख है, व्याधि भी दुःख है, मरण भी दुःख है, अप्रियों का संयोग भी दुःख है, प्रियों का वियोग भी दुःख है। इच्छा करने पर किसी चीज का न मिलना भी दुःख है।"

"भगवान! आप धन्य हैं।"

"भिक्षुओ! सुनो। यदि गहराई से विचार किया जाए तो पाँचों उपादान स्कन्ध दुःख हैं।"

"तथागत! नाम बताएँ?"

"भिक्षुओ! रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान—इन्हीं पाँचों को उपादान स्कन्ध कहा जाता है?"

"भगवान! रूप उपादान स्कन्ध क्या है?"

"भिक्षुओ! पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि—ये चारों महाभूत रूप स्कन्ध हैं। रूप अनात्मा है। इसलिए यह पीड़ादायक होता है। रूप में मेरा रूप ऐसा होता, मेरा रूप ऐसा नहीं होता, यह पाया जाता है।"

भगवान बुद्ध ने रूप की व्याख्या करने के उपरान्त भिक्षुओं से प्रश्न किया, "भिक्षुओ! रूप नित्य है या अनित्य है?"

"भन्ते। रूप नित्य नहीं अपितु अनित्य है।"

"भिक्षुओ! जो अनित्य है वह दुःख है या सुख?"

"भन्ते! दुःख है।"

"भिक्षुओ! जो अनित्य दुःख और विकारग्रस्त होने वाला है; क्या उसे यह मानना उचित है—यह अनित्य पदार्थ मेरा है, यह मैं हूँ। यह मेरा आत्मा है।"

"भन्ते! नहीं, नहीं, नहीं।"

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

"भन्ते! वेदना क्या है?"

"भिक्षुओ! वस्तुओं अथवा उनके विचार के सम्पर्क में आने पर हमें जो सुख, दुख या न सुख-दुख के रूप में अनुभव होता है, उसे वेदना कहा जाता है।"

"भन्ते! वेदना नित्य है या अनित्य है।"

"अनित्य।"

"तथागत! संज्ञा क्या है?"

"भिक्षुओ! वेदना के उपरान्त हमारे मस्तिष्क पर पूर्वांकित संस्कारों द्वारा जो हम पहचानते हैं, उसे संज्ञा कहते हैं। जैसे, यह वही देवदत्त है।"

"भन्ते! संस्कार से क्या तात्पर्य है?"

"भिक्षुओ। रूपों की वेदनाओं और संज्ञाओं का जो संस्कार मस्तिष्क पर पड़ा रहता है और जिसकी सहायता से हम चीज विशेष को पहचानते हैं, उसे संस्कार कहा जाता है। वितर्क, विचार, लोभ, द्वेष, मुदिता, करुणा आदि मानसिक वृत्तियों को संस्कार कहा जाता है।"

"भन्ते! विज्ञान से आपका क्या तात्पर्य है?"

"चेतना या मन का ही नाम विज्ञान है। भिक्षुओ! ये पाँचों स्कन्ध जब किसी मनुष्य की तृष्णा के विषय होकर सन्निकट आते हैं, तो इन्हें ही उपादन स्कंध कहा जाता है। ये पाँचों उपादन स्कन्ध दुख रूप हैं।"

दुःख-समुदय

"भन्ते! दुःख का हेतु क्या है?"

"भिक्षुओ। दुःख का हेतु तृष्णा है। तृष्णा कई प्रकार की होती है। जैसे, काम-भोग की तृष्णा, भव की तृष्णा, विभव की तृष्णा।"

"भन्ते। तृष्णा का सम्बन्ध हमारी इन्द्रियों और मन से है।"

"हाँ, इन्द्रियों के जितने प्रिय विषय या काम हैं, उन विषयों के साथ संपर्क, उनका ख्याल, तृष्णा को पैदा करता है। तृष्णा के कारण संसार में महाभारत मचा हुआ है।"

"भन्ते! आपके उपदेश से हमारे ज्ञान-चक्षु उन्मीलित होते चले जा रहे हैं।"

"भिक्षुओ! आगे सुनो। काम (=प्रिय भोग) के लिए ही राजा भी आपस में लड़ते हैं। क्षत्रिय भी क्षत्रियों से, ब्राह्मण भी ब्राह्मणों से, गृहपति (=वैश्य) भी गृहपति से, माता भी पुत्र से, पुत्र भी माता से, पिता पुत्र से, पुत्र पिता से, भाई भाई से, बहिन भाई से, भाई बहिन से, मित्र मित्र से लड़ते हैं। वह आपस में कलह-विग्रह-विवाद करते हैं एक-दूसरे पर, दंड से भी, शस्त्र से भी आक्रमण करते

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

हैं। वह इससे मर भी जाते हैं, मरण-समान दुःख को प्राप्त होते हैं।"[1]

बुद्ध के विचार से प्रत्येक घटना के पीछे कोई न कोई कारण (हेतु) अवश्य होता है। यदि दुःख है तो उसका कारण भी है। बुद्धत्व कारण और प्रभाव तत्त्व पर ध्यान केन्द्रित करता है। सब कारण के दायरे में आता है। कोई भी चीज अकारण नहीं है। इस संसार अहेतुक कुछ भी घटित नहीं। चाहे कोई भी घटना हो, उसके पीछे कोई न कोई कारण अवश्य होता है। मानव-जीवन में जो दुःख है उसका कारण भी है। अतः यदि हम दुःख के उस कारण को समझ जाएं तो उससे बचने का उपाय आसानी से ढूँढ़ा और कार्यान्वित किया जा सकता है।

"भन्ते। दुःख के कितने कारण हैं?"

"बारह। अन्तिम कारण अविद्या है। अविद्या से शुरू होकर दुःख तक बारह कड़ियों की एक श्रृंखला है।"

"भन्ते! उस श्रृंखला का क्या नाम है?"

"भिक्षुओ! द्वादश निदान। यह श्रृंखला पूर्व जन्मों से चली आ रही है और वर्तमान जीवन से अग्रसर होती हुई दूसरे जन्म तक चली जाएगी।"

"भन्ते! जरा 'द्वादश निदान' को भलीभाँति समझाने की कृपा करें?"

"भिक्षुओ! द्वादश निदान जरा, मरण से आरम्भ होकर जाति, भव, उपादान, तृष्णा, वेदना, स्पर्श, षडायतन, नामरूप, विज्ञान, संस्कार से होते हुए अविद्या तक पहुँचता है। यही भवचक्र है। 'द्वादश निदान' जिस कार्य-कारण सिद्धान्त पर आश्रित है उसे प्रतीत्य-समुदाय कहते हैं।"

"भन्ते। तीसरा आर्य-सत्य कौन-सा है?"

"भिक्षुओ। तीसरा आर्य-सत्य दुःख-निरोध या दुःख विनाश है।"

"भन्ते! दुःख-विनाश को समझावें?"

"भिक्षुओ। तृष्णा जो दुःख का हेतु है, सम्पूर्ण रूप से उसके परित्याग को, विनाश को दुःख-निरोध या दुःख विनाश कहते हैं। जब प्रिय विषयों एवं तत्सम्बन्धी विचारों, विचारों के विकल्पों से तृष्णा नष्ट हो जाती है तो तृष्णा का निरोध होता है।"

"भन्ते! तृष्णा से मुक्त होने से क्या लाभ होते हैं?"

"भिक्षुओ! तृष्णा के विनष्ट होने पर उपादान (=विषयों के संग्रह करने) का निरोध होता है। उपादान के निरोध से भव (लोक) का निरोध होता है, भव का निरोध होने पर जन्म (=पुनर्जन्म) का निरोध होता है। जन्म-निरोध से बुढ़ापा, मरण, शोक, रोना, दुःख, मन की खिन्नता, हैरानगी विनष्ट होती है। अर्थात् सभी प्रकार के दुःखों का विनाश हो जाता है।" दुख-निरोध भगवान बुद्ध के धर्म का श्रेय-प्रेय है।

1. मज्झिम—निकाय, 1/2/3

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

तथागत के उपदेश से पाँचों भिक्षु गद्गद हो गए। पुनः उन सबने प्रश्न किया, "भन्ते! दुःख-विनाश या दुःख निरोध-गामिनी प्रतिपद जो चौथा आर्य सत्य है, उसको व्याख्यायित करें?"

"भिक्षुओ! जो मार्ग दुःख निरोध की ओर ले जाने वाला है, उसे आर्य अष्टांगिक मार्ग कहते हैं।"

"भन्ते! यद्यपि आपने हमें पहले अष्टांगित मार्ग से अवगत कराया है पर वह केवल अष्टांगिक मार्ग के नामों की पहचान है। कृपया व्यापक रूप से उन पर प्रकाश डालें?"

"ठीक है। अष्टांगिक मार्ग की आठ बातों को तीन भागों में विभक्त कर उनको स्पष्ट करते हैं।"

"भन्ते! आपकी इच्छा।"

"भिक्षुओ!"

"तीन वर्ग हैं—ज्ञान, शील, और समाधि।"

"भन्ते! ठीक ज्ञान (सम्यक ज्ञान) को स्पष्ट करने की कृपा करें?"

"भिक्षुओ! सम्यक ज्ञान या ठीक दृष्टि का अर्थ है—आर्य सत्यों का ठीक-ठीक ज्ञान।"

भगवान। जरा व्यापक रूप से समझावें?

भिक्षुओ! सम्यक् दृष्टि—जब कायिक, वाचिक और मानसिक दृष्टि से भले-बुरे कर्मों का ठीक-ठीक ज्ञान हो जाता है तो उसे ठीक दृष्टि कहते हैं।

"भन्ते। सम्यक दृष्टि का अन्तिम उद्देश्य क्या है?"

"भिक्षुओ! सम्यक् दृष्टि का मुख्य उद्देश्य अविद्या का विनाश करना है।"

"भन्ते! पहले कायिक भले और बुरे कर्मों से हमें अवगत कराएँ?"

"अ-हिंसा, अ-चोरी, अ-व्यभिचार—ये तीन कायिक भले कर्म हैं।"

"और बुरे कर्म?"

"हिंसा, चोरी (यौन) व्यभिचार—ये तीनों कायिक बुरे कर्म हैं?"

"भन्ते! वाचिक भले और बुरे कर्मों का आख्यान करें?"

"भिक्षुओ। अ-मिथ्याभाषण, न-चुगली, अ-कटुभाषण, न बकवास, अलोभ—ये वाचिक भले कर्म हैं और मिथ्याभाषण, चुगली, कटुभाषण, बकवास, लोभ—ये वाचिक बुरे कर्म हैं।"

"और मानसिक?"

"भिक्षुओ! अ-प्रतिहिंसा और न झूठी धारण—ये मानसिक भले कर्म हैं और प्रतिहिंसा तथा झूठी धारणा—बुरे कर्म है। दुःख, हेतु, निरोध मार्ग का सम्यक ज्ञान

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

ही सम्यक दृष्टि (दर्शन) कहा जाता है।"

"भन्ते! ज्ञान के अन्तर्गत ठीक संकल्प भी आता है। समझावें?"

"भिक्षुओ! राग, हिंसा, प्रतिहिंसा-रहित संकल्प को ठीक संकल्प कहते हैं।"

ठीक (सम्यक्) आचार (शील)

"भन्ते! शील के अर्न्तमन कौन-सी बातों की गणना होती है?"

"भिक्षुओ! इस वर्ग के अन्तर्गत ठीक वचन, ठीक कर्म, और ठीक आजीविका की गणना होती है। शील को ठीक आचार भी कहा जाता हैं।"

"भन्ते! स्पष्ट करने की कृपा करें?"

"भिक्षुओ! ठीक वचन मनुष्यता की पहचान है। झूठ, चुगली, कटु भाषण और बकवास रहित सच्ची मधुर बातों को बोलना चाहिए।"

"और ठीक कर्म?"

"हिंसा, चोरी, व्यभिचार न करना ठीक कर्म है।"

"भन्ते! ठीक जीविका से आपका क्या तात्पर्य है?"

"भिक्षुओ! झूठी जीविका को छोड़कर सच्चे और न्यायपूर्ण अर्जन से जीवन-यापन करना ठीक जीविका है। पर, हथियार-व्यापार, प्राणी का व्यापार, मांस व्यापार, मद्य-व्यापार, विष का व्यापार झूठी जीविका है।" भन्ते यह जघन्य एवं अन्यायपूर्ण कार्य है। सारा मानव समाज ऐसे व्यापार से ग्रसित है।

समाधि (ठीक समाधि) अथवा सम्यक समाधि

"भन्ते! समाधि चित्त की एकाग्रता का केन्द्रबिन्दु है। कुशल चित्त की एकाग्रता को समाधि कहा जाता है। जरा आप इस पर व्यापक रूप से प्रकाश डालें?"

"भिक्षुओ। चित्त की वह एकाग्रता जो दोष रहित होती है और जिसका विपाक सुखमय होता है, वही सम्यक् समाधि होती है। चित्त का स्थायी परिवर्तन सम्यक् समाधि द्वारा ही संभाव्य है। सम्यक् समाधि के अन्तर्गत हम ठीक प्रयत्न, ठीक स्मृति तथा ठीक समाधि की चर्चा करेंगे।"

"भन्ते। ठीक है। पहले आप ठीक प्रयत्न को स्पष्ट करें?"

"भिक्षुओ! ठीक प्रयत्न एक प्रकार का व्यायाम है। इन्द्रियों पर संयम, बुरी भावनाओं को रोकने तथा अच्छी भावनाओं के उत्पादन का प्रयत्न, उत्पन्न अच्छी भावनाओं को कायम रखने का प्रयत्न—इन सबके समन्वित प्रयत्न को सम्यक् या ठीक प्रयत्न कहा जाता है।"

"भन्ते। सम्यक या ठीक स्मृति क्या है?"

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

"भिक्षुओ। काया, वेदना, चित्त तथा मन के धर्मों की ठीक या सम्यक् स्थितियों—उनके मलिन, क्षण-विध्वंसी आदि होने का हमेशा स्मरण रखना।"

"भन्ते! अब सम्यक् या ठीक समाधि पर प्रकाश डालें?"

"भिक्षुओ! सम्यक् या ठीक समाधि वह है जिसके द्वारा मन के विक्षेपों को हटाया जा सके। चित्त की स्थिरता की यह सर्वश्रेष्ठ स्थिति है।"

"भन्ते। आपकी शिक्षा को हम सब समझ गए।"

"अच्छी बात है। समझाओ?"

"भगवान। संसार में प्राप्त समस्त बुराइयों का उन्मूलन, अच्छाइयों का ग्रहण एवं सम्पादन तथा चित्त को संयमित करना आपके उपदेश का मूल लक्ष्य है।"

"भिक्षुओ! लगता है कि तुम लोग धर्म की ओर प्रवृत्त हो रहे हो। अब मेरी शिक्षा का मूल प्रयोजन भी सुन लो?"

"भन्ते! अनुग्रह कर अपनी शिक्षा मूल प्रयोजन से हमें अवगत कराएँ?"

"भिक्षुओ! ब्रह्मचर्य (=भिक्षु का जीवन) न तो लाभ, सत्कार और प्रशंसा के लिए है, न शील (सदाचार) की प्राप्ति के लिए, न ही समाधि प्राप्त के लिए और न ही ज्ञान-दर्शन के लिए है। है तो केवल अटूट चित्त की मुक्ति के लिए है, उसी के लिए यह ब्रह्मचर्य है, यही सार है, यही उसका अन्त है।"

"भन्ते। एक जिज्ञासा है। अगर आज्ञा हो तो प्रकट करूँ।"

"बेशक।"

"भन्ते! आपको कैसे यह ज्ञान हुआ कि यह आपका अंतिम जन्म है?"

"भिक्षुओ। जब तक मुझे चार आर्य सत्यों का तेहरा बारह आकार के यथार्थ शुद्ध ज्ञान का दर्शन न हुआ तब तक भूलकर भी मैंने यह दावा नहीं किया कि देवों, मार, ब्रह्मा सहित सभी लोक में देव-मनुष्य, साधु-ब्राह्मण सहित सभी प्राणियों में अनुपम ज्ञान को जान लिया है। जब चार आर्य सत्यों का उपर्युक्त प्रकार से तेरह-बारह आकार का यथार्थ शुद्ध ज्ञान-दर्शन मुझे हो गया तब मैंने यह घोषणा की कि देवों सहित मैंने जान लिया। मैंने ज्ञान को देखा है। मेरी मुक्ति अचल है। मेरा यह अन्तिम जन्म है। फिर अब मेरा आवागमन नहीं होगा।"

भगवान बुद्ध द्वारा उद्घाटित सत्य से पाँचों भिक्षुओं का मन परम शान्ति से उत्फुल्ल हो गया। उनके ज्ञान-चक्षु खुल गए।

अज्ञात कौंडिन्य

सर्वप्रथम भगवान के व्याख्यान एवं सत्यकथन से आयुष्मान कौंडिन्य अनुप्राणित हुआ। उसे प्रतीत्य-समुत्पाद का ज्ञान प्राप्त हुआ। इस संसार में जो कुछ उत्पन्न

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

होने वाला है, वह सब नाशवान है। संसार में सब कुछ आनित्य है। प्रत्येक क्षण हर वस्तु परिवर्तित हो रही है। कोई भी चीज स्थिर नहीं है। नित्य सत् कुछ भी नहीं है। जो कुछ है वह परिवर्तन-प्रवाह मात्र है।

पाँच बातें घटित अवश्य होंगी—जो प्राणी इस संसार में जन्मा है, वह शैशवावस्था तथा यौवनावस्था को क्रमशः पार करता हुआ वृद्धावस्था की ओर अवश्य जायेगा। बीमार होने वाला बीमार अवश्य होगा। मरने वाला अवश्य मरेगा। जिस वस्तु का क्षय होने वाला है, वह अवश्य नष्ट होगी। नश्वर वस्तु का अन्त अवश्य होगा।

आयुष्मान कौंडिन्य को क्षणभंगुर संसार का ज्ञान तो हुआ पर एक शंका हुई कि ईश्वर है कि नहीं। अतः उसने प्रश्न किया, "भन्ते! जगत नियन्ता ईश्वर तो अमर है न?"

"कौंडिन्य! नहीं। यदि कोई लोकातीत ईश्वर है तो वह भी अनित्यता के नियम को नहीं टाल सकता।"

जब आयुष्मान कौंडिन्य को यह विश्वास हो गया कि जो कुछ उत्पन्न होने वाला है, वह सब नाशवान है तो उसे विरज-निर्मल धर्म का नेत्र उत्पन्न हुआ।

बस क्या? इस पावन-भूमि पर भगवान बुद्ध का धर्मचक्र घूमने लगा। धर्म-चक्र प्रवर्तन से देवता फूले न समाए। उनकी इस घोषणा से सारा संसार निनादित हो उठा, "भगवान ने यह वाराणसी के ऋषिपत्तन मृगदाव में उस अनुपम धर्म के चक्के को घुमाया जो कि किसी भी साधु, ब्राह्मण, देवता, मार, ब्रह्मा या संसार के किसी व्यक्ति से रोका नहीं जा सकता।"

भूमि के देवताओं के उद्घोषित शब्द को सुनकर चतुर्महाराजिक देवता चुप कैसे रहते? उन सबने भी शब्द सुनाया। इस प्रकार भूमि के देवताओं के मुँह से उच्चरित शब्द को सुनाने का एक सिलसिला आरम्भ हो गया। त्रयस्त्रिंश देवताओं, याम देवताओं, तुषित देवताओं, निर्माण रति देवताओं, वशवर्ती देवताओं तथा ब्रह्मकायिक आदि देवताओं ने शब्द सुनाया।

इस प्रकार उसी क्षण में यह शब्द ब्रह्मलोक तक पहुँच गया और दस हजारों वाला ब्रह्मांड कंपित, सम्प्रकंति=सांवेपित हुआ। देवताओं के तेज से भी बढ़कर बहुत भारी, विशाल प्रकाश लोक में उत्पन्न हुआ।

भगवान बुद्ध ने आयुष्मान कौंडिन्य पर अपनी अपार कृपा प्रकट की। उन्होंने यह उदान कहा, "ओहो! कौंडिन्य ने जान लिया (=अज्ञात्)। ओहो! कौंडिन्य ने जान लिया।"

भगवान् बुद्ध के उपर्युक्त कथन के बाद कौंडिन्य का नाम आज्ञात कौंडिन्य पड़ गया।

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

जब कौंडिन्य भगवान बुद्ध के धर्म का साक्षात्कार कर, प्राप्त कर=विदित कर, अवगाहन कर संशय रहित, विवाद-रहित, बुद्ध-धर्म विशारद और स्वतंत्र हो गया तब भगवान बुद्ध से बोला, "भगवान के पास से मुझे प्रव्रज्या (श्रमणेर होने का संन्यास) मिले, उपसम्पदा (भिक्षु होने का संन्यास) मिले।"

भगवान बुद्ध का ललाट दमक उठा। उन्होंने स्नेहमयी मधुरवाणी में कहा, "भिक्षु! आओ, यह धर्म सुन्दर प्रकार से व्याख्यात है। अच्छी तरह दुःख के नाश के लिए ब्रह्मचर्य का पालन करो।"

यही आयुष्मान कौंडिन्य की उपसम्पदा हुई।

यथागत ज्ञान

पाँचों भिक्षुओं को भगवान बुद्ध द्वारा अन्वेषित एवं प्रवर्तित धर्म का पक्का ज्ञान हो गया। उन्हें इस बात का पक्का विश्वास हो गया कि भगवान बुद्ध ने जिस धर्म का उपदेश दिया है वह यथाकृत, यथाकल्पित, यथावांछित तथा यथाआरोपित नहीं अपितु सत्य पर अधिष्ठित है, यथार्थ पर आधारित है। सारा अष्टांगिक मार्ग यथाभूत सत्य है, सच्चाई का मार्ग है। उसका सारा ताना-बाना सत्य पर अवलम्बित है। वह वायवीय नहीं अपितु सद्धम्म है, सत्यधर्म है।

यथाभूत धर्म सही अर्थों में प्रतिक्षण स्वयं प्रकट होता रहता है। वह जब जैसा है, तब वैसा है। जो सत्य अपने आप प्रकट होता है, उसे नैसर्गिक सत्य कहा जाता है। वास्तव में सत्य वही होता है जिसे आँखों से देखा जा सके, अंग-प्रत्यंग का चित्त द्वारा अवलोकन कर अनुभव के निकस पर कसा जा सके।

भक्तिकालीन सन्तों एवं भक्तों ने अपने सत् साहित्य में परमपिता परमेश्वर के लिए जो सच्चनाम था शतनाम का प्रयोग किया है, वह सच्चानाम शब्द पचीस सौ वर्ष पहले भगवान बुद्ध के लिए व्यवहृत हुआ था। क्योंकि उनका चित्त और उनकी चित्तवृतियाँ सदैव सच में ही समाहित रहीं।

आयुष्मान वप्प, भद्दिय आदि को प्रव्रज्या

जब आयुष्मान कौंडिन्य को भगवान बुद्ध ने प्रव्रज्या तथा उपसम्पदा दे दी तब अन्य पंचवर्गीय भिक्षु भी भगवान से प्रव्रज्या और उपसम्पदा ग्रहण करने के लिए ललक उठे। उनकी श्रद्धा और सच्ची निष्ठा को देखकर बुद्ध फूले न समाये। उनका हृदय गद्गद् हो गया। सर्वप्रथम बुद्ध ने उन्हें प्रतीत्य-समुत्पाद का ज्ञान कराया। बुद्ध ने उन्हें सत्य का ज्ञान कराने के लिए उपदेश दिया। वह बोले, "भिक्षुओ। जो कुछ उत्पन्न होने वाला है, वह सब नश्वर हैं। शाश्वत कुछ भी नहीं

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

है। भगवान के उपदेश से उन्हें विमल धर्म-चक्षु उत्पन्न हुआ। धर्म का साक्षात्कार होने पर उनके चित्त का सारा मल काफूर हो गया।"

हाथ जोड़कर वे बोले, "भन्ते! आपसे हमें प्रव्रज्या मिले, उपसम्पदा मिले।" भगवान बुद्ध ने उनके समर्पण को देखकर उन पर अनुग्रह किया। बोले, "भिक्षुओ! आओ, धर्म सु-व्याख्यात है, अच्छी तरह दुःख के क्षय के लिए ब्रह्मचर्य का पालन करो।"

इस प्रकार भगवान बुद्ध की अपार करुणा और औदार्य से पंचर्गीय भिक्षुओं को उपसम्पदा प्राप्त हुई।

भोजन-व्यवस्था

ऋषि-पतन मृगदाव में भोजन-व्यवस्था भिक्षा-वृत्ति पर आश्रित थी। अतः हर भिक्षु को भिक्षाचर्या करनी पड़ती थी। भिक्षु के लिए धन और अन्न संचय वर्जित था। हर भिक्षु अपरिग्रही होता था। अतः बुद्ध द्वारा प्रव्रज्या तथा उपसम्पदा प्राप्त भिक्षु गृहस्थों तथा दुकानदारों से अपने भिक्षा-पात्र में उतनी ही भिक्षा ग्रहण करता था जितने से उसकी तथा साथियों की उदर-पूर्ति हो सके।

बुद्ध का संदेश और सत्य-धर्म सारनाथ के चारों ओर पछुवाँ हवा के समान प्रसरित होकर हर चौखट पर दस्तक देने लगा। गृहस्थ ही नहीं अपितु आदिवासी भी भिक्षुओं के भिक्षा-पात्र को फल और अन्न से भर देना चाहते थे। पर, काम और तृष्णा मुक्त भिक्षु आवश्यकता से अधिक ग्रहण नहीं करते थे। भगवान बुद्ध का सुझाव था कि भिक्षा में सप्रेम जो भी खाद्य पदार्थ प्राप्त हो, उसे ग्रहण कर लिया जाये। दाता की जाति-पाँति का ध्यान न रखा जाय। दलित, डोम, धरिकार, धीवर, चाण्डाल आदि सभी के हाथों की भिक्षा ग्राह्य है। भगवान बुद्ध ने जाति-पाँति, छूत-अछूत, ऊँच-नीच आदि की सामाजिक भेदभाव की दीवार को ढहा दिया। उन्होंने समतावादी दृष्टि की प्रतिष्ठा की।

तीन भिक्षु जो कुछ भिक्षा में माँग कर लाते थे, उसी को आपस में बाँट कर छहों खाते थे। भोजन साथ-साथ ग्रहण करते थे।

आयुष्मान महानाम और अश्वजित को प्रव्रज्या और उपसम्पदा

आयुष्मान महानाम और अश्वजित भी निर्मल धर्म-नेत्र को प्राप्त करने के लिए आतुर हो उठे। उन दोनों ने भगवान से विनम्रतापूर्वक प्रव्रज्या और उपसम्पदा प्राप्त करने के लिये निवेदन किया। भगवान ने उनके निवेदन को सहर्ष स्वीकार कर लिया।

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

भगवान बुद्ध ने यथाभूत धर्म से उन्हें अवगत कराते हुए कहा, आयुष्मान महानाम एवं अश्वजित! यह सबसे बड़ा सत्य है, "संसार में जो कुछ उत्पन्न होने वाला है, वह सब नश्वर है। उत्पाद और विनाश सतत् चलता रहा है। जिसने भूमि पर जन्म लिया है, वह एक दिन अवश्य मरेगा। शाश्वत् कुछ भी नहीं है। न आत्मा न परमात्मा।"

इस प्रकार महानाम और अश्वजित को प्रव्रज्या और उपसम्पदा प्राप्त हुई और अर्हतों की संख्या छः हो गयी।

भिक्षुओं को भगवान बुद्ध का संबोधन

भगवान बुद्ध बोले, "भिक्षुओ! क्या आप लोग सत्य से अवगत होना चाहते हैं?"

"भन्ते! अवश्य।"

"तो अपनी स्मृति और अपने मन को सतर्क कर मेरी बातों को सुनो?"

पाँचों भिक्षु पद्मासन लगाकर बैठ गए।

भगवान बोले, "भिक्षुओ। रूप (=भौतिक पदार्थ) अन-आत्मा है। यदि रूप (पुरुष) का आत्मा होता तो यह रूप पीड़ादायक न बनता और रूप में—'मेरा रूप ऐसा होता', मेरा रूप ऐसा न होता यह पाया जाता। चूँकि भिक्षुओ! रूप अनात्मा है। इसलिए पीड़ादायक होता है; और रूप में—मेरा रूप ऐसा होता, मेरा रूप ऐसा न होता—यह नहीं पाया जाता।"[1]

भिक्षु समवेत स्वर में बोल उठे, "भगवान! आप धन्य हैं।"

"भिक्षुओ। वेदना अनात्मा है। संज्ञा भी अनात्मा है, संस्कार भी अनात्मा है। विज्ञान भी अनात्मा है। यदि विज्ञान (भौतिक पदार्थ) आत्मा होता तो पीड़ादायक न बनता; और विज्ञान में—मेरा विज्ञान ऐसा न होता—यह नहीं पाया जाता।"[2]

इस उपदेश के बाद उन्होंने प्रश्न किया। भिक्षुओ। रूप नित्य है या अनित्य?

"भन्ते अनित्य।"

"जो अनित्य है। वह दुःख है या सुख?"

"भन्ते! दुःख।"

भिक्षुओ! जो अनित्य दुःख, और विकार को प्राप्त होने वाला है; क्या उसके लिये यह समझना उचित है—यह (अनित्य पदार्थ) मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा आत्मा है?

"नहीं, भन्ते!"

---

1. पिनय—पिटक, महावग्ग—अनुवादक राहुल सांकृत्यायन, पृ. 117
2. वही।

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

"भिक्षुओ! तो क्या मानते हो कि वेदना नित्य है या अनित्य है? संज्ञा नित्य है या अनित्य है, संस्कार नित्य है या अनित्य है, विज्ञान नित्य है या अनित्य है?"

"भन्ते। संसार में जो कुछ उत्पन्न होता है, वह नित्य नहीं अपितु अनित्य होता है। अतः रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान—पाँचों उपादान स्कंध अनित्य हैं। क्षणभंगुर, विनाशवान हैं।"

"साधु, साधु, साधु। क्या आप सब और स्पष्टीकरण चाहते हैं?"

"भन्ते! हाँ।"

"भिक्षुओ। जो कुछ भी भूतं, भविष्य, वर्तमान संबंधी, भीतरी या बाहरी स्थूल या सूक्ष्म अच्छा या बुरा, दूर या नजदीक रूप है, सभी रूप न मेरा है, न मैं हूँ, न वह मेरा आत्मा है—ऐसा समझना चाहिए। इस प्रकार ठीक तौर से समझकर देखना चाहिए। वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान को भी इसी तरह समझना चाहिए। इनमें कोई भी न मेरा है, न मैं हूँ, न वह मेरा आत्मा है।"

"भन्ते! आपके उपदेश से अविद्या से हमें मुक्ति मिल गई। चित्त का सारा मल विनष्ट हो गया। शुद्धधर्म का ज्ञान हो गया।"

"भिक्षुओं। ऐसा देखते हुए, विद्वान, आर्य-शिष्य रूप से उदास होता है, वेदना से उदास होता है, संज्ञा से उदास होता है, संस्कार से उदास होता है, विज्ञान से उदास होता है। उदास होने पर उनसे विराग को प्राप्त होता है। विराग के कारण से मुक्त होता है। मुक्त होने पर 'मुक्त हूँ।' ऐसा ज्ञान होता है और जानता है=आवागमन नष्ट हो गया है, ब्रह्मचर्यवास पूरा हो गया जो करना कराना था, सो कर लिया, अब यहाँ कुछ करने को नहीं है।"[1]

भगवान बुद्ध के मुँह से यथाभूत ज्ञान तथा पाँचों उपादान स्कंधों के स्पष्ट विश्लेषण से पाँचों भिक्षुओं के धर्म-चक्षु उन्मीलित हो गए। उनका चंचल मन एकाग्र, शान्त और वश में हो गया। मन को जीतना संसार पर विजय पाना है।

भगवान के सत् उपदेश को हृदयग्राही बनाने से उनके मन के सारे विकार काफूर हो गए। उनका चित्र अस्रवों (=मलों) से विलग हो मुक्त हो गया। वे अर्हत् हो गए।

---

1. चराचर जगत का उपादान कारण रूप आदि पाँच स्कंधों (समूहों) में बंटा हुआ है। सारे भौतिक पदार्थ रूप स्कंध में हैं। साधारणतः रूप व्रत है जिसमें भारीपन और स्थान घेरने की योग्यता हो। जिसमें न भारीपन है और न जो जगह को घेरता है, वह विज्ञान-स्कंध है। रूप के संबंध में विज्ञान की तीन अवस्थाएँ हैं—वेदना (अनुभव करना) संज्ञा (जानकारी प्राप्त करना) और संस्कार=चित्त में उक्त जानकारी और अनुभव का असर रह जाना।

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

भोगवाद की कोख से वैराग्य का प्रादुर्भाव

जिस समय भगवान बुद्ध ने पंचवर्गीय भिक्षुओं की ऋषि-पत्तन मृगदाव में प्रव्रज्या और उपसम्पदा की दीक्षा दी, उस समय महानगरी वाराणसी में एक प्रख्यात श्रेष्ठी निवास करता था। उसके पास एक पुत्र था। नाम था यश कुलपुत्र। पिता के घर में लक्ष्मी पालथी मारकर बैठी हुई थीं। सोने-चाँदी, हीरा, रत्न आदि का अपार भण्डार था उसके पास। श्रेष्ठी अपने पुत्र को भोग-विलास में सराबोर रखना चाहता था। अतः उसने पुत्र के ऐश के लिए हेमन्त, ग्रीष्म तथा वर्षा के अनुसार तीन अलग-अलग विलास भवन बनवा दिया था। ऋतु परिवर्तन के साथ यश कुलपुत्र जिस प्रासाद में रहता था, उसमें देश-विदेश की नृत्य-कला पारंगत एवं गंधर्व विद्या विशारद रानियाँ उसे घेरे रहती थीं। वारांगनाएँ अनेक प्रकार के लुभावने नृत्यों, अपने अंग-प्रत्यंग के मुक्त एवं स्वच्छन्द प्रदर्शन, स्वामी के मनोनुकूल मधुर गीतों के आलापों तथा वाद्यों को बाजा बजाकर उसे रिझाया करती थीं। आँख, कान, त्वचा, नाक, जीभ आदि पाँचों इन्द्रियाँ जो मन के चारों ओर संपूजित हैं, अपने अनुकूल भोगों के पाकर जुड़ जाती थीं। यश कुलपुत्र ने इन्द्रिय विषयों के विशिष्ट समुच्चय का छककर उपभोग किया। सुरा और सुन्दरी के उपभोग में वह इतना अधिक रत था कि सत् विचारों के मनन और चिन्तन का उसके पास अवकाश ही नहीं था।

अन्ततः वह भोग-विलास एवं आमोद-प्रमोद की पराकाष्ठा पर पहुँच गया। मानव जीवन की यह सबसे बड़ी विशेषता है कि जब कोई श्रेष्ठी या नृपति भोग या हिंसा के चरम शिखर पर पहुँच जाता है तो भोग और हिंसा के प्रति उसके मन में घृणा उत्पन्न हो जाती है। उसका मन, राग, द्वेष, काम, हिंसात्मक भाव, अहंकार, तृष्णा और लोभ आदि से उन्मुक्त हो जाता है। उसका मन सदाशयता से आप्लावित हो उठता है। रात के समय यश कुलपुत्र के प्रासाद में दीपक जगमगा रहे थे। शयनकक्ष में गौरांगी युवतियाँ नंग-धडंग अपनी कोमल बाहों को उसके शरीर पर रखकर सोई हुई थीं। सारा-कक्ष इत्र, चंदन के छिड़काव के कारण महमहा रहा था। अचानक उसने एक अद्‌भुत स्वप्न देखा। उसकी नींद उचट गई। वह उठकर बैठ गया और ध्यान लगाकर कमरे को देखने लगा। कहीं कोई वारांगना हाथ में वीणा लेकर अस्त-व्यस्त पड़ी थी। किसी के गले में मृदंग था तो किसी के हाथ में ढोल और मजीरा। रमणियों के काली नागिन से बाल इधर-उधर उलझे हुए थे। किसी के मुँह से लार गिर रही थी तो कोई बड़बड़ा रही थी। बीभत्स दृश्य को देखकर उसके मन में उसी प्रकार की जुगुप्सा उत्पन्न हुई जिस प्रकार श्मशान में इधर-उधर पड़ी लाशों को देखकर मन भन्ना उठता है।

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

किसी मुर्दे को चिता पर जलते हुए देखकर कठोर से कठोर मनुष्य का हृदय द्रवित हो जाता है और विवेक जाग्रत हो उठता है। उसी भाँति यश कुलपुत्र के मन में, कायिक सुख, भोग-विलास और रूप लावण्य के प्रति घृणा उत्पन्न हो गई। पलभर में काया-पलट हो गया। राग और द्वेष से वैराग्य-भाव उत्पन्न हो गया। सहज भाव से उसके मुँह से यह उदान निकल पड़ा। "हा! संतप्त!! हा! पीड़ित!!"

वाराणसी से सारनाथ कुछ ही कोस था पर ऋषिपत्तन मृगदाव और यश कुलपुत्र के घर के बीच घना जंगल था। वह पैदल ही चल पड़ा। चलता गया। पीछे मुड़कर नहीं देखा। वरुणा तट पर पहुँचकर मल्लाहों से उसने सारनाथ का पता पूछा। बेचारे दीन-हीन तो थे पर उनका हृदय करुणा का सागर था। वे नाव से पार उतारकर उसे ऋषिपतन मृगदाव पहुँचा दिये।

प्रातःकाल का समय था। भगवान टहलते हुए शुद्ध वायु का लुत्फ ले रहे थे। उनकी निगाह दिव्य तो थी ही। अजीब चुम्बकत्व और आकर्षण था उनके व्यक्तित्व में। यह कुलपुत्र अनायास उनके सन्निकट पहुँचा गया। दोनों हाथ जोड़कर वह उनके कमलवत चरणों पर गिर पड़ा। निर्मल एवं मधुर स्वर में बोला, "भगवान! मैं दुखियारा हूँ। मार का मारा हूँ। मन्मथ और लक्ष्मी से पिण्ड छुड़ाकर आपकी शरण में आया हूँ। मेरा उद्धार कीजिए।" भगवान बुद्ध बोले, "आगन्तुक! घबराओ मत। नाम, गोत्र, घर और निवास-स्थान का पता तो बताओ?"

"भगवान! मेरा नाम यश कुलपुत्र है। वाराणसी के श्रेष्ठी का पुत्र हूँ। संतप्त हूँ। पीड़ित हूँ। आप मुझे धर्म सिखाने की कृपा करें?"

"यश! यह है अ-संतप्त!! यश! यह है—अ-पीड़ित!! आ बैठ, तुझे धर्म बताता हूँ। यश!"

यश कुलपुत्र की खुशी का ठिकाना न रहा। सोने का जूता उतारकर वहाँ पहुँचा जहाँ भगवान् बुद्ध खड़े थे। अभिवादन कर एक ओर बैठ गया।

भगवान ने पूछा, "यश कुलपुत्र! आनुपूर्वी कथा सुनना चाहते हो?"

"हाँ, भगवान्! हाँ।"

भगवान ने अनुकम्पा कर दान-कथा, शील-कथा, स्वर्ग-कथा, कामवासनाओं का दुष्परिणाम, उपकार-दोष, निष्कामता का माहात्म्य आदि से यश कुलपुत्र को अवगत कराया।

भगवान बुद्ध के मुँह से आनुपूर्वी कथा सुनकर यश कुलपुत्र भव्यचित्त, मृदुचित्र, आह्लादित चित्त एवं प्रसन्नचित्त दिखलाई पड़ने लगा। निर्मल हो जाने पर भगवान ने समझा यश कुलपुत्र उपदेश के योग्य है।

भगवान उसे यह देशना (उपदेश) दिया। इसके बाद दुःख, समुदय (=दुःख

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

का कारण, निरोध दुःख का नाश) और मार्ग=दुःख नाश का उपाय समझाया।

बस क्या? आसन पर बैठे-बैठे यश कुलपुत्र को "जो कुछ उत्पन्न होने वाला है, वह नाशवान है।"—यह विरज=निर्मल धर्म-चक्षु प्राप्त (उत्पन्न) हुआ।

यश कुलपुत्र की खोज एवं श्रेष्ठी गृहपति की प्रव्रज्या

प्रातःकाल सूर्य की सुनहली रश्मियाँ पेड़ों, प्रासादों, कलशों एवं कंगूरों पर प्रसरित होकर प्रकृति की छटा को अनुपम करने लगीं। महानगरवासी ताम्र-लोटा, तौलियाँ और धोतियाँ हाथ में थामे गंगा-स्नान करने चल पड़े। नगर के मंदिरों के घंटे बजने लगे। श्रद्धालु महिलाएँ भजन गाते हुए गंगा मैया की ओर चल पड़ीं।

यश कुल पुत्र की माता छत पर जाकर पुत्र के शयनागार की ओर झाँकने लगीं। पर जब वह बाहर नहीं निकला तो उसके मन में हलचल मच गई। लौंड़ी को गोहारा। वह बोली, "माताजी! भइया कहीं चले गए।"

दौड़ी-दौड़ी यश कुलपुत्र की माँ पति के पास गई और बोली, "गृहपति। तुम्हारा पुत्र घर छोड़कर कहीं भाग गया।" श्रेष्ठी गृहपति ने पत्नी को दिलासा देते हुए कहा, "प्रिये कुलपुत्र! घबराओ मत। पता लगाता हूँ।"

श्रेष्ठी गृहपति ने कुछ घुड़सवारों को पुत्र की खोज के लिए चारों ओर भेज दिया। अनायास उसके पैर ऋषिपत्तन मृग-दाव की ओर चल पड़े। कच्चा पथ था। पथ पर पसरी धूल पर यश कुलपुत्र के जूतों के अंकित चिह्न साफ-साफ दिखलाई पड़ रहे थे। उन्हें देखते-देखते वह ऋषिपत्तन मृगदाव के छोर पर पहुँच गया।

भगवान बुद्ध की दृष्टि श्रेष्ठी गृहपति पर पड़ गई। उनके मन में ऐसा विचार हुआ कि श्रेष्ठी गृहपति के व्यामोह पर विराम लगाने के लिए योगबल द्वारा यश कुलपुत्र को छिपा लेना बाप-बेटे दोनों के लिए मंगलमय और शुभ होगा। उनका योग बल व्यवहृत हो गया। पुत्र को कहीं न देखकर वह भगवान के पास गया और बोला, "भन्ते! क्या आपने मेरे पुत्र यश कुलपुत्र को यहाँ कहीं देखा है?"

संकेत करते हुए सहज भाव से भगवान बुद्ध बोले, "गृहपति! भूमि पर आसन ग्रहण करें। यहाँ बैठे-बैठे यश कुलपुत्र को हूबहू देख सकोगे।"

भगवान का आश्वासन पाकर श्रेष्ठी गृहपति उनका अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। भगवान ने आनुपूर्वी कथा, जैसे दानकथा, शीलकथा, स्वर्गकथा, कामवासनाओं का दुष्परिणाम, उपकार दोष, निष्कामता माहात्म्य प्रकाशित की। कथा-श्रवण से श्रेष्ठी गृहपति को धर्म-चक्षु उत्पन्न हुआ। उसका चित्त मलों से मुक्त हो गया।

श्रद्धापूर्वक वह भगवान से बोला, "मैं आप (=भगवान बुद्ध) की शरण में

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

जाता हूँ। मैं धर्म की शरण जाता हूँ। मैं भिक्षु-संघ की शरण जाता हूँ। आप मुझे अंजलिबद्ध शरणागत उपासक स्वीकारें।"

कितने सौभाग्य और इतिहास की बात है! श्रेष्ठी गृहपति संसार ने तीन बार (बुद्ध की शरण जाता हूँ, धर्म की शरण जाता हूँ, संघ की शरण जाता हूँ) वचनों वाला प्रथम उपासक हुआ।

भगवान बुद्ध जब श्रेष्ठी गृहपति को धर्मोपदेश दे रहे थे तो यश कुलपुत्र भी धर्मोपदेश की प्रक्रिया को ध्यान से देख भी रहा था और कान से सुन भी रहा था। गंभीर चिंतन से उसका चित्त अलिप्त हो गया। तत्काल वह आस्रवों (दोषों=मलों) से मुक्त हो गया। भगवान तो अन्तर्यामी और प्रज्ञा चक्षु थे ही। तुरन्त ताड़ गए कि यश कुलपुत्र का मन-विकारों और मलों से मुक्त होकर विशुद्ध हो गया है। अब वह गृहस्थ-सुख भोगने योग्य नहीं रह गया है। यह सोचकर उन्होंने अपने योग-बल को हटा लिया। भगवान की ऋद्धि का प्रभाव हटते ही श्रेष्ठी गृहपति ने अपने पुत्र को सामने बैठा हुआ देखा। यश कुलपुत्र भी उसे ध्यान से देखने लगा।

पुत्र को गार्हस्थ्य जीवन की ओर मोड़ने के लिए श्रेष्ठी गृहपति बोला, "यश! तुम्हारे वियोग में तेरी माँ शोकाकुल होकर छाती पीट रही है। घर चलकर माँ को जीवनदान दो।"

यश कुलपुत्र की प्रज्ञा तो जागृत हो गई थी। वह भगवान बुद्ध की ओर देखने लगा। उसे ऊहा-पोह से निर्लिप्त जानकर भगवान बुद्ध ने श्रेष्ठी गृहपति से कहा, "गृहपति! क्या तुम समझते हो कि जिस प्रकार तुमने धर्म को अपूर्ण ज्ञान एवं अपूर्ण साक्षात्कार से देखा, उसी प्रकार यश ने भी देखा है? जिस समय तुम्हें मैं धर्म का उपदेश दे रहा था उस समय दत्तचित्त होकर उसने धर्मोपदेश की प्रक्रिया को देखा है और सुना है। प्रत्यवेक्षण करने के कारण उसका मन अलिप्त हो और आस्रवों से पूर्णतः मुक्त हो गया था। अब क्या तुम बता सकते हो कि क्या वह पहले की तरह गृहस्थावस्था की भाँति हीनावस्था में रहकर गार्हस्थ्य जीवन बिताने लायक है?"

"भगवान! नहीं।"

गृहपति को पुत्र की मुक्तावस्था का बोध कराकर भगवान बोले, "गृहपति। यश कुलपुत्र सांसारिक माया-जाल और प्रपंच से मुक्त हो गया है। अतः वह गार्हस्थ्य जीवन भोगने योग्य नहीं है।"

गृहपति को पुत्र की मुक्तावस्था का बोध कराकर भगवान बोले, "गृहपति। यश सांसारिक माया-जाल और प्रपंच से मुक्त हो गया है। अतः वह गार्हस्थ्य जीवन भोगने योग्य नहीं है।"

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

गृहपति भगवान की अर्थपूर्ण वाणी सुनकर गद्गद् हो गया। बोला, "भन्ते। आपने यश कुलपुत्र को सुलाभ किया है। उसका चित्त अलिप्त होकर आस्रवों से मुक्त हो गया है। क्या आप यश का अनुगामी भिक्षु बनाकर मेरा आज का भोजन स्वीकार करेंगे?"

"अवश्य।"

स्वीकृति पाकर गृहपति अपने आसन से उठकर भगवान का अभिवादन तथा प्रदक्षिणा करके घर की ओर चल पड़ा।

पिता के लौट जाने पर यश कुलपुत्र ने भगवान बुद्ध से निवेदन किया, "भन्ते! मुझे प्रव्रज्या दें, उपसंपदा दें।"

भगवान बोले, "भिक्षु! यह धर्म सु-व्याख्यात है। दुःख-निरोध के लिए अच्छी तरह ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करो।"

इस प्रकार यश को उपसम्पदा मिली।

गृहपति के घर भोजन

गृहपति ने घर लौटकर भगवान के भोजन और स्वागत की भव्य तैयारी की। भगवान पूर्वाह्न काल में वस्त्र धारण कर हाथ में भिक्षा-पात्र और चीवर लेकर यश को अनुगामी भिक्षु बनाकर गृहपति के घर की ओर चल पड़े। वाराणसी की गलियों में आजानु-बाहु भगवान बुद्ध के भव्य रूप के दर्शन के लिए जन-समूह उमड़ पड़ा। भगवान सबको दर्शन देते हुए यश के पिता के घर पहुँचे। समस्त परिवार उनके स्वागतार्थ सन्नद्ध था। पैर धोकर जब वह आसन पर बैठे तो यश की माता और पत्नी ने भगवान के पास आकर अभिवादन किया और उनकी आज्ञा लेकर एक ओर बैठ गईं।

सर्वप्रथम भगवान उन्हें आनुपूर्वी कथा, जैसे—दानकथा, शीलकथा, स्वर्गकथा, कामवासनाओं का दुष्परिणाम, अपकार दोष, निष्कामता का महात्म्य प्रकाशित किया। सबके सब भव्य चित्त हो गए। उनके निर्मल चित्त को जानकर भगवान ने उन्हें दुःख समुदाय निरोध मार्ग से अवगत कराया। बुद्धों की उठने वाली देशना से आसन पर बैठे-बैठे उन्हें 'जो कुछ समुदय-धर्म है, वह निरोध-धर्म है, यह विरज= निर्मल धर्मचक्षु उत्पन्न हुआ।

धर्म का साक्षात्कार होने पर उनका मन सन्देह तथा अविद्या न से मुक्त हो गया। उन्होंने भगवान से निवेदन किया, "भन्ते! आश्चर्य है!! आश्चर्य है!! आज से आप हमें अंजलिबद्ध शरणागत उपासिकायें मानें।"

"बुद्ध की शरण जाता हूँ। धर्म की शरण में जाता हूँ, संघ की शरण में जाता

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

हूँ" इन तीन वचनों वाली संसार में दोनों प्रथम उपासिकाएँ हुईं।

भगवान तथा यश की क्षुधा उत्तम भोजन ग्रहण कर तृप्त हो गई। भोजनोपरान्त भगवान हाथ धोकर एक ओर बैठ गए। उन्होंने दोनों उपासिकाओं को धार्मिक कथा सुना-सुनाकर संदर्शन=समाझापन=समुत्तेजन=संप्रहर्षण किया और तत्पश्चात वहाँ से उठकर चल दिए।

धर्मचक्र का घुमाव

बुद्ध भगवान का धर्मचक्र तीव्र गति से घूमने। यश कुल-पुत्र प्रब्रजित हुआ। जैसे यह समाचार यश के मित्रों को प्राप्त हुआ, वे वैराग्य के लिए उद्यत हो गए। उसके अभिन्न मित्र थे—विमल, सुबाहु, पूर्णजित तथा गवांपति। उनके मन में यह दिव्य भाव जाग उठा कि जिस सद्धर्म को यशकुल-पुत्र ने अंगीकार किया है, वह साधारण नहीं अपितु महान होगा। वह सन्नास भी महान होगा और उपसम्पदा भी। वे अनुप्राणित हो गए।

मनुष्य के मन में जब जब सतोगुण एवं पावन भाव जाग्रत होता है तो वह त्याग की पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है। चारों मित्र धन-धान्य, वैभव, अट्टालिका, माता-पिता, पत्नी, पुत्र-पुत्रियों से विमुख होकर ऋषिपत्तन मृगदाव की ओर चल पड़े।

जब वे वहाँ पहुँचे तो यश कुल-पुत्र एक छायादार वृक्ष के नीचे पद्मासन लगाकर बैठा हुआ था। उसका अभिवादन कर चारों मित्र एक किनारे खड़े हो गए। यश को मित्रों के मनोभाव को भाँपने में देर न लगी। उसने मुक्त हृदय से उनका स्वागत किया। सद्धर्म में दीक्षित होने के लिए उनकी प्रबल इच्छा को देखकर यश उनके साथ भगवान बुद्ध के पास गया। अभिवादन करके चारों मित्र एक ओर बैठे और यश दूसरी ओर।

यश कुलपुत्र ने भगवान से कहा, "भन्ते! ये चारों सज्जन मेरे मित्र हैं।"

"आयुष्मान यश! ठीक है। इनके नाम से अवगत कराओ?"

"भन्ते! इनके नाम हैं—विमल, सुबाहु, पूर्णजित और गवांपति हैं।
ये भी श्रेष्ठी-अनु-श्रेष्ठियों के कुल में उत्पन्न हुए हैं।"

"यश! ये क्या चाहते हैं?"

"आपसे उपदेश और अनुशासन।"

भगवान बुद्ध ने सर्वप्रथम चारों को आनुपूर्वी कथा से अवगत कराया। भगवान के मुँह से आनुपूर्वी कथा का श्रवण कर वे धर्म-विशारद हो गए। प्रव्रज्या एवं उपसम्पदा ग्रहण करने के लिए उनका मन ललक उठा।

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

हाथ जोड़कर वे भगवान से प्रार्थना किए, "भन्ते! हमें प्रव्रज्या एवं उपसम्पदा दें।"

उनकी प्रार्थना को स्वीकार भगवान ने कहा, "भिक्षुओ! यह धर्म सु-व्याख्यात है। दुःख का क्षय करने के लिए अच्छी तरह ब्रह्मचर्य का पालन करो।" सद्धर्म में प्रव्रजित करने के बाद भगवान ने अपनी मधुरवाणी से अनेक प्रकार की धार्मिक कथाओं द्वारा उनके मन को परम शक्ति प्रदान की। फलतः वे अलिप्त हो गए। उनका मन आस्रवों से छुटकारा पा गया।

देखा देखी पाप, देखा देखी पुण्य

वाराणसी महानगर से थोड़ी दूर यश का मूल गाँव था। गाँव में उसका कुल (खानदान) बहुत बड़ा था। वहाँ उसके पचास गृही मित्र थे। यश कुलपुत्र तथा उसके चारों मित्रों के प्रव्रजित होने की कथा दावाग्नि की तरह उसके कुल गाँव में पहुँच गई। गृहमित्र सोचने लगे कि जिस सद्धर्म में यश दीक्षित हुआ है, वह साधारण नहीं अपितु महान होगा। वे भी न आव देखे न ताव, झट से मृगदाव में पहुँच गए। उन्हें देख यश फूला न समाया। अभिवादन के बाद यश ने उनसे पूछा, "गृहमित्रो! आप लोगों के यहाँ आने का क्या हेतु है?"

"यश! जिस सद्धर्म में तुम दीक्षित हुए हो, वह सर्वोपरि धर्म है। अतः हम भी भगवान बुद्ध द्वारा प्रव्रज्या और उपसम्पदा ग्रहण करना चाहते हैं?"

"भाग्यवानो! आप लोग धन्य हैं। चलो, चलें भगवान के पास।"

यश अपने गृहमित्रों के साथ भगवान के पास गया। श्रद्धालुओं को देखकर भगवान बुद्ध का हृदय करुणा से ओत-प्रोत हो गया। भगवान ने उनसे कहा, "राग-द्वेष, कामना, अंहकार, ईर्ष्या, हिंसा आदि भाव मानवता के संहारक हैं। अतः निष्कामता के पथ पर चलो। यही मध्यम मार्ग है।"

निष्कामता का महत्व सुनकर पचासों धर्म-विशारद हो गए। हाथ जोड़कर श्रद्धापूर्वक भगवान से सबने निवेदन किया, "भन्ते! हमें भी प्रव्रज्या और उपसम्पदा मिले। भगवान ने तत्काल उन्हें उपसम्पदा दे दी। भगवान द्वारा उपदेश सुनकर उनके मनों का विकार काफूर हो गया। उनके चित्त में आस्रवों का नामोनिशान पूर्णतः मिट गया। समय कितना बलवान होता है। भगवान बुद्ध द्वारा घुमाए हुए धर्म-चक्र द्वारा भगवान सहित एकसठ अर्हत् हो गए।"

वियोग-संतप्त हृदय यश का मूल गाँव

मानव-जीवन में जहाँ पति-पत्नी का संयोग मन को शीतल करता है, हृदय को आह्लादित करता है वहाँ वियोग बड़ा कष्टदाई होता है। नारियों का हृदय बड़ा

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

कोमल होता है। अतः पति-वियोग उनके हृदय को झुलसा देता है। पच्चास गृहमित्र जब प्रव्रज्या ग्रहण किये, उस समय सावन का महीना था। सावन के महीने में एक ओर प्रकृति अपनी सारी छटा पृथ्वी पर जड़-चेतन के मन को आनन्दित करने के लिए लुटा देती है और दूसरी ओर अपने परिवेश से नर-नारियों को गाने-बजाने शारीरिक कसरत और कुश्ती-कबड्डी की प्रेरणा देती है। औरतें झूला झूलती हैं और कजरी (गीत) अलापती हैं। वर्षा ऋतु में पति का संयोग मानसिक एवं शारीरिक दृष्टि से आनन्ददायक और मंगलमय होता है।

आनन्ददायी सावन के महीने में यश के गृहमित्रों ने अपने पत्नियों को वियोगाग्नि में झुलसने के लिए त्यागा था। प्रव्रज्या एवं उपसंपदा ग्रहण का समाचार जब यश कुलपुत्र के पचास गृहमित्रों के घरवालों को प्राप्त हुआ तो उनकी पत्नियों, पुत्रों, पुत्रियों तथा माताओं के हृदय में ज्वालामुखी जाग उठा। छाती पीट-पीटकर वे रोने लगीं। सारे गाँव में हाहाकार मच उठा। रो-रोकर सभी बेहाल हो गये।

जिन स्त्रियों के पति प्रव्रजित हुए थे, उनमें एक महिला सुविज्ञ तथा वाक् चतुर थी। नाम था उसका राधा वियोग-विदग्ध महिलाओं को एकत्र कर कहने लगी, "बहनो! आदिकाल से पुरुष बड़े निर्मोही होते हैं, उनके हृदय में नारी जाति के लिये न करुणा होती है न ही सहानुभूति। कहते तो अवश्य हैं कि नारी सृष्टि की अधिष्ठात्री होती है पर उनकी कथनी और करनी में धरती और आकाश का अन्तर होता है। व्यावहारिक रूप में नारी को सताने एवं प्रताड़ित करने में उन्हें आनन्द आता है। अपने तो संन्यासी बन जाते हैं पर पत्नी को पुत्र-पुत्रियों, माता-पिता के पालन-पोषण करने के लिए घर पर छोड़ देते हैं।"

उस गाँव में एक युवती थी जिसकी शादी आषाढ़ में हुई थी। वैवाहिक जीवन का अभी-अभी एक ही माह बीता था। नाम था उसका दुर्गा। राधा का समर्थन करती हुई बोली, "राधा बहन! पुरुष जाति कामासक्त एवं रूप-लोलुप होती है। जब उनकी काम-वासना उद्दामित होती है तो जवानी में अपनी पत्नियों तथा कोठों की स्त्रियों के तलुए चाटते हैं। दिन-रात चापलूसी करते हैं। मुँह से शहद टपकाते हैं। दाँत-निपोरे रहते हैं पर जैसे ही काम-वासना पूरी हो जाती है, पत्नियों पर शेर की तरह गुर्राने लगते हैं। लगता है कि नारी-जाति केवल सहने के लिए पैदा हुई है।"

राधा बोली, "दुर्गा! मानव-समाज बड़ा विचित्र है! वह पुरुष शासित है। समाज में पुरुष प्रधान होता है और नारी गौण। अतः पुरुष पत्नी को फिरकी की तरह नचाता है, ढोल की तरह पीटता है। गिरगिट की तरह रंग बदलता है।"

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

राधा का समर्थन करती हुई दुर्गा बोली, "दीदी! शासन और समाज का सारा अधिकार पुरुष के हाथ में होता है। समाज के सारे नियम, रीति-रिवाज, तथा मर्यादाओं का निर्माता सदा से पुरुष ही रहा है। राजनीति के नियामक भी वे ही हैं। वे मर्यादाओं एवं नियमों को गढ़-गढ़ कर परम्परा की दुहाई देकर नारियों पर थोप देते हैं पर स्वयं उनका पालन नहीं करते हैं।"

दुर्गा बोली, "राधा दीदी! समाज ने उन्हें स्वच्छन्द बना दिया है। वे अपने उत्तरदायित्व का पालन कहाँ करते हैं। जब मोक्ष का नशा चढ़ता है तो पत्नी और पुत्र-पुत्रियों को उसी प्रकार छोड़ देते हैं जैसे किलनी पशु का खून चूसकर उसे बिना किसी लाग-लपेट के छोड़ देती है।"

राधा चुप कैसे रहती। महापुरुषों को अपराध के कटघरे में खड़ाकर बोली, "दुर्गा! औरतों पर पुरुषों के अत्याचार की कहानी नयी नहीं अपितु बहुत पुरानी है। विश्वामित्र ने मेनका को तजा, पिता के आदेश पर परशुराम ने माँ का वध किया। धोबी की शिकायत पर राम ने गर्भवती सीता को वन में छुड़वाया, श्रीकृष्ण ने गोपियों को त्यागा।"

दुर्गा बोली, "राधा दीदी। अतीत में क्यों जाती हो, वर्तमान में देखो? सिद्धार्थ ने यशोधरा को सोते हुए छोड़ा और गृहपतियों ने हमें वियोगाग्नि में झुलसने के लिए अभिशप्त कर दिया।"

राधा परित्यक्ताओं को ढाढ़स बंधाते तथा उत्तरदायित्व बोध कराती हुई बोली, "बहनो! विलाप करने से काम नहीं चलेगा। वियोगाग्नि में तपस्वियों की तरह तपना भी पड़ेगा। जो पुरुष प्रव्रजित हो गए हैं, वे अब तो लौटकर घर आने वाले नहीं हैं।"

दुर्गा बोली, "राधा दीदी! भाड़ में जाएँ वे। हमें तो घर सँभालना ही पड़ेगा। कर्त्तव्य-पालन से पलायन करना वीरता नहीं नपुंसकता है, महान कायरता है।"

राधा बोली, "बहिनो। मैं नवविवाहिता दुर्गा के साहस और बुद्धि की दाद देती हूँ। पुरुष भले ही अपने धर्म से विमुख हो गए पर हमें तो बेटा-बेटी, सास-ससुर, पितामह-पितामही का पालन-पोषण करना ही पड़ेगा। पतियों ने क्या किया, उसे भूल जाओ।"

दुर्गा पुरुषों के काले कारनामों पर प्रकाश डालती हुई बोली, "राधा दीदी! सेवा-टहल तो हमारे भाग्य में लिखा हुआ है। भागकर जाएँ भी तो कहाँ जाएँ। नारियों के लिए पूजा-आराधना, जप-तप एवं भक्ति का दरवाजा बन्द है। विदाई के समय मेरी माँ ने यही समझाया है कि पत्नियों के लिए पति परमेश्वर है।"

राधा बोली, "दुर्गा। माँ और क्या कहे। मनुस्मृति के रचयिता मनु ने स्त्रियों

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

के लिए यही विधान किया है।"

बातचीत का सिलसिला चल ही रहा था कि सारनाथ से कंधे पर ढोल टाँगे और हाथ में मजीरा लिए वहाँ पर कुछ बनजारिनें आ पहुँची। गाँव के वृद्धों, महिलाओं एवं लड़के-लड़कियों का विलाप सुनकर उनके हृदय में करुणा का सागर उमड़ पड़ा।

एक अधेड़ बनजारिन ने राधा से पूछा, "राधा जी! आपके गाँव में कुहराम क्यों मचा हुआ है?"

राधा बोली, "बनजारिन! तुम्हारा हृदय तो दया और करुणा का विशाल सागर है। क्या तुम अपना नाम बता सकती हो?"

"राधा बहन! मेरा नाम कुसुमलता है।"

दुर्गा बोली, "कितना अच्छा नाम है। शरीर भी लता के समान है। रंग तीसी के फूल की तरह लुभावना एवं आकर्षक है।"

"दुर्गा जी, हँसी-मजाक छोड़ो। सच-सच बताइए? आप लोग क्यों रो रहे हैं?"

"कुसुम! यश कुलपुत्र की देखा-देखी हमारे गाँव से एक ही खानदान के पचास गृहपतियों ऋषिपत्तन मृगदाव में जाकर भगवान बुद्ध से प्रव्रज्या ले ली है। अब तुम्हीं बताओ? हम रोएँ नहीं तो क्या करें?"

"दुर्गा! साधु-संन्यासी, ऋषि-महर्षि, अर्हत, भिक्षु आदि राजाओं तथा श्रेष्ठियों से घुले-मिले रहते हैं। जब बनजारों तथा आदिवासियों की सम्पत्ति पर जबरन राजा-महाराजा एवं व्यापारी अपना आधिपत्य जमाते हैं तो ऋषियों की जबान सिल उठती है। उफ! तक नहीं करते।"

दुर्गा बोली, "क्या करोगी। समाज की रचना ही ऐसी होती है। समाज ने श्रम सीकरों को सेवा का भार सौंपा है। सेठ-साहूकार तथा राजा और उनके सामन्त मजदूरों को दलित कहकर उनका बेरहमी से शोषण करते हैं। नारी और दलित उनकी दृष्टि से मनुष्य नहीं अपितु जानवर हैं।"

राधा बीच में ही बोल पड़ी, "कुसुमलता। श्रीमन्तों ने बनजारों और आदिवासियों की जमीन छीनकर उन्हें खानाबदोश बना दिया है। बेचारे क्या करें? यायावरी करते हैं और शंख, सीप, खाल, छाल, जड़ी-बूटी और विषगर्भ तेज बेचकर अपना पेट पालते हैं।"

कुसुमलता राधा की हाँ में हाँ मिलाती हुई बोली, "बहन! राजा और श्रेष्ठी एक ओर तो शक्तिहीनों तथा श्रमिकों का खून चूसते हैं और दूसरी ओर साधु-सन्तों की पूजा करते हैं और डाली भेजते हैं।"

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

दुर्गा से रहा न गया। बोली, "कुसुम तुम्हारा कथन सौ प्रतिशत सही है।"

धीरे-धीरे शाम होने लगी। गृहपतियों की पत्नियों ने बनजारों तथा बनजारिनों की झोली भरकर ससम्मान उन्हें गाँव से विदा किया।

बनजारों और बनजारिनों का कपिलवस्तु की ओर प्रस्थान

यश कुलपुत्र के मूल गाँव से बाहर निकलकर कुसुमलता ने बिरादरों से विचार विमर्श कर गिरोह के मुखिया से बोली, "प्रधान बाबा! खच्चरों, भैंसों और बैलों की पीठ पर वनकोटो, सूखी केलि (बेर), जड़ी-बूटियाँ, मोतियाँ, औषधीय वृक्षों की छालें, मृगचर्म, विषगर्भ तेल, मोर-पंख, शहद आदि सामान लदे हुए हैं। वर्षा का मौसम तो अवश्य है पर अभी आसमान खुला हुआ है। लगता है कि आठ-दस दिन वर्षा नहीं होगी। अगर आपकी आज्ञा हो तो कपिलवस्तु चलें।"

"कुसुमलता! तुम्हारा सुझाव सही है। सम्पन्न नगर है। बिक्री अच्छी होगी।"

"मुखिया जी! इतना ही नहीं, विरहिणी यशोधरा एवं राहुल का दर्शन भी होगा।"

"कुसुमलता! तुम कितनी सरल और करुणाद्र हो। विरहियों एवं विरहणियों के प्रति कितना लगाव है, तुम्हारे मन में। तुम्हारी सलाह सिर माथे पर है।"

"मुखिया जी! भगवान आपको दीर्घायु बनाएँ।"

"पर, बेटी! मार्ग तो बीहड़ है। पर, हमें चप्पा-चप्पा धरती का ज्ञान है। गोमती, टौंस, घाघरा आदि नदियों को पार कर हम अनोमा के तट पर पहुँचेंगे और फिर वहाँ से रोहिणी के कछार में पहुँच जाएँगे। मार्ग में पड़ने वाले नगरों एवं गाँवों में हमारे सामान भी बिकते रहेंगे।"

"मुखिया जी! आपको तो नदियों घाटों एवं मल्लाओं से भी अच्छा परिचय होगा।"

"बेटी! अस्सी साल का जवान हूँ।"

कुसुमलता बोली, "मुखिया जी! आपने कई घाटों का पानी पीया होगा। आपको यथाभूत ज्ञान है।"

कुसुमलता की बातें सुनकर बनजारिनें हँसने लगीं। क्या करती, अपनी भूल पर झेंप गई?

हाथ जोड़कर वह मुखिया से बोली, "बाबा! भयंकर भूल हो गई। क्षमा करने की कृपा करें?"

"बेटी! तुम्हारा कहना तो सही है पर बिरादर लोगों ने उसका गलत अर्थ निकाला। समय नष्ट मत करो। जानवरों को सँभालो और आगे बढ़ो।"

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

गाते-बजाते सब चलने लगे। बनजारिनों का गला कोयल की तरह मधुर था। मधुर स्वर में उनकी कजरी सुनकर पथिक पथ पर ठिठक जाते थे। चलते-चलते वे धपाप पहुँच गए। सामने गोमती नदी हहराती हुई बह रही थी। घाट पर रामदेव मल्लाह मिल गए। पुराने मित्र थे मुखिया के। पुराने मित्र को देखकर फूले न समाए। हहाकर मिले।

मुखिया को छाती से लगाकर बोले, "मुखिया जी! महावीर जी की असीम अनुकम्पा है, आप बिरादरी सहित मिल गए। चलिए हमारी कुटिया को अपने पावन चरणों से पवित्र कीजिए।"

"रामदेव! बाबा भोलेनाथ आपका कल्याण करें?"

"धन्यवाद।" कहकर आगे-आगे रामदेव चले और पीछे-पीछे बनजारे एवं बनजारिनें। रामदेव की मड़इया सन्निकट ही थी। आनन-फ़ानन में पहुँच गए। रामदेव की पत्नी सबिया द्वार पर खड़ी थी। शालीनतापूर्वक अतिथियों का स्वागत किया, हाथ जोड़कर रामदेव मुखिया से बोले, "मुखिया जी! यही आपकी राम मड़इया है, सामने की मड़ई खाली है। तख्ते बिछे हुए हैं। सामान अंदर रखकर विश्राम कीजिए।"

इसके बाद पत्नी से बोले, "देवी जी! जल्दी रस तैयार कर अतिथियों को पिलाइये। थके-माँदे हैं सब।"

अच्छा कहकर, वह अन्दर चली गई और रस तैयार कर साथ में चबेना लेकर बाहर आई। सारा बनजारा परिवार चना चबाकर रसपान कर अघा गया।

रामदेव ने जल्दी-जल्दी आटा, दाल, चावल, लकड़ी आदि का प्रबन्ध कर दिया। सामने की मड़ई पर तुरई की बेलें पसरी हुई थीं। शबिया ने झट से तोड़कर दौरी भरकर उनके सामने रख दिया।

चूल्हा दग गया। सबिया के साथ कुसुमलता भी भोजन पकाने में जुट गई। घंटेभर में भोजन तैयार हो गया। पत्तल पर चावल-रोटी, साग और दोने में दाल रखकर सब लोग भोजन करने लगे। भोजनोपरान्त सभी लोग तख्ते पर कम्बल बिछाकर सो गए।

रामदेव मुखिया को लेकर अपने कमरे में चले गए। बातचीत प्रारम्भ हो गई। रामदेव बोला, "मुखिया जी! मेरे पितामह कहा करते थे कि आर्यों के आगमन के पहले स्वाति घाटी से लेकर वर्मा तक और हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक की धरती पर कोलो, भीलों, धीवरों, बनजारों, कलवारों का अधिकार था। पर आर्यों ने छलकपट और शक्ति द्वारा हमारे पूर्वजों को मारकर कुछ को तो भगा दिया और

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

कुछ पुरुषों और नारियों को क्रमशः दास-दासियाँ बना लिया।"

"रामदेव! आपका कथन अक्षरशः सत्य है। हमारे पूर्वज थे तो वीर पर वे गणराज्यों में बिखरे हुए थे। उनके पास ताँबे और लोहे के हथियार तो थे पर बहकाकर आर्यों ने हथिया लिया। तीर-कमान लेकर वे लड़े तो अवश्य पर हार गए। मल्लाह, डोम, चमार आदि तो यहीं रह गए पर कुछ बनजारे भागकर दुर्गभ घाटियों को पारकर यूरोप और अमेरिका चले गए।"

"मुखिया जी। इसका क्या सबूत है?"

"रामदेव! बनजारे जहाँ कहीं भी हैं, उनकी बोली में व्यापक रूप से साम्य पाया जाता है।"

"मुखिया जी! राजाओं, महाराजाओं तथा गणाध्यक्षों ने हमारा बुरी तरह से शोषण किया है, कर रहे हैं और करेंगे।

तट पर बैठकर मछलियाँ पकड़वाते हैं और टोकरी में भरकर चले जाते हैं। नाव पर नौकरों-चाकरों के साथ बैठते हैं पर उस पार जाने पर उतराई देने से कन्नी काट जाते हैं।"

"रामदेव! इतना ही नहीं, हमारी बहू-बेटियों को भी नहीं छोड़ते। महाभारत देखो, पराशर ने मत्स्यगंधा के साथ क्या बर्ताव किया?"

"पर मुखिया जी! उस समय वैवाहिक सम्वन्ध में वर्ण और जाति पर ध्यान नहीं दिया जाता था। इसीलिए शांतनु ने सत्यवती (मत्स्य गंधा का परिवर्तित नाम) से विवाह कर लिया।"

"रामदेव। आपकी बात सत्य है पर दासों, आदिवासियों तथा श्रमिकों से जबरन काम लिया जाता था। मजदूरी देने की बात तो दूर रही उलटे उन्हें हिकारत की निगाह से देखा जाता था।"

"मुखिया जी! समरथ को कोई दोष नहीं देता। समाज के शिरमौर कहे जाने वाले लोगों ने वनखण्डों को उनके असली हकदारों को भगाकर हड़प लिया। श्रेष्ठी लोग तो राजाओं की सहायता से हमारी वन-सम्पदा भी हड़प रहे हैं। इतना ही नहीं बाहुबल से पशु-पक्षियों को भी उठा ले जाते हैं।"

"रामदेव! क्या किया जाये। हम में संगठन भी तो नहीं है। हमारे भाई बंधु उनकी चाकरी करते हैं। अत्याचार ढाहते समय उन्हीं की सहायता करते हैं।"

"मुखिया जी! साधु समाज भी आदिवासियों एवं अनुसूचित जातियों का शत्रु है। राजाओं की प्रेरणा से वन में नदियों एवं झीलों के तट पर ऋषि-महर्षि आश्रम और पूजास्थल बनाते हैं और बाद में भू-स्वामियों एवं धन्नासेठों को बुलाकर वनवासियों की भूमि हड़प लेते है। वे हमें पशु से भी गया-बीता समझते हैं।"

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

"रामदेव! शोषण और अत्याचार का पुराण बहुत लम्बा और पुराना है। चुप हो जाओ और वनदेवी को स्मरण कर सो जाओ।"

भोर होते ही बनजारा-दल ने नित्यक्रिया से फारिग होकर गोमती में स्नान किया और सामान पशुओं की पीठ पर लादकर रामदेव से आज्ञा लेकर कोसल (अयोध्या) की ओर प्रस्थान कर दिए।

पदाक्रांत गाँव

चलते-चलते तमसा नदी पार कर बनजारे दलितों के गाँव में पहुँच गए। सबके सब गौरांग पर मैले-कुचैले वस्त्र पहने हुए थे। उस पुरवे में केवल मड़ई-भड़ई थी। पुरवे से कुछ दूर पक्के एवं खपरैल घर थे। बनजारे उन्हें ध्यान से देखने लगे।

कुसुमलता से रहा नहीं गया। वह पुरवे के एक वृद्ध जिसका नाम सूर्यनाथ था, से पूछ बैठी, "आप तो अनुभवी जान पड़ते हैं। आप लोग द्विजात्यों के पुरवे से बाहर क्यों रहते हैं?"

"बेटी! हमारे पूर्वज अत्यन्त ही शूरवीर थे पर इन्द्र तथा ऋषियों ने उन्हें पराजित कर दिया। राज-पाठ, धन-वैभव सब कुछ छीनकर उन लोगों ने हमारे पूर्वजों को जंगल में भगा दिया।"

"इतना बड़ा अत्याचार!"

"हाँ, बेटी। पूर्वज शक्तिशाली थे। पेट पालने के लिए वे रात में द्विजात्यों के गाँव को लूटने लगे। जब लक्ष्मीपति और भूपति आजिज हो गए तो उन्होंने हमारे पूर्वजों से यह समझौता किया, "आप लोग हमारे गाँव की रक्षा करें और आप लोगों के खाने आदि की व्यवस्था हम लोग करें। पर, हमारे खेतों को जोतने तथा पशुओं के चराने के काम आप और आपके बच्चे करेंगे।"

कुसुमलता बोली, "सूर्यनाथ बाबा! आप लोगों वीरे के वंशज हैं। क्षमा, उदारता और सहानुभूति मानवता के आभूषण हैं। अतः द्विजात्यों से वैर भाव त्याग कर जो मैत्री भाव आप लोगों ने स्थापित किया है, उससे धर्म को विशेष गति मिलेगी।"

"बेटी! इस प्रकार भारत के सभी गाँवों में अछूतों के अलग पुरवे बने। मुसहरों को छोड़कर हमारे पुरवे में न तो ब्राह्मण आते हैं, न क्षत्रिय और न ही वैश्य और आभीर।"

"सूर्यनाथ बाबा! यह तो वर्ण-व्यवस्था का घिनौना स्वरूप है।"

"बेटी! देखो? मैं यह लक्ष्मण रेखा खींच रहा हूँ। आतताइयों के आक्रमण होने पर जब इस देश पर उनका शासन स्थापित हो जायेगा तो विधर्मी धर्म

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

पुरोहित शासन की मदद से जबरदस्ती धर्मान्तरण करवायेंगे। उस समय डर और लालचवश उच्चवर्ण भले ही पराये धर्मों को स्वीकार कर लें पर श्रमिक और रैदास किसी भी कीमत पर धर्म-परिवर्तन नहीं करेंगे। इस प्रकार अछूतों की भावी पीढ़ी की दूरदर्शिता एवं दृढ़ता से वैदिक धर्म इस आर्यावर्त्त में सदा-सदा के लिए अमर रहेगा।"

"सूर्यनाथ बाबा! आप लोग धन्य हैं। इतनी उपेक्षा, इतने अपमान और शोषण के बावजूद देश, धर्म, संस्कृति और जाति के प्रति आप लोगों का इतना बड़ा लगाव है।"

"हाँ बेटी! मानवता की वेलि श्रम के देवताओं द्वारा सारे भारत में फैलेगी?"

"अच्छा सूर्यनाथ बाबा! हमें कोसल जाने की आज्ञा दें।"

सूर्यनाथ बोले, "बाबा भोलेनाथ! आप बनजारों का कल्याण करें।"

कोसल (अयोध्या)

कोसल घाघरा नदी के तट पर बसा हुआ था। उस समय वह उत्तरी पूर्वी भारत का समुन्नत एवं धन-धान्य से सम्पन्न नगर था। बनजारे सर-समान लेकर नगर में प्रविष्ट हुए। वैद्यों न उनकी जड़ी-बूटियाँ एवं औषधीय छालों और शहद के डिब्बों को खरीद लिया। अन्य कीमती सामान भी आपण में बिक गये। बेचारे बहुत बड़े बोझ और भार से मुक्त हुए। मुखिया जी ससमूह सूर्यू-तट पर पहुँचे और जी भरकर स्नान किये। राम जन्मभूमि पर स्नान करने का गौरव प्राप्त कर बनजारों और बनजारिनों का मन मयूर नाचने लगा। पानी से बाहर आकर कपड़ा पहनकर फूलमाला, चन्दन-रोरी और मिष्ठान्न खरीदकर वे राम मन्दिर और हनुमान मंदिर, जाकर पूजा-पाठ किये और प्रासाद चढ़ाकर पुनः सूर्य-तट पर जाकर जलपान किए। इसके बाद वे यशोधरा का दर्शन करने के लिए कपिलवस्तु की ओर प्रस्थान किए।

कपिलवस्तु में बनजारिनों और यशोधरा की भेंट

गाते-बजाते, कलोल करते, मांगते-खाते, लोगों को हँसाते हुए बनजारा-दल कपिलवस्तु की शानदार गलियों में पहुँच गया। उन्हें देखकर नगर के नर-नारी फूले न समाएँ। बंनजारिनों का गला क्या था, कोयल का सुरीला कंठ। बनजारे झूम-झूमकर मृदंग, बाँसुरी, झाँझ, मजीरा और तुरही बजाने लगे और बनजारिनें समवेत स्वर में अमृत-से मधुर स्वर में गाने लगीं—

कान खोलकर सुन ले भइया!

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

जो सोता है वह खोता है
भगवान बुद्ध के अलौकिक प्रयास से
दुःख की रजनी अब बीत चली।
शील, समाधि और प्रज्ञा से
तथागत को पावन दिव्य-प्रकाश मिला
भगवान बुद्ध का धर्म अब पृथ्वी पर घूमेगा
औ, जन-जन का क्लेश मिटायेगा।
हम तो अनिकेत बनजारे हैं
ऋषि पत्तन मृगदाव से पैदल ही आए हैं
धर्मचक्र के प्रवर्तन से भगवान बुद्ध की
यह तपोभूमि अमृत की वर्षा करवायेगी।
हे कपिलवस्तु के अधिवासी सब
सुनो ध्यान से बात हमारी
विनत भाव से श्रद्धानत हो
आरती उतारो उस महापुरुष की।
याद रखो, याद रखो, याद रखो
यशोधरा के तप और महाप्रताप से
सिद्धार्थ गौतम सम्यक् बुद्ध हुआ है
यशोधरा इधर तपी औ, वह उधर तपा।
ऋषि पत्तन मृगदाव से
वह धर्म-चक्र है घुमा रहा
सँपेरे की बीन-ध्वनि पर जैसे
मुग्ध साँप भागे-भागे आते हैं।
वैसे ही भगवान बुद्ध धर्म-चक्र से
एक नहीं, पंचावन श्रेष्ठी पुत्र
कोमलांगिओं की मधुर बाँह त्याग कर
ऋषि पत्तन की तपोभूमि में आए हैं।
प्रकृति की माया कितनी विचित्र है
कहीं धूप है तो कहीं छाया है
मुमुक्षु पतियों की निष्ठुरता से
पचास गृहपत्नियाँ विरहाग्नि में झुल रहीं।

भव्य प्रासाद की छत पर बैठी यशोधरा के कानों में जैसे ही बनजारिनों का

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

सारगर्भित मधुर गान की ध्वनि पड़ी, वह तत्काल खड़ी हो गई। उसकी अंतरंग दासियाँ उसके सन्निकट ही बैठी हुई थीं। उसने दासियों को बनजारिनों को ऊपर बुलाने के लिए नीचे भेजा। जैसे ही वे दोनों बनजारिनों के सामने गईं, तुरन्त कुसुमलता आगे आई। झुककर विचित्र अदा में उसने उन्हें नमस्कार किया।

विचित्रा ने पूछा, "कोकिला स्वर बनजारिन! तुम्हारा नाम क्या है?"

"देवि! मेरा नाम कुसुमलता है।"

"बहन! आप दोनों का क्या नाम है?"

"कुसुमलता! मेरा नाम विचित्रा है और सहेली का नाम गंगा है।"

"भगवान आप दोनों का कल्याण करें। मालकिन सहित सभी दासियाँ सुखी रहें, शुभ देखें। राग-द्वेष, अहंकार एवं तृष्णा से मुक्त रहें। धर्म-चक्र कपिलवस्तु में भी घूमे।"

"कुसुमलता! तुम्हारी आजीविका क्या है?"

"विचित्रा बहना! हम सब तो बनजारे हैं। हमारे पास न तो घर है और द्वार, न जमीन है न संपत्ति। अनिकेत हैं, अनिकेत। जंगल में भटक-भटककर जड़ी-बूटियों, औषधीय वनस्पतियों एवं सूखे फलों का संग्रह कर गाँवों और नगरों में जा-जाकर चिल्ला-चिल्लाकर बेचते हैं और उनके बदले में सिक्का और अन्न जो भी मिल जाता है, उसी से अपना और बाल-बच्चों का पालन-पोषण करते हैं।"

विचित्रा ने पुनः प्रश्न किया, "कुसुमलता। कहाँ से यहाँ आगमन हुआ है।"

"बहन! वाराणसी के सन्निकट ऋषिपत्तन मृगदाव से हम लोग आये हैं।"

"कुसुमलता! बड़ा पावन नाम है।"

"हाँ बहन! आदिकाल से यह स्थान ऋषियों की तपोभूमि रहा है और पुनः भगवान बुद्ध के धर्म-चक्र के कारण विश्व-प्रसिद्धतम् धर्म और पर्यटन का केन्द्र बन जाएगा।"

विचित्रा ने पुनः प्रश्न किया, "कुसुमलता! आप लोगों के यहाँ आगमन का क्या हेतु है।"

"बहन! वियोगिनी, महातपस्विनी, त्याग-मूर्ति, प्रेरणादायिनी माता यशोधरा के पावन दर्शन के लिए हम यहाँ आए हैं।"

"कुसुमलता। चलो। माननीया यशोधरा ने स्वयं तुम लोगों को बुलाने के लिए हमें भेजा है।"

"बहन! भगवान यशोधरा का कल्याण करें।"

आगे-आगे विचित्रा एवं गंगा और पीछे-पीछे बनजारा दल। यशोधरा एक श्वेत शिला पर श्वेत रेशमी परिधान पहने, माँग में सिन्दूर भरे शान्त मुद्रा में बैठी

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

हुई थी। उपवास, व्रत, तपस्या, मनन और चिन्ता के कारण उसका शरीर कृश हो गया था पर चेहरा आभा मण्डित था। बनजारा दल ने उसे साष्टांग प्रणाम किया। शुभकामना प्रकट करते हुए यशोधरा ने आसन ग्रहण करने का संकेत किया।

हाथ जोड़कर मधुर वाणी में कुसुमलता बोली, "महिष्ठ! आप मानवी नहीं अपितु साक्षात् लक्ष्मी हैं।"

"कुसुमलता! सिद्धार्थ गौतम मुझे तथा पुत्र राहुल को सोते हुए छोड़कर चले गए। समाज में पति के बिना नारी को खोई समझा जाता है। वर्षा ऋतु है। रात-दिन वर्षा हो रही है पर मेरी वियोगाग्नि दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ रही है। अकेला पाकर काली रात नागिन-सी मुझे डँसने दौड़ती है। मैं माता सीता के समान पातिव्रत्य धर्म का पालन कर रही हूँ। क्योंकि धर्म यही कहता है कि पति भले ही अपना प्रण और धर्म छोड़ दे पर नारी को स्वप्न में भी पातिव्रत्य धर्म से च्युत नहीं होना चाहिए। आँख मूँदकर मैं रात-दिन सिद्धार्थ के ध्यान में लीन रहती हूँ।"

कुसुमलता बोली, "देवि! आपके तप और पुण्य से ही सिद्धार्थ गौतम सम्यक् बुद्ध हुए हैं, अर्हत हुए हैं, धर्मचक्र-प्रवर्तक हुए हैं।"

"कुसुमलता! मुझे कुछ दिन पहले ही गया के व्यापारियों से यह शुभ समाचार मिला था कि वह प्रज्ञा सम्पन्न हो गए, उन्हें निर्वाण प्राप्त हो गया। अतः वे जन्म-मरण के आवागमन से मुक्त हो गए।"

"देवि! आपका कथन बिलकुल सत्य है। ऋषिपत्तन मृगदाव में आकर सर्वप्रथम उन्होंने अपने पंचवर्गीय तपस्वियों को उपदेश देकर प्रव्रज्या एवं उपसम्पदा प्रदान की। उसके बाद श्रेष्ठी पुत्र यश कुलपुत्र ने प्रव्रज्या ग्रहण की। देखा देखी उसके मित्र तथा उसके मूल गाँव के पचास गृहपति बुद्ध भगवान के अनुगामी बन गए।"

"कुसुमलता! पुरुष का हृदय नवनीत-सा कोमल नहीं, अपितु पत्थर-सा कठोर होता है। वह मोक्ष की लालसा में अपने उत्तरदायित्व को केंचुल-सा छोड़कर प्रव्रजित हो जाता है। माता-पिता और पत्नी, बच्चे मरे या जीएँ, उन्हें कोई चिन्ता नहीं है। अँधेर है, अँधेर।"

"महादेवि! यह परम्परा तो आदिकाल से चली आ रही है। पुरुष के लिए नारी भोग्या है, भोग्या है। अठारह वर्ष से लेकर उनतीस साल तक वह नारी के अंग-प्रत्यंग के साथ केलि-क्रीड़ा करता है। ब्रह्मानन्द का आस्वाद लेता है पर अन्त में नारी को ठीकरा समझकर लात मारकर संन्यास धारण कर लेता है।"

"कुसुमलता! जाने दो। वह सुखी रहें। सम्यक् बुद्ध बनें। दुखियारे जग का क्लेश दूर करें। मैं तो उनकी अर्द्धांगिनी हूँ। किस मुँह से उन्हें उलाहना और दोष दूँ।"

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

"महादेवि! धैर्य रखें। आपकी तपस्या व्यर्थ न होगी। एक न एक दिन उन्हें आपके सामने आना ही पड़ेगा।"

"कुसुमलता! तुम कितनी सयानी हो! निष्ठुर समाज ने तुम जैसे कई कोटि आदिवासियों को पढ़ने-लिखने के अधिकार से वंचित रखा है पर तुम तो निसर्गतः प्रज्ञा-चक्षु हो।"

"महादेवि! आपमें मैत्री की भावना है, करुणा है, मुदिता है, उपेक्षा है। आपमें चारों ब्रह्मविहार समाहित हो गए हैं। अब वापस जाने की आज्ञा दें।"

"बहन। पलभर ठहरो। यह कहकर यशोधरा ने विचित्रा और गंगा से वस्त्र, आभूषण, सोने की मोहरें और बर्तन आदि मँगवाकर बनजारा दल के प्रत्येक सदस्य को प्रदान किया।"

ऋषिपत्तन मृगदाव में तपोभवन-निर्माण

अर्हतों के शील-पालन, ब्रह्मविहार एवं पारमिता मार्ग के कारण धर्म-चक्र ऋषिपत्तन मृगदाव से लेकर वाराणसी के आस-पास के क्षेत्रों में घूमने लगा और भगवान बुद्ध द्वारा प्रवर्तित कल्याणकारी संदेश आलोक-पुंज बन गया। परिव्राजकों की संख्या पाँच से बढ़कर साठ हो गई। अब सबसे बड़ा प्रश्न यह उठा? सामूहिक प्रार्थना एवं अष्टांगिक मार्ग का अभ्यास किस छत के नीचे किया जाए। शील समाधि एवं प्रज्ञा के अभ्यास के लिए पवित्र, स्वच्छ एवं शान्तिमय तपोभवन की आवश्यकता होती है। सभी अर्हत् ऊहा-पोह में पड़ गए। स्वयं तो वे निर्माण कर नहीं सकते थे क्योंकि प्रव्रजित और उपसम्पदा प्राप्त थे। भगवान बुद्ध के सामने बैठकर मौन धारण कर वे आसन्न समस्या पर विचार कर रहे थे।

अचानक ऋषिपत्तन मृगदाव के निकटवर्ती गाँवों के आभीर, कुर्म क्षत्रिय एवं दलित अपने सामान देकर बदले में आवश्यक जीवनोपयोगी वस्तुएँ खरीदकर वाराणसी से लौटते हुए दिखलाई पड़े। वे आपस में भगवान के गुणों एवं त्याग की चर्चा कर रहे थे। ऋषिपत्तन मृगदाव में उन्हें मूड़ मुड़ाये, चीवरधारी अर्हत् एक समूह में बैठे हुए दिखलाई पड़े। उन्हें ध्यानमग्न देखकर वे ठिठक गए। वे अपने-अपने कंधे पर बड़ी-बड़ी तेल-पिलाई लाठियाँ रखे हुए थे।

पलभर विराम के बाद वे भगवान बुद्ध के पास पहुँच गए। भगवान एवं परिव्राजकों की परिक्रमा कर भगवान बुद्ध को प्रणाम कर वे एक जगह बैठ गए। आभीरराज सुखदेव, कुर्मी समाज के मुखिया राजदेव एवं रैदास-प्रधान शान्तिराम ने हाथ जोड़कर निवेदन किया, "भगवान! आप तथा साठो अर्हतों के पावन-दर्शन से हमारे कर्म-क्लेशों का विनाश हो गया। सारे मल निकल गए। हम अनपढ़,

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

अनाड़ी, पिछड़े एवं दलित हैं पर आपके प्रति तथा सतधम्म के प्रति हम श्रद्धावान भी हैं और विश्वास्य भी। हम तन, मन, धन से आपकी तथा धर्म की सेवा करना चाहते हैं। हमारे सम्पूर्ण समर्पण को स्वीकार कर हमें सेवा करने का सुअवसर प्रदान करें।"

भगवान बोले, "सुखदेव, राजदेव एवं शान्तिराम जी! आप तीनों समाज के सच्चे सेवक हैं। समाज-सेवा और श्रम के कार्य ने आप लोगों को देवत्व प्रदान किया है।"

तीनों गद्गद होकर समवेत स्वर में बोल उठे, "भगवान! आपकी अमृतवाणी सुनकर हम धन्य हो गए। आगे आज्ञा दीजिए।"

"सुखदेव जी! अभी वर्षा-काल चल रहा है। हमें यहाँ वर्षावास भी करना है और साधना भी।"

राजदेव बोला, "भगवान! तो कष्ट क्या है?"

"राजदेव! हमारे पास तपोभवन नहीं है। सामूहिक प्रार्थना एवं ध्यान के लिए एक विशाल छत चाहिए।"

तीनों फिर एक साथ बोल उठे, "भगवान! करुणानिधान! यह हमारे लिए बायें हाथ का खेल है। दो दिन का समय दीजिए।"

"तथास्तु।" कहकर भगवान मौन हो गए।

शान्तिराम बोला, "भगवान! मैं ऐसी छानि छाऊँगा जिसमें एक बूँद पानी भी नहीं टपकेगा।"

सुखदेव चुप नहीं रहा। बोला, "भगवान! सरपत, मूँज, ईख की पत्तियों का प्रवन्ध मैं करूँगा।"

राजदेव चुप कैसे बैठता? बोला, "भगवान तपोभवन खड़ा करने के लिए जितने बांस, थाम, थूनी की आवश्यकता होगी, मैं दूँगा।"

भगवान बोले, "सबका कल्याण हो, सबका कल्याण हो, सबका कल्याण हो।"

ग्रामीण भी प्रतिउत्तर में बोल उठे, "साधु, साधु, साधु।"

भगवान बुद्ध बोले, "कितना बड़ा विश्वास, समर्पण, त्याग और परोपकार भाव है—समाज के पिछड़े तबकों में!"

भगवान बुद्ध की अमृतमयी वाणी सुनकर आभीर, कुर्मी एवं दलित वर्ग के अग्रणी फूले न समाए। झूमते-झूमते वे अपने साथियों सहित घर पहुँचे।

कई दिनों से वर्षा थमी हुई थी। अतः सारा आकाश निर्मल था। प्रातःकाल जैसे भगवान भास्कर की सुनहली रश्मियाँ धरती पर पसरने लगीं, शान्तिराम अपने

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

हट्टे-कट्टे साथियों के साथ राजदेव के द्वार पर पहुँच गए। उस समय वह हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे। प्रेम से दुआ-सलाम हुआ।

हँसते हुए राजदेव बोला, "शान्तिराम जी! आप लोग सचमुच धरती-पुत्र ही नहीं अपितु श्रम-देवता भी हैं।"

शान्तिराम बोला, "भइया। हम तो समाज के दास हैं पर हमें उच्चवर्ण शूद्र कहता है।"

"कहने दो। उत्पादन की सारी शक्ति तो दलितों में ही है।"

"राजदेव भइया। ठीक है। देखिए हमारे साथियों के हाथ में टाँगा-टाँगी, आरा-आरी, बसूला-बसूली, बाँका विद्यमान है। उठिए, बँसवाड़ी चलें जहाँ हमारे साथी बाँस काटना प्रारम्भ कर दें।"

"शान्ति भाई! बँसवाड़ी के पास ही पुराने पके हुए बबूल के पेड़ भी हैं। बाँस के साथ-साथ उन्हें भी काट लिया जाए। थूनी-थाम का काम करेंगे।"

सलाह-मशविरा करके दोनों मजदूरों के साथ बँसवाड़ी पहुँच गए। कुछ लोग बाँस काटने लगे और कुछ बबूल। राजदेव बैलगाड़ियों का प्रबन्ध करने गाँव में चले गए। आनन-फानन में गाड़ियों पर बाँस और बबूल के पेड़ लदने लगे।

राजदेव शान्तिराम को बँसवाड़ी का उत्तरदायित्व देकर सुखदेव यादव के घर पहुँच गए। पता चला कि वह बगीचे में गाड़ियों पर सरपत, मूँज और ईख की पत्तियाँ लदवा रहे हैं। तुरन्त वह बगीचे में पहुँच गए और सुखदेव को दुआ देने लगे।

दूसरे दिन भोर में ही मजदूर और लदी हुई बैलगाड़ियाँ ऋषिपत्तन मृगदाव की ओर चल पड़ीं। एक घंटे में ही ऋषिपत्तन पहुँच गईं।

भगवान बुद्ध और भिक्षु समाज के उपेक्षित वर्ग के औदार्य, संकल्प, लगन-निष्ठा एवं दत्तचित्तता को देखकर दंग रह गये। राजदेव और शान्तिराम को साथ लेकर सुखदेव भगवान बुद्ध के पास गया और बोला, "भन्ते! तपोभवन कहाँ बनेगा।"

भगवान बुद्ध एक ऊँचे स्थान जाकर बोले, "सुखदेव! यह जगह ध्यान के लिए अतिउत्कृष्ट है। यहीं पर तपोभवन बनाना चाहिए।"

भगवान बुद्ध का आदेश पाकर पिछड़े और दलित वर्ग के लोग अपना-अपना काम बाँटकर भवन-निर्माण के कार्य में जुट गए। अथक परिश्रम के बाद सायंकाल तक तपोभवन बनकर तैयार हो गया। मिट्टी पाटकर फर्श भी बना दिया गया। पीली मिट्टी एवं गोबर से लीपकर फर्श को चमका दिया गया।

अन्त में सुखदेव, राजदेव एवं शान्तिराम हाथ जोड़कर भगवान बुद्ध से घर जाने की आज्ञा माँगने लगे। भगवान बुद्ध ने कहा, "तुम तीनों रुक जाओ। और

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

सबको जाने दो।"

"भन्ते! आपका आदेश सिर आँखों पर है।"

जब अन्य ग्रामीण चले गए तब भगवान बोले, "तुम तीनों ध्यान से सुन लो। तीन दिन बाद साठों भिक्षु मौन धारण कर शील, समाधि एवं प्रज्ञा का अभ्यास करेंगे।"

सुखदेव बोला, "भगवान! अक्लमंद को इशारा काफी। ध्यान-साधना काल में भिक्षाटन-कार्य बन्द रहेगा।"

भगवान बोले, "तुम समर्थ भी हो और धर्मपरायण भी। सेवा एवं परोपकार का काम सबसे बड़ा पुण्य एवं धर्म है।"

सुखदेव बोला, "भन्ते! प्रातःकाल साढ़े छः बजे सभी साधकों को घुघरी के साथ आम, कटहल, बड़हल, फूट[1] एवं पीने के लिए सिखरन मिलेगा। ग्यारह बजे दाल, चावल, रोटी, सब्जी और खीरा मिलेगा।"

भगवान बोले, "और शाम को?"

"भन्ते! सायंकाल गोधूलि के पूर्व आप लोगों को लाई एवं खांड़ और दूध का रस मिलेगा।"

भगवान बोले, "सुखदेव एवं राजदेव! ध्यान से सुनिए। भोजन बनाने एवं परोसने का काम शान्तिराम अपने बिरादरी के साथ करेंगे।"

शान्तिराम बोला, "भन्ते! हम तो अन्त्यज हैं।"

"शान्तिराम जी! मनुष्य केवल मनुष्य है और कुछ नहीं।"

तीनों ने खुले दिल से भगवान के विचारों का समर्थन किया और आज्ञा लेकर अपने गाँव चले गए।

माह-सावन, दिन-मंगलवार

वर्षा-काल। सावन मास था। दिन था सोमवार। सायंकाल भिक्षुओं का धर्मोपदेश श्रवण के लिए सम्मिलन हुआ। भगवान बुद्ध धर्मोपदेश देने लगे और भिक्षु एकाग्रचित्त से मार्मिक कथाएँ सुनने लगे। जब प्रवचन समाप्त हो गया तो भगवान बोले, "भिक्षुओ! कल मंगलवार है। अभीष्ट अर्थ की सिद्धि देने वाला दिन है। बड़ा शुभ और कल्याणकारी दिन है। अतः कल ब्राह्म मुहूर्त में नित्यक्रिया से मुक्त होकर नहा-धोकर आसनासीन होकर विपश्यना का श्रीगणेश करना है।"

सभी भिक्षुओं ने समवेत स्वर में भगवान बुद्ध के शुभ प्रस्ताव का समर्थन किया।

---

1. एक तरह की ककड़ी जो पकने पर फट जाती है।

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

भगवान पुनः बोले, "भिक्षुओ! बड़ा ही कल्याणकारी मार्ग है। अब तुम साधना के व्यावहारिक पक्ष अर्थात् अनुभूत तथ्य, यथातथ्य ज्ञान प्राप्त करने जा रहे हो। प्रायोगिक रूप से तुम्हें अनित्यता, आस्थैर्यता, क्षणभंगुरता, नश्वरता, प्रतिक्षण उत्पाद-व्यय का अनुभव हो जाएगा। प्रज्ञा में पहुँचकर जब तुम्हारे मन में राग, द्वेष, मोह एवं तृष्णा का समूल विनाश हो जाएगा तब तुम लोगों को निर्वाण की प्राप्ति हो जायेगी।"

कौंडिन्य बोला, "भन्ते! साधना कितने सोपानों में होगी?"

"तीन—शील, समाधि और प्रज्ञा। पर इनका अभ्यास करते समय आर्य-मौन, शील तथा अधिष्ठान का सजगता, सतर्कता, सम्यक् स्मृति के साथ पालन करना पड़ेगा।"

वप्प हाथ जोड़कर बोला, "भन्ते! आर्य-मौन से क्या है?"

"भिक्षुओ। आर्य-मौन के विषय में ध्यान से सुनो? जब साधक तीन दिन, दस दिन, पन्द्रह दिन, बीस दिन, तीस दिन, पैंतालीस दिन, साठ दिन तथा नब्बे दिन की विपश्यना का संकल्प करता है तो उसका सर्वप्रथम यह धर्म होता है कि सम्पूर्ण रूप से मौन रहे। मौन का अर्थ होता है—मुनिभाव, न बोलना, चुप रहना। कहा भी गया है। 'मौनं सर्वार्थ साधनम्' अर्थात् मौन सभी अभीष्टों को प्राप्ति का सर्वोकृष्ट साधन है।"

सभी भिक्षु समवेत स्वर में 'साधु, साधु, साधु' बोल उठे।

भिक्षु भद्दिय का औत्सुक्य बढ़ गया। वह बोला, "भन्ते! आर्य-मौन केवल वाणी का ही होता है या तन और मन का भी होता है।"

"समझाता हूँ, समझाता हूँ, समझाता हूँ। आर्य-मौन के पालन में केवल वाणी पर ही संयम नहीं रखना पड़ता अपितु तन और मन पर भी नियंत्रण रखना पड़ता।"

महानाम बोला, "भन्ते! समझ गया। आर्य-मौन व्रत है। अतः मौन-व्रत धारण करने पर वाणी, काया और मन पर विराम लगाना पड़ता है।"

भगवान बुद्ध उसके चुप होने पर बोले, "भिक्षुओ! मौनव्रत बड़ा लाभकारी होता है। वाणी पर लगाम लगाने से साधक असत्य भाषण, अनर्गल संभाषण से बच जाता है। शील-पालन में वाणी-मौन से बड़ा बल मिलता है।"

अश्वजित बोला, "भन्ते! अब मन और काया-मौन को स्पष्ट करें?"

"भिक्षुओ! साधना करते समय मन से भी मौन रहना चाहिए। क्योंकि मनुष्य का मन चंचल होता है। उसकी गति प्रभंजन से भी तीव्रतर होती है। उसका यह स्वभाव होता है कि निरर्थक बातों तथा कामासक्ति में आकंठ निमग्न रहे। अतः

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

आनापान, समाधि तथा प्रज्ञा की सफलता के लिए मन की एकाग्रता परम आवश्यक है। एकाग्रचित्तता ही समाधि है। मन की एकाग्रता द्वारा आनापान तथा विपश्यना के समय काया के अन्दर एवं बाहर उद्‌भूत होने वाली नाना प्रकार की संवेदनाओं एवं वेदनाओं का आत्म-निरीक्षण संभाव्य होता है।"

यश कुलपुत्र बोला, "भन्ते! काया-मौन को समझायें?"

"शाबाश! यश! शाबाश! एकाग्रचित्तता के लिए काया पर नियंत्रण रखना परमावश्यक है। जैसे पशु-पक्षी इंगित भाषा का प्रयोग करते हैं वैसे मनुष्य भी कभी आँखों को तिरछा करके, कभी हाथों से कान और नाक को छूकर और कभी हाथों से संकेत करके अपने मन्तव्य को प्रकट करता है। इंगित भाषा-प्रयोग से मन चलायमान और उद्विग्न हो जाता है और मौन भंग हो जाता है। इसीलिए साधक को आसन बिछाकर पद्मासन लगाकर कायिक अधिष्ठान का अभ्यास करना पड़ता है। अधिष्ठान का अर्थ है कि सिर को सीधा करके एक ही आसन पर दत्तचित्त होकर बैठना। साधक न हिले न डुले, न करवट ले न अँगडाई, न मुँह बाए न हाथ से काया में किसी अंग पर उठने वाले सुखद या असुखद संवेदनाओं के उत्पन्न होने पर उन्हें खुजलाए या सहलाए। आत्म-निरीक्षण के लिए काया का स्थैर्य आवश्यक है। शरीर के किसी अंग पर यदि कहीं पसीना हो रहा हो अथवा खुजलाहट या दर्द हो रहा हो तो तटस्थ भाव से उसका निरीक्षण करता हुआ शरीर को स्थिर रखे। साधक को प्रतिक्षण शरीर में उत्पन्न होने वाली वेदनाओं-संवेदनाओं के प्रति सतर्क और सावधान रहकर आर्य-मौन को सार्थक बनाने के लिए अपने आसन पर एक स्थिति में अटल रहना चाहिए। यथार्थ एवं यथा-स्थिति के प्रति जागरूक रहकर धैर्यपूर्वक अभ्यास करते-करते साधक निर्वाण-प्राप्ति में सफल हो जाता है।"

ऐसा माना जाता है कि जो साधक वाणी से वाचाल होगा, उसका चित्त चंचल और उद्धत हो जाएगा। शरीर से उद्धत और मन से उद्दण्ड साधक स्मृतिहीन तथा विमोहित हो जाता है। अतः आर्य-मौन अमृतावस्था के प्राप्ति में विशेष रूप से सहायक होता है।

विपश्यना

भगवान बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओ! जो साधक मुमुक्षु होना चाहते हैं उन्हें विपश्यना का सतत अभ्यास करना पड़ता है। विपश्यना के अभ्यास द्वारा ही अर्हत्पद में प्रतिष्ठा होती है। विपश्यना ही प्रज्ञा का मार्ग है। सप्त-विशुद्धियों द्वारा विपश्यना-मार्ग के फल की प्राप्ति होती है।"

कौंडिन्य अपनी जिज्ञासा को रोक न सका। बोला, "भन्ते! सात विशुद्धियाँ

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

कौन-सी हैं? संक्षेप में बतलाने का कष्ट करें।"

भगवान बोले, "भिक्षुओ! सात विशुद्धियाँ इस प्रकार हैं–

1. शील-विशुद्धि, 2. चित्त-विशुद्धि, 3. दृष्टि-विशुद्धि (=नाम रूप का यथावत दर्शन), 4. काँक्षा-वितरण-विशुद्धि, (संशयों को उत्तीर्ण कर नाम-रूप के हेतु अपरिग्रह, 5. मार्गा-मार्ग-ज्ञानदर्शन-विशुद्धि (=मार्ग-अमार्ग का ज्ञान और दर्शन), 6. प्रतिपत्ति ज्ञान दर्शन-विशुद्धि (=अष्टांगिक मार्ग का ज्ञान तथा प्रत्यक्ष-साक्षात्कार) 7. ज्ञानदर्शन-विशुद्धि (=स्रोतापत्ति-मार्ग, सकृदागामि-मार्ग, अनागामि-मार्ग, अर्हन्मार्ग, इन चारों मार्गों का ज्ञान एवं प्रत्यक्ष दर्शन)।"

भगवान बुद्ध द्वारा विश्लेषित चित्त-विशुद्धि के प्रकारों का ज्ञान प्राप्त कर भिक्षुओं की अविद्या काफूर हो गई। विकृतज्ञता से भर उठे। कौंडिन्य बोला, "भन्ते! अब विपश्यना को सरल शब्दों में स्पष्ट करें?"

"भिक्षुओ! विपश्यना साधना आत्ममुखी होने की साधना है, सत्यान्मुखी होने की साधना है। दुःख-निरोध का सर्वोत्तम पथ विपश्यना है। विपश्यी साधक अन्तर्मुखी होकर साढ़े तीन हाथ की काया के भीतर की सच्चाई को देखता है। वह शरीर-स्कंध के आभ्यान्तर एवं बाह्य चेतना के स्तर पर चाही-अनचाही संवेदनाओं-वेदनाओं की अनुभूति करता है। वह निरपेक्ष, तटस्थ, सतर्क एवं साक्षी भाव से शरीर के अन्दर उत्पाद-व्यय होने वाली संवेदनाओं का गंभीरतापूर्वक निरीक्षण करता है। बार-बार अभ्यास करने पर उसे इस बात का परिज्ञान हो जाता है कि शरीर में उत्पन्न होने संवेदनाएँ अनित्य हैं, शरीर अनित्य है, संसार की सभी चेतन-अचेतन वस्तुएँ नश्वर हैं, क्षणभंगुर हैं, विनाशशील हैं। कोई भी चीज शाश्वत नहीं है। न ही आत्मा न ही परमात्मा। अपने मन के मलों, गन्दगियों एवं विकारों को देखते-देखते प्रज्ञा में स्थिर होकर साधक सारे विकारों से मुक्त हो जाता है। मनुष्य जब काया, वाणी तथा चित्त के दुराचारों से विरत हो जाता है तभी वह सुरक्षित होता है। विपश्यना प्रज्ञा का मार्ग है। प्रज्ञा में साधक समता में स्थिर होकर द्वन्द्वों से विमुक्त हो जाता है।"

कौंडिन्य ने प्रश्न किया, "विपश्यना के कितने सोपान हैं?"

"भिक्षुओ! विपश्यना के विभिन्न सोपान हैं–कायानुपश्यना, चित्तानुपश्यना, वेदनानुपश्यना और धम्मानुपश्यना।"

कौंडिन्य बोला, "भन्ते! चारों विपश्यनाओं को स्पष्ट करें?"

"भिक्षुओ! धम्म की साधना पूर्णतः वैज्ञानिक है। विपश्यना का अर्थ ही है–भीतर के सत्य की खोज करना। अतः जब एक विपश्यी साधक अन्तर्मुखी होकर अपने अन्दर की सच्चाई को खोजता है तो वह मन, काया और चित्त के क्षेत्र

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

में प्रविष्ट होता है।"

कौंडिन्य बोला, "भन्ते समझ गया। साधक जब काया के बारे में जाँच-पड़ताल करता है तो काया से संबंधित होने के कारण उसे कायानुपश्यना कहते हैं और जब चित्त के संबंध में खोज करता है तो उसे चित्तानुपश्यना कहते हैं।"

"आयुष्मान कौंडिन्य! बड़ी प्रखर है तुम्हारी बुद्धि। अक्लमंद को इशारा काफी। पर, ध्यान रखो। ये दोनों अन्योन्याश्रित हैं। अतः इनके संबंध में एक पंथ दो काज वाली कहावत चरित्रार्थ होती है। जब एक के संबंध में खोज करते हैं तो दूसरा सहायक सिद्ध होता है। शरीर के अंग-अंग में, अंग-अंग के अणु-अणु में सतत संवेदनाओं का उत्पाद-व्यय होता रहता है। स्वानुभूति ही साधक को अंग-प्रत्यंग में उद्भुत होने वाली संवेदनाओं का अनुभव कराती है। अतः अनुभूति के स्तर संवेदनाओं को जानना आवश्यक है।"

कौंडिन्य बोला, "वेदनानुपश्यना क्या है?"

"भिक्षुओ! वेदनानुपश्यना काया पर उद्भूत होने वाली संवेदनाओं की जानकारी कराती है। शरीर के सहारे ही संवेदना की अनुभूति होती है। संवेदना के आधार पर साधक शरीर का निरीक्षण करता है और इस सच्चाई से अवगत होता है कि संवेदनाओं में पल-पल परिवर्तन होता रहता है। संवेदनाओं के सहारे साधक काया के अंतिम सत्य के सन्निकट पहुँचता है।

शरीर पर होने वाली वेदना के आधार पर ही साधक वेदनानुपश्यना करता है।"

सभी भिक्षु काया के सत्य की जानकारी प्राप्त कर अतिप्रसन्न हुए।

कौंडिन्य ने प्रश्न किया, "भन्ते! चित्तानुपश्यना एवं धम्मानुपश्यना को भी समझाने की कृपा करें?"

"भिक्षुओ! चित्त में जो हलचल होती है, उसके अनुसंधान को चित्तानुपश्यना कहते हैं। पर चित्तानुपश्यना का धम्मानुपश्यना से गहरा संबंध है। चित्त जो कुछ धारण करता है, उसे ही धम्म कहते हैं। चित्त पर जो कुछ घटित हो रहा है, उसे तटस्थ भाव से, साक्षी भाव से जानना धम्मानुपश्यना है। जब चित्त राग धारण करता है तो सराग चित्त कहा जाता है और जब राग विमुक्त हो जाता है तो उसे बीतराग चित्त कहते हैं। इसी प्रकार धम्मानुपश्यना से साधक को सद्वेष चित्त, बीतद्वेष चित्त, समोह चित्त—बीतमोह चित्त, वाचाल चित्त, मौन चित्त, अशांत चित्त—शांत चित्त की सच्ची अनुभूति होती है।"

संवेदनाओं के आधार पर हमें यह ज्ञान होता है—यह चित्त ऐसा है। ऐसा है यह धम्म। संसार अनित्य है, नश्वर है, क्षण भंगुर है। पल-पल परिवर्तनशील है।

कौंडिन्य बोला, "भन्ते। विपश्यना बड़ा ही कल्याणकारी मार्ग है।"

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

"भिक्षुओ! वेदनानुपश्यना, चित्तानुपश्यना एवं कायानुपश्यना दोनों का बोध कराती है और धम्मानुपश्यना वेदना-संवेदनाओं के तरंगमय अनित्य स्वभाव को स्पष्ट करती है। संवेदनाओं के उदय-व्यय का साक्षात्कार कर प्रज्ञा जगाकर हम अपने मन को वीतराग एवं अनासक्त बना सकते हैं। इससे अपना भी कल्याण होगा और संसार का भी।"

साधना का श्रीगणेश

मंगलवार, ब्राह्ममुहूर्त में नहा-धोकर सभी साधक हाथ में कुशासन, कम्बल और कपड़ा लेकर साधना-भवन में एकत्र हो गए। सबका चेहरा दमक रहा था। सभी लोग एकाग्रचित्त होकर भगवान बुद्ध के मुँह की ओर देख रहे थे। भगवान ने उनसे कहा, "आज से दस दिवसीय साधना प्रारम्भ होने जा रही है। सर्वप्रथम तुम लोग अलग-अलग स्थान पर कुशासन बिछाकर, उस पर कम्बल डालो और तत्पश्चात कपड़ा बिछाकर बैठ जाओ। यह तुम लोगों का सुखासन हुआ। अधिष्ठान स्थिर रहेगा। दस दिन कोई भी साधक अपना आसन नहीं बदलेगा। आज से लेकर दस दिन तक वाणी, काया और मन से मौन धारण कर दृढ़तापूर्वक मौन व्रत का पालन करो।"

शील

समाधि के पहले शील में प्रतिष्ठित होना पड़ता है क्योंकि शील पालन से विघ्नों का नाश होता है।

विपश्यना का प्रथम सोपान शील है। शील पाँच हैं–1. अहिंसा, 2. ब्रह्मचर्य, 3. अस्तेय, 4. सत्य-पालन, 5. नशा-त्याग। अहिंसा का पालन तभी सार्थक होगा जब हम वाणी, मन और कर्म किसी जीव या मनुष्य की हत्या नहीं करेंगे, मन में किसी की हत्या के विषय में विचार नहीं करेंगे और वाणी से किसी प्राणी के दिल को आहत नहीं करेंगे। ब्रह्मचर्य पालन करते समय मन, वाणी और काया से मैथुन का परित्याग करेंगे। अस्तेय का अर्थ है–चोरी न करना। सत्य पालन करना अर्थात् किसी की चुगली न करना, झूठ न बोला। नशा-त्याग करने का तात्पर्य है–अफीम, भाँग, शराब आदि का पान करना। सभी साधक इन पाँचों शीलों का कड़ाई से पालन करेंगे। समय-समय पर आपको भोजन और अल्पाहार मिलता रहेगा।

सभी साधक दूसरे के आसन से कुछ दूर हटकर अपना-अपना आसन बिछाकर शान्तिपूर्वक बैठ गए।

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

भगवान बुद्ध ने कहा, "श्रद्धापूर्वक सभी साधकों को बुद्ध, धर्म और संघ की शरण में जाना पड़ेगा। अतः पहले मैं बोलूँगा और बाद में साधक।"

भगवान बुद्ध बोले–

"बुद्धम् शरणं गच्छामि।"

साधक–"बुद्धम् शरणं गच्छामि।"

बुद्ध–धम्मं शरणं गच्छामि।

साधक–धम्मं शरणं गच्छामि।

बुद्ध–सङ्घं शरणं गच्छामि।

साधक–सङ्घं शरणं गच्छामि।

बुद्ध–बुद्धम् शरणं गच्छामि।

साधक–बुद्धम् शरणं गच्छामि।

बुद्ध–धम्मं शरणं गच्छामि।

साधक–धम्मं शरण गच्छामि।

बुद्ध–सङ्घं शरणं गच्छामि।

साधक–सङ्घं शरणं गच्छामि।

बुद्ध–बुद्धम् शरणं गच्छामि।

साधक–बुद्धम् शरणं गच्छामि।

बुद्ध–धम्मं शरणं गच्छामि।

साधक–धम्मं शरणं गच्छामि।

बुद्ध–सङ्घं शरणं गच्छामि।

साधक–सङ्घं शरणं गच्छामि।

आनापान

साधको! सर्वप्रथम हम आनापान का स्मृतिपूर्वक अभ्यास करेंगे। 'आन' का अर्थ होता है–'साँस लेना' और अपान का अर्थ होता है–साँस छोड़ना। इन्हें आश्वास-प्रश्वास भी कहा जाता है। 'आश्वास' साँस छोड़ने को कहते हैं और प्रश्वास साँस लेने को। स्मृति-पूर्वक आश्वास-प्रश्वास की क्रिया द्वारा जो समाधि निष्पन्न की जाती है, उसे आनापान स्मृति समाधि कहते हैं।

साधको! शरीर, गर्दन तथा सिर को सीधा करके आँखें बन्द कर लो। अभ्यास करते समय न तो शरीर के किसी अंग को खुजलाना, न ही स्वेद-कण पोंछना। न हाथ हिले न पैर, न मुँह खुले न ही कोई अंग।

भगवान के निर्देशानुसार सभी साधक अपनी स्मृति को जाग्रत कर सतर्क और

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

सजग होकर ध्यान लगाने के लिए तत्पर हो उठे। साधकों को संबोधित करते हुए भगवान बुद्ध बोले, "भिक्षुओ! अपना सारा ध्यान श्वास के निर्गमन एवं आगमन पर केन्द्रित कर लो। साँस नथुनों से कैसे बाहर जा रहा है और कैसे अन्दर आ रहा है, इस प्रक्रिया को ध्यान से देखो। शुद्ध साँस को केवल देखो। पर सतर्क होकर मन को अपने वश में करने का प्रयास करो। उसे अतीत और भविष्य की ओर से खींचकर वर्तमान की ओर लाने का यथासंभव प्रयास करो। मन बड़ा ही चंचल और द्रुतगामी है। यह कभी अतीत की घटनाओं में रमता हुआ मग्न रहता है और कभी-कभी भविष्य की कल्पित योजनाओं एवं सपनों में उलझा रहता है। इससे छेड़-छाड़ मत करो। जैसे प्रेम से नारी और विशाल हाथी को वश में किया जाता है उसी प्रकार प्यार से दुलार कर, पुचकार कर मन पर संयम लगाम लगाकर उसे वश में करो। एक बार जब यह मन वश में हो गया तो समझो सारा काम बन गया।"

भगवान का आदेश पाकर साठों साधक ध्यान से साँस के बाहर जाने और अन्दर आने की स्वाभाविक प्रक्रिया को देखने लगे। आश्वास और प्रश्वास-दर्शन से सर्वप्रथम उन्हें यह ज्ञात हुआ कि साँस कभी नाक के दाहिने छिद्र से बाहर निकलता है और अन्दर आता है। बाहर निकलते समय साँस प्रायः गर्म रहता है। साँस निरन्तर प्रकृति के अनुसार स्वाभाविक गति से निर्गमन और आगमन करता रहता है। साँस देखने से उन्हें यह ज्ञात हुआ कि हम आज तक भूतकाल की सुखद या दुखद स्मृतियों में मग्न रहे या भविष्य की सुखद या दुखद कल्पनाओं में खोये रहे। परिणामतः असंतुष्ट, असंतुलित एवं बेचैन रहे।

साधनारत साधकों की तल्लीनता को देखकर भगवान बुद्ध के उत्साह की सीमा रही। बोले, भिक्षुओ! तुम सब जो साधना का अभ्यास कर रहे हो, वह वर्तमान में जीने का कार्य है। मन को सिखा रहे हो कि अतीत और भविष्य में मत उड़ो, वर्तमान में विचरो! जो साँस जा रहा है और आ रहा है, उसे देखो। जब मन वर्तमान में रहना सीख जाएगा तो हमें सच्चाई, यथार्थ, यथा वास्तव का ज्ञान होगा। हम स्थूल से सूक्ष्म की अग्रसर होंगे और हमें ज्ञात से अज्ञात का बोध होगा। यथाभूत साँस को देखने में यदि तुम दत्तचित्त होकर तल्लीन रहोगे तो राग, द्वेष और मोह की उलझन से दूर रहोगे।"

प्रातःकाल जब साधना के अभ्यास का एक घण्टा बीत गया तब भगवान बुद्ध ने उन्हें पाँच मिनट का विश्राम दिया। विश्राम का समय समाप्त होते ही साधक तपोभवन में लौटकर अपने-अपने आसन पर बैठ गये और भगवान के आदेशानुसार अभ्यास में जुट गए।

भगवान बुद्ध बोले, "साधना की सारी सफलता अभ्यासाश्रित है। अभ्यास में

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

सातत्य बना रहना चाहिए। अभ्यास न करने पर चित्त निकम्मा एवं विकारग्रस्त हो जाता है पर बार-बार अभ्यास करने से चित्त महान कल्याणकारी बन जाता है। तुम लोग जो अभ्यास कर रहे हो वह तुम्हारे स्वभाव को पलटने का विनम्र प्रयास है।

भगवान की वाणी सुनकर साधक सतर्क एवं सजग चित्त से साँस का आना-जाना देखने लगे। वे स्मृति-परायण होकर साँस को छोड़ने और लेने लगे। सचमुच आश्वास एवं प्रश्वास की एक भी प्रवृति स्मृति-रहित नहीं होती। आश्वास-प्रश्वास की समस्त क्रियाएँ साधकों की जानकारी में होती हैं। साधक जब दीर्घ श्वास छोड़ते थे या दीर्घ श्वास लेते थे तो उन्हें स्पष्ट रूप से विदित होता था कि वे दीर्घ साँस छोड़ रहे हैं या दीर्घ साँस ले रहे हैं।

सच बात है कि आनापान के समय स्मृति-आलम्बन के समीप सदैव उपस्थित रहती है और प्रत्येक क्रिया की प्रत्यवेक्षा (किसी बात के पूर्वापर का विचार करना) है।

प्रभात-बेला के आगमन के साथ ही पक्षी चहचाने लगाने, प्रकाश फैलने लगा। साढ़े छः बजे प्रातः साधकों के जलपान का प्रबन्ध था। भगवान बुद्ध मंगल कामना करने लगे।

सब्ब भवति मंगलम्।
सब्ब भवति मंगलम्।
सब्ब भवति मंगलम्।

साधक—साधु।
साधु।
साधु।

साधना से छूटते ही साधक भोजन-कक्ष में पहुँच गए। शान्तिराम के सभी आदमियों ने दोनों में चने की घुघरी और पत्तलों पर फूट सजाकर रखे थे। बड़े-बड़े पुरवे साढ़ी सहित सिखरन से लबालब भरे हुए थे। साधकों ने छककर सिखरन पान किया। जलपान के बाद वे अपने-अपने बसेरे पर चले गए।

प्रातः आठ बजे से ग्यारह बजे तक

प्रातः आठ बजे सभी साधक तपोभवन में आकर अपने-अपने आसन पर विराजमान हो गए। भगवान बुद्ध उनके सामने सुसज्जित शिला पर आकर पद्मासन लगाकर बैठ गए।

सभी साधक सावधानी से साँस के आवागमन का निरीक्षण करने लगे। उन्हें भगवान बुद्ध के कथन पर पक्का विश्वास हो गया था कि आत्म-निरीक्षण करते,

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

साँस का आना-जाना देखकर वे सत्य के निकट पहुँच जाएँगे।

भगवान बुद्ध ने साधकों को संबोधित करते कहा, "भिक्षुओ! साँस के स्वाभाविक निर्गमन और आगमन पर अपना चित्त केन्द्रित कर लो। ध्यान से देखोगे तो तुम्हें यह पता चल जाएगा कि तुम दीर्घ साँस ले रहे हो। इसी प्रकार जब तुम ह्रस्व साँस लोगे तो अनुभव करोगे कि तुम ह्रस्व साँस ले रहे हो। साधको एक बात पर और ध्यान दो। अभी-अभी तुमने यह अनुभव किया कि अन्दर से निकलने वाला साँस गर्म होता है, उसी प्रकार ध्यान से बाहर से अन्दर आने वाले साँस को ध्यान देखो। तुम्हें शीघ्र ही यह पता चल जायेगा कि बाहर से अन्दर आने वाला साँस अपेक्षाकृत ठंडा है। यह नैसर्गिक नियम है। गौर करो। हमारी काया के भीतर क्या हलचल हो रही है?"[1]

साधक ध्यान मग्न होकर आनापान का अभ्यास करते रहे और आते-जाते साँस की गति को देखते रहे।

जब एक घण्टा समाप्त हो गया तो भगवान बोले, "साधको! नौ बज गया। पाँच मिनट विश्राम कर पुनः साधना-भवन में आ जाओ।"

नौ पाँच पर वे वापस आकर आसन ग्रहण किये। भगवान के आदेश से वे ध्यानमग्न हो गए।

भगवान बुद्ध बोले, "भिक्षुओ! हमारी उद्‌भावना बड़ी उर्वर होती है। यह मन की वह शक्ति है जो परोक्ष विषयों का रूप, चित्र उसके सामने ला देती है। हमारी स्मृति में कभी सुखद स्थितियाँ आती हैं और कभी दुखद। मन की यह सबसे बड़ी विशिष्टता होती है कि वह सुखद स्थितियों में आकण्ठ डूबा रहना चाहता है और दुखद परिस्थितियों से पलायन करना चाहता है। अतः हमारे मन में राग, द्वेष और मोह—ये तीनों स्थितियाँ सतत बरकरार रहती हैं। जब तक हमारा मन राग, द्वेष और मोह से ग्रसित रहेगा तब तक मन को शान्ति नहीं मिल सकती। तुम जो साँस के निगर्मन और आगन की प्रक्रिया को देख रहे हो, उससे तुम्हारा चित्त विकारों से निर्मल हो एकाग्र हो जायेगा। यथाभूत साँस को देखते रहो।"[2]

दस बज गया। भगवान बुद्ध ने कहा, "पाँच मिनट विश्राम करके वापस आ जाओ। अल्प विश्राम के बाद साधक अपने आसन पर बैठ गए।"

भगवान बुद्ध बोले, "ग्यारह बजे तक मन को एकाग्र कर स्मृतिपूर्वक साँस के आवागमन को देखो। ग्यारह बजते ही भोजनालय में चले जाना और छककर भोजन करना। तत्पश्चात एक बजे तक विश्राम करना और इसके बाद तपोभवन में आ जाना।"

---

1. आत्म-दर्शन, आचार्य सत्यनारायण गोयनका, पृ. 81-85
2. वही, पृ. 86

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

भोजनावकाश

सुखदेव, रामदेव और शान्तिराम ने स्वच्छतापूर्वक पत्तलों पर रोटी, चावल, सब्जी और खीरा के टुकड़े रखवा दिए। दोनों में दाल और पुरवों में पानी भरकर रखवा दिए।

भिक्षु शान्तिपूर्वक भोजनालय में आकर बैठ गए। क्रम से बैठकर स्वादिष्ट भोजन का आस्वादन करने लगे। परोसने वाले जिस भिक्षु को जिस किसी चीज की इच्छा होती थी, परस देते थे। तृप्त होने के बाद साधक बरगद की छाया तले विश्राम करने चले गए।

मंगलवार, अपराह्न एक बजे

एक बजे का घण्टा बजते ही सभी साधक पुनः आकर तपोभवन में अपने-अपने आसन पर बैठ गए और आँखें बन्द करके चुपचाप अपनी-अपनी साँस की सहज गति का निरीक्षण करने लगे।

भगवान बुद्ध बोले, "साधको! यथाभूत साँस का निरीक्षण करो। यदि अपने चंचल चित्त को साँस पर केन्द्रित करोगे तो धीरे-धीरे एकाग्र होकर तुम्हारे वश में हो जाएगा। चित्त पर विजय पाना जीवन की सबसे बड़ी विजय है। पर, मन को वश में करने के लिए साँस देखने का निरन्तर अभ्यास करना है। यदि चित्त एकाग्र होगा तो विकार और मल अपने-आप क्षीण होते जाएँगे।"

दो बजे अपराह्न साधकों को पुनः पाँच मिनट का विश्राम मिला। हाथ-मुँह धोकर वे साधना-कक्ष में उपस्थित हो गए।

भगवान ने साधको को सम्बोधित किया। बोले, "भिक्षुओ! तुम जो लगातार साँस देखने का अभ्यास कर रहे हैं, वह चित्त के स्वभाव को बदलने का एक सद्प्रयास है। इस दौरान मन उचट जाता है, मन दूसरी दिशा में भागने लगता है। कभी-कभी जम्हाई आयेगी और कभी-कभी नींद। हम मन के स्वभाव को बदलने का प्रयास करेंगे तो प्रतिक्रिया तो होगी ही। पर जैसे-जैसे अभ्यास बढ़ता जाएगा, प्रतिक्रियाएँ काफूर होती जाएँगी। मन में संगृहीत विकार क्षयीभूत होते जाएँगे। अतः दृढ़ता के साथ साँसों को देखने में तल्लीन रहो। निरंतर अभ्यास से विकार निर्मूल होते जायेंगे और मन निर्मल होता जाएगा।"[1]

साढ़े तीन बजे पुनः पाँच मिनट का विश्राम मिला। हाथ-मुँह धोकर भिक्षु साधना-कक्ष में आकर साधनारत हो गए। पाँच बजे तक साधना करते रहे।

---

1. आत्मदर्शन, आचार्य सत्यनारायण गोयनका, पृ. 87

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

अल्पाहार

भोजनालय में एक बड़े कुंडे में खाँड़ को घोलकर उसमें साढ़ी सहित दूध मिला दिया गया और एक शिला पर लाई भरकर एक बड़ी चँगेरिका रख दी गई। सुखदेव, राजदेव और शान्तिराम एक ओर खड़े हो गए। साधक लाई खा-खाकर रस पीते रहे। जब अघा गए तो बाहर जाकर टहलने लगे।

सायं छः बजे

सायंकाल छः बजे साधना-कक्ष में आकर साधक अभ्यास करने लगे। भगवान बुद्ध बोले, "साधको! दिनभर साँस देखते-देखते तुम लोगों को कुछ शांति अवश्य प्राप्त हुई होगी। साँस का सतत ध्यान करते-करते विकार रहित होकर, मल रहित होकर मन में अप्रत्याशित सुधार हो जाता है। इससे तुम्हीं लोगों का ही मंगल नहीं होगा, अपितु विश्व का तथा समाज का बहुत बड़ा कल्याण होगा। अब तुम लोग अभ्यास करो। सात बजने पर पाँच मिनट विश्राम करके साधनाकक्ष में वापस आ जाना। सवा सात बजे रात में धर्मोपदेश प्रारम्भ होगा और ध्यान की चर्चा होगी।"

ध्यान

सवा सात बजे रात सभी साधक साधना-कक्ष में आकर अपने-अपने आसन पर बैठ गए और भगवान बुद्ध के मुँह से अमृतवाणी सुनने के लिए सजग एवं सतर्क होकर प्रतीक्षा करने लगे।

भगवान बुद्ध भिक्षुओं की मनोदशा से अवगत हो गए। भिक्षुओं को सम्बोधित करते हुए बोले, "भिक्षुओ! चित्तवृत्ति निरोध के लिए अभ्यास और प्रव्रज्या दोनों की साथ-साथ आवश्यकता होती है। वैराग्य से चित्त की बर्हिमुखी प्रवृत्तियाँ अन्तर्मुखी तो होती हैं पर चित्त की स्थिरता के लिए सतत अभ्यास की आवश्यकता है। अभ्यास ही मोक्ष-मार्ग की कुंजी है। चित्त को निर्मल और केन्द्रित करने के लिए जो प्रयत्न पूर्ण उत्साह और सामर्थ्य के साथ किया जाता है, उसे अभ्यास करते हैं। अभ्यास के लिए कुछ भी असाध्य नहीं है। कठिन से कठिन काम अभ्यास से सुलभ हो जाते हैं।"

साधक एकाग्रचित्त होकर भगवान की जीवनोपयोगी बातों का ग्रहण करने लगे।

भगवान के मन में अचानक यह बात उपजी कि साधक ध्यानमग्न होकर साँस के निर्गमन और आगमन का निरीक्षण कर रहे हैं। स्वानुभूति के स्तर पर अन्तर्मन की गहराइयों को छू रहे हैं। क्यों न इनको ध्यान के चारों प्रकारों से

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

अवगत करा दें।

पलभर में अपने विचारों को वाणी देने लगे। बोले, "भिक्षुओ। ध्यान चार प्रकार के होते हैं—प्रथम ध्यान, द्वितीय ध्यान, तृतीय ध्यान और चतुर्थ ध्यान। मन एकाग्र कर सुनो।"

प्रथम ध्यान

काम तथा अकुशल के परित्याग से प्रथम ध्यान का लाभ होता है। ये दोनों प्रथम ध्यान के प्रतिपक्ष हैं। कामधातु का प्रथम ध्यान में विशेषकर अतिक्रमण होता है। काम से हमारा अभिप्राय 'वस्तुकाम' से है। जो वस्तु काम का उद्दीपन करे वह वस्तुकाम है। जैसे प्रिय का मनोरम रूप। वस्तुकाम के साथ-साथ क्लेशकाम का भी परित्याग करना पड़ता है। क्लेशकाम के अन्तर्गत मनोवांछित वस्तु की उत्कट अभिलाषा, राग और लोभ की गणना होती है। जब हम अकुशल काम का नाम लें तो समझ लो क्लेश काम तथा अन्य अकुशल की चर्चा कर रहे हैं। काम से जब हम अपना ध्यान हटाते हैं तब कार्य-विवेक का प्रादुर्भाव होता है और अकुशल के परित्याग से चित्त-विवेक की जागृति होती है। पहले से तृष्णा आदि क्लेश के विषय का पूर्ण त्याग तथा दूसरे से क्लेश के विवर्जन की सूचना मिलती है। पहले से कामसुख (मैथुनसुख) का परित्याग एवं दूसरे से ध्यान सुख का परिग्रह द्योतित होता है। पहले से चपल भाव के हेतु का विवर्जन एवं दूसरे से अविद्या का परित्याग प्रकाशित होता है। पहले से प्रयोग-शुद्धि (प्राणातिपातादि अशुद्ध प्रयोग का परित्याग) तथा दूसरे से अध्याशय की शुद्धि सूचित होती है।[1]

नीवरण धर्म

अकुशल धर्मों से पाँच नीवरणों से ही आशय है। ध्यान के अंग इनके प्रतिपक्ष हैं और इनका विघात करते हैं। नीवरण पाँच हैं—

1. समाधि कामछन्द (=अभिलाष, लोभ, तृष्णा) का प्रतिपक्ष है। भिक्षुओ! भीतर कामछन्द होने पर तुम्हें भलीभाँति यह ज्ञात होता है कि मेरे भीतर कामछन्द है और यदि तुम्हारे अन्दर कामछन्द नहीं है तो भलीभाँति जानते हो कि मेरे भीतर कामछन्द नहीं है। जैसे अनुत्पन्न कामछन्द की उत्पत्ति होती है उसी प्रकार तुम यह भी जानते हो कामछन्द का प्रहाण (विनाश) होता है। पक्का विश्वास रखो, "उच्छिन्न कामछन्द की पुनः उत्पत्ति नहीं होती।"

2. प्रीति व्यापाद (=हिंसा) का प्रतिपक्ष है। व्यापाद द्रोह को कहते हैं। भीतर

1. बौद्ध-धर्म-दर्श, आचार्य नरेन्द्रदेव, पृ. 66-67

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

व्यापाद (द्रोह) होने पर अच्छी तरह जानते हो कि मेरे भीतर व्यापाद है और न होने पर जानते हो कि मेरे भीतर व्यापाद नहीं है। इतना ही नहीं, यह भी जानते हो कि जैसे अनुत्पन्न व्यापाद की उत्पत्ति होती है, वैसे ही उत्पन्न व्यापाद का प्रहाण (विनाश) होता है। याद रखो, नष्ट हुए व्यापाद की पुनः उत्पत्ति नहीं होती है।

3. **स्त्यान** (आलस्य-अकर्मण्यता। वितर्क का स्त्यान-(मन एवं तन का आलस्य) प्रतिपक्ष है। साधको! जिस समय तुम्हारे भीतर स्त्यानमृद्ध की उत्पत्ति होती है, तुम अच्छी तरह जानते हो कि तुम्हारे अन्दर स्त्यानमृद्ध है। न होने पर जानते हो कि तुम्हारे भीतर स्त्यानमृद्ध नहीं है। जिस प्रकार अनुत्पन्न स्त्यानमृद्ध की उत्पत्ति होती है उसी प्रकार इसका प्रहाण भी होता है। विनष्ट स्त्यानमृद्ध फिर अस्तित्व में नहीं आता।

4. **औद्धत्य-कौकृत्य** (उद्वेग, खेद) सुख का प्रतिपक्ष है। भीतर औद्धत्य-कौकृत्य होने पर तुम्हें अच्छी तरह विदित होता है कि तुम्हारे भीतर औद्धत्य-कौकृत्य है और न होने पर जानते हो कि तुम्हारे भीतर औद्धत्य-कौकृत्य नहीं है। जैसे अनुत्पन्न औद्धत्य-कौकृत्य की उत्पत्ति होती है वैसे ही उत्पन्न औद्धत्य-कौकृत्य का प्रहाण (विनाश) भी होता है पर, औद्धत्य-कौकृत्य पुनः अस्तित्व में नहीं आता है।

5. **विचिकित्सा (संदेह)**–विचिकित्सा विचार का प्रतिपक्ष है। साधको! भीतर विचिकित्सा होने पर अच्छी तरह पता चल जाता है कि हमारे अन्दर विचिकित्सा (संदेह) है और न होने पर हमें अहसास हो जाता है कि हमारे भीतर विचिकित्सा नहीं है। जैसे अनुत्पन्न विचिकित्सा की पुनः उत्पत्ति होती है वैसे ही उत्पन्न हुई विचिकित्सा का प्रहाण (विनाश) भी होता है। उच्छिन्न विचिकित्सा पुनः नहीं पनपती।

काम के विवेक से कामछन्द का विष्कंभन तथा अकुशल धर्मों के विवेक से शेष चार नीवरणों का विष्कंभन होता है।

पाँचों नीवरण प्रथम ध्यान के प्रहाण-अंग हैं। जब तक इनका विष्कंभन नहीं होता है तब तक ध्यान का उत्पाद नहीं होता है। यद्यपि ध्यान के क्षण में अन्य अकुशल धर्मों का भी प्रहाण होता है फिर भी पूर्वोक्त नीवरण ध्यान में विशेष रूप से अन्तराय (विघ्न) उपस्थित करते हैं। इन पाँच नीवरणों का विवर्जन कर प्रथम ध्यान वितर्क, विचार, प्रीति, सुख, समाधि इन पाँच अंगों से समन्वागत होता है।

भिक्षुओ! एक साधक को पाँच प्रकार से प्रथम ध्यान पर विजय प्राप्त करनी चाहिए–

1. आवर्जन (पराभूत), 2. सम, 3. अधिष्ठान, 4. व्युत्थान (सचेष्टता), 5. प्रत्यवेक्षण (देखभाल, निगरानी)।

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

जब एक साधक को इष्ट देश और काल में ध्यान के प्रत्येक अंग को इष्ट समय के लिए शीघ्र यथा रुचि प्रवृत्त करने की सामर्थ्य प्राप्त हो जाती है तो उसे आवर्जन-वशिता कहते हैं। आवर्जन-वशिता प्राप्त करने के लिये साधक को क्रम से ध्यान के अंगों का आवर्जन करना पड़ता है। जो साधक प्रथम ध्यान से उठकर पहले वितर्क का आवर्जन करता है और भावांग का उपच्छेद करता है, उसमें उत्पन्न आवर्जन के बाद ही वितर्क को आलम्बन बना चार-पाँच जवन (चेतनाएँ) उत्पन्न होते हैं। उसके बाद दो पल के लिए भवांग में पात होता है। तब विचार को आलम्बन बना उक्त प्रकार से फिर जवन उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार ध्यान के पाँचों अंगों में चित्त को निरन्तर प्रेषित करने की शक्ति साधक को प्राप्त हो जाती है। अंगावर्जन के साथ ही योगी को ध्यान-समंगी होने की योग्यता प्राप्त हो जाती है।

एक या दस अंगुलि-स्फोट के काल तक वेग को रोककर ध्यान की प्रतिष्ठा करने की शक्ति को अधिष्ठान-वशिता कहते हैं। ध्यान-समंगी होकर ध्यान से उठने की शक्ति को व्युत्थान-वशिता कहते हैं। यह व्युत्थान भावांग चित्त की उत्पत्ति है। वितर्क आदि ध्यान के अंगों के यथाक्रम आवर्जन के बाद जो जवन प्रवृत्त होते हैं, वे प्रत्यवेक्षण के जवन हैं। इनके प्रत्यवेक्षण की शक्ति को प्रत्यवेक्षण-वशिता कहते हैं।[1]

साधको! यह तो हुई प्रथम ध्यान की चर्चा। दूसरे ध्यान की चर्चा कल करेंगे। जाओ विश्राम करो।

बुधवार, साधना का दूसरा दिन

बुधवार को ब्राह्ममुहूर्त में साठो साधक नित्यक्रिया सम्पन्न कर हाथ-मुँह धोकर साधना-कक्ष में आकर बैठ गए। उन्हें शान्त चित्त तथा मौन देखकर भगवान बोले, "साधको! सभी लोग जागरूक होकर अपने चित्त को साँस पर केन्द्रित कर साँस की बाहर जाने और अन्दर आने की प्रक्रिया को स्मृतिपूर्वक देखें। स्पष्ट-स्थान पर ही स्मृति उपस्थापित कर भावना करें। इससे भावना की सिद्धि होगी। बाह्य तर्क-वितर्क का उपच्छेद कर आश्वास-प्रश्वास पर चित्त की प्रतिष्ठा करें।"

सभी साधक भगवान द्वारा निर्देशित मार्ग का अनुगमन करने लगे।

भगवान बुद्ध का सम्बोधन कार्य सतत चलता रहा। वह बोले, "साधको! धैर्य धारण करना साधना की सफलता का सर्वोत्कृष्ट उपाय है। वास्तव में साधना का कार्य सरल नहीं अपितु दुरूह है। साधना-काल में एक नहीं, अनेक कठिनाइयाँ

1. बौद्ध-धर्म-दर्शन, आचार्य नरेन्द्रदेव, पृ. 68-79।

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

आती हैं। मन स्वच्छन्द है। वह हर पल भटकता रहता है, चंचल रहना उसका स्वभाव है। अतः साँस का निरीक्षण करते समय वह अन्यत्र रमने लगे तो चिन्ताकुल नहीं होना चाहिए। यह उस क्षण की सच्चाई है। इसे स्वीकार करो। अपने आप मन भागा है तो अपने आप ही लौट भी आएगा, इस विश्वास के साथ इसे एकाग्र करने का प्रयास करते रहें। आते-जाते साँस को केवल जानो। इस पल की जो सच्चाई है, उसे स्वीकार कीजिए। आलस्य छोड़कर साँस देखने का काम करते रहें।"

अभीष्ट-प्राप्ति के लिए प्रयास तो स्वयं ही करना पड़ेगा। पुरुषार्थ करते रहिए। बुद्धों की यह शिक्षा है कि पाप-वृत्ति से अपने को बचाकर कुशल कर्मों का रात-दिन संपादन करते रहें। चित्त को निर्मल रखना और विमल करना—बुद्धों की यही शिक्षा है।[1]

पुण्य का कार्य दिल लगाकर करना चाहिए और जागरूकतापूर्वक पाप से बचना चाहिए। दूसरों को सुख पहुँचाना, शांति प्रदान करना, लाभ देना पुण्य का कार्य है। अतः मनुष्य तथा मनुष्येतर प्राणियों की शाँति, भलाई, मंगल और कल्याण के लिए यथासंभव प्रयास करते रहना चाहिए।

जिस काम से पराये लोगों की हानि हो, अहित हो, कष्ट हो, उसे पाप कहते हैं, अकुशल कर्म कहते हैं। याद रखें। दूसरों को कष्ट देने वाला व्यक्ति स्वयं की बहुत बड़ी हानि करता है। जहाँ दूसरों को दुःख देने वाला व्यक्ति दुखी और अशान्त रहता है वहीं परोपकार करने वाला व्यक्ति दूसरों को भी सुख एवं शान्ति प्रदान करता है और स्वतः भी सुख-शान्ति का अनुभव करता है।

इस बीच घण्टा बज गया। साधक पाँच मिनट विश्राम कर पुनः वापस आकर आसन पर बैठकर ध्यान-मग्न हो गए।

भगवान बुद्ध पुनः उपदेश देने लगे। बोले, "साधको! चित्त को पवित्र और विमल रखो। चित्त का मैल जब निकल जाएगा तो दुष्कर्म से पूर्ण मुक्ति मिल जायेगी। मन, वाणी एवं कर्म से दूसरों की भलाई करनी चाहिए। अपने मन को गंगा के पावन जल के समान निर्मल बनाकर मैत्री, अनन्त करुणा, मुदिता एवं समता की भावना करें। ब्रह्म विहार करें। इससे अपना भी कल्याण होगा और दूसरों का भी भला होगा।"

धर्म का मार्ग, मंगल का मार्ग तथा मुक्ति का मार्ग क्या है? अष्टांगिक मार्ग। अष्टांगिक मार्ग का शुद्ध चित्त से, निर्मल मन से निष्ठा एवं श्रद्धा के साथ अनुगमन करना चाहिए।

1. आत्म-दर्शन, आचार्य सत्यनारायण गोयनका, पृ. 89-90

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

साधको! सभी साधक सच्चाई एवं ईमानदारी के साथ पाँचों शीलों का पालन तो कर ही रहे हैं। सबकी वाणी निर्मल है। सभी साधक असत्य भाषण से दूर हैं, कड़ुवी एवं कटु बातों को बोलकर किसी के हृदय को विद्ध नहीं कर रहे हैं। चुगली नहीं कर रहे हैं। फिजूल और निरर्थक बातों में रत नहीं हैं। मद्यपान से कोसों दूर हैं। अर्थात् सम्यक वाणी से युक्त हैं।

यहाँ सभी साधक सम्यक आजीविका के सिद्धान्त का अनुगमन कर रहे हैं। न तो किसी के पास नौकरी है, न ही व्यवसाय, न ही पशुपालन है न ही कृषि। अपनी आय की वृद्धि के लिए कोई साधक न तो झूठ बोल रहा है और न तो किसी को धोखा दे रहा है।'[1]

इसी बीच प्रातः साढ़े छः बजे का घण्टा बजा। सभी साधक जलपान के लिए भोजनालय में पिल पड़े। आज घुघरी की जगह पर मक्का का लावा और दूध और फूट मिला। क्षुधा-पूर्ति के पश्चात् साधक मैदान में तीव्रगति से टहलने लगे।

प्रातः आठ बजे नहा-धोकर सभी साधक साधना-कक्ष में उपस्थित हुए। सबके चेहरे पर अपूर्व शान्ति एवं आभा थी। जब सभी साधक साँस के निःगर्मन एवं आगमन का चित्त को केन्द्रित कर निरीक्षण करने लगे तो भगवान बुद्ध उन्हें प्रोत्साहित करने के लिए उपदेश देने लगे।

वह बोले, "साधको! अब समाधि का, सम्यक समाधि का अभ्यास करना है। व्यायाम सम्यक समाधि का प्रथम अंग है। जैसे शरीर को स्वस्थ रखने के लिए प्रतिदिन व्यायाम का अभ्यास करना पड़ता है, वैसे ही मन को विकार रहित, निर्मल तथा चंचलता से दूर रखने के लिए मन का व्यायाम आवश्यक है। मन का सज़गता, सतर्कता के साथ जो निरीक्षण कर रहे हो और इसकी कमियों को दूर करने के लिए तथा सद्गुणों के विकास के लिए जो सद्प्रयास कर रहे हो, वही सम्यक् व्यायाम है।

समाधि का दूसरा अंग है—सम्यक् स्मृति। स्मृति का अर्थ है—जागरूकता—जहाँ बीते हुए क्षण अर्थात् भोगे हुए अतीत का केवल स्मरण होता है वहाँ वहाँ वर्तमान जहाँ के हर पल की ओर सजग रहना पड़ता है, जागरूक रहना पड़ता है। वर्तमान क्षण के प्रति सजगता, सतर्कता ही सम्यक स्मृति है। वर्तमान पल में जो कुछ हमारी साँस, नासिकाग्र एवं ऊपर होंठ के तिकोने हिस्से पर प्रतिक्षण घटित हो रहा है और जिसे हम गौर से देख रहे हैं वही वर्तमान पल की सच्चाई है।

प्रातः नौ बजे पुनः पाँच मिनट का विश्राम का समय मिला। विश्राम के बाद साधक वापस आकर साधनारत हो गए।

---

1. आत्मदर्शन आचार्य सत्यनारायण गोयनका, पृ. 91-92

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

भगवान बुद्ध अपना उपदेश प्रारम्भ करते हुए बोले, "साधको। साँस के स्पर्श-स्थान पर देखते-देखते हर साधक मन की भाग-दौड़ से परिचित हो रहा है। मन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह वर्तमान पल से हटकर कभी भूतकाल की मधुर स्मृति में खो जाता है और कभी भावी योजनाओं की कल्पना कर वायवीय महल खड़ा करने लगता है। उसे अतीत एवं भविष्यत् काल से हटाकर वर्तमान पल पर केन्द्रित करना बड़ा दुरूह कार्य है पर हम अभ्यास करते-करते इसे वश में कर लेंगे। इस समय हम मन को वर्तमान पल पर लाने का सद्प्रयास कर रहे हैं। देख रहे हैं कि साँस बाहर जाते समय और भीतर आते समय ऊपरी होंठ से लेकर नासिकाग्र तक त्रिकोने हिस्से पर कहाँ स्पर्श कर रहा है, कहाँ नहीं कर रहा है। जो भी हमारी मानसिक स्थिति है उसे देख रहे हैं। स्थूल से प्रारम्भ कर हम सूक्ष्म को जानने का सतर्कता एवं तटस्थता के साथ प्रयास कर रहे हैं।" इतना कहकर भगवान स्वयं भी साधना-रत हो गए। साधक घंटेभर बाद पाँच मिनट विश्राम कर वापस आकर सजग मन से साँस को देखते रहे।

ग्यारह बजे भोजनालय

आज के भोजन में दाल पूरी व खीर, दही एवं काशीफल की सब्जी का प्रबन्ध था। साधक बहुत प्रसन्न हुए। छककर खाए और हाथ-मुँह धोकर विश्राम करने चले गए। विश्राम करके पुनः तपोभवन में पहुँच कर साधना करने लगे। दो बजे अपराह्न तक साँस देखते रहे। भगवान चुपचाप उन्हें देखते रहे। पाँच मिनट का विश्राम का जो समय मिला, उसका उपयोग कर ढाई बजे साधक पुनः साधना-कक्ष में आकर साधना करने लगे।

भगवान बुद्ध साधकों को अभ्यास-काल में होने वाली प्रतिक्रियाओं का पुनरावलोकन कराने लगे। वह बोले, "साधको! साँस के आवागमन पर जो सभी लोगों ने सजगतापूर्वक ध्यान दिया, उससे सभी साधकों को अनेक बातों की जानकारी हुई होगी। स्थूल बातों को देखते-देखते मोटे-मोटे साँस की जानकारी हुई। इसके बाद सूक्ष्म साँस की जानकारी हुई। एक ओर सूक्ष्म साँस का अनुभूत ज्ञान हुआ और दूसरी ओर साँस के स्पर्श-स्थान का स्पष्ट अनुभव हुआ। ऊपर के होंठ से लेकर नासिकाग्र तक तिकोने हिस्से पर जो हमने ध्यान केन्द्रित किया, उससे हमें केवल आश्वास-प्रश्वास का ही अनुभव नहीं हुआ अपितु यह भी ज्ञात हुआ कि वहाँ प्रतिक्षण क्या घट रहा है? साँस के स्पर्श स्थान पर कोई न कोई प्रतिक्रिया हो रही है, उसका भी हमें स्पष्ट अनुभव हो रहा है। हम बराबर जान रहे हैं कि आश्वास शीतल है और प्रश्वास गर्म है। कुदरत का यह अद्भुत नियम है

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

कि अन्दर का वातावरण गर्म होता है और बाहर का शीतल। यही वर्तमान पल की सच्चाई है। साँस को देखते-देखते जब हमारा मन अत्यन्त सूक्ष्म हो जाएगा तो काया के अन्दर जो-जो जीव-रसायनिक विद्युत-चुम्बकीय प्रतिक्रियाएँ हो रही हैं, उनकी प्रतीति होने लगेगी। उपदेश देकर भगवान चुप हो गए।

पाँच बजे अल्पाहार

पाँच बजे साधक भोजनालय में गए। वहाँ भूना हुआ चिड़वा एवं रस रखा हुआ था। साधक चिड़वा चबाकर रसपान किए। क्षुधा-शान्ति के बाद वे टहलने लगे।

सायं छः बजे वे तपोभवन में आ गए। भगवान बुद्ध उन्हें तीन अंगुल स्थान की यथार्थ अनुभूतियों से अवगत कराने लगे। बोले, "भिक्षुओ! अभी तक आप लोग अपना ध्यान ऊपर के होंठ से लेकर नासिकाग्र के पास तक के त्रिकोण पर केन्द्रित करते रहे। गौर से देखिए। इस स्थान पर किस तरह की यथाभूत संवेदनाए प्रकट हो रही हैं। कहीं पर भारीपन महसूस हो रहा होगा, कहीं पर शीतलता, कहीं पर जलन, कहीं पर चुनचुनाहट, कहीं पर खुजलाहट और कहीं कुछ और अनुभूत हो रहा होगा। स्वभाव से जो कुछ घट रहा है, उसे देखते रहिए। जागरूक होकर वर्तमान क्षण की जो सच्चाई देख रहे हैं, वही सम्यक् स्मृति है। इसके द्वारा अनुभूतियों के स्तर पर हमें ज्ञात से अज्ञात क्षेत्र की विशेष जानकारी होने लगेगी।

सम्यक् समाधि समाधि का तीसरा अंग है। समाधि और कुछ नहीं, केवल चित्त की एकाग्रता है। मन को एकाग्र करने के लिए किसी न किसी अवलम्बन की आवश्यकता होती है। आलम्बन को देखने का हम जो प्रयत्न करते हैं, वह राग, द्वेष और मोह रहित होना चाहिए। यह सम्यक समाधि है।

साँस का निरीक्षण करते-करते सच्चाई प्रकट होती जाती है और अन्ततः परम सत्य का बोध होने लगता है। साँस आ रहा है, जा रहा है, इसी को हम देख रहे हैं। जब किसी संवेदना का अनुभव हो रहा होता है तो उसे भी हमें राग, द्वेष और मोह रहित होकर देखना चाहिए। इस समाधि में स्थित होकर साधक राग, द्वेष और मोह मुक्त अवस्थाओं में वर्तमान पल की सच्चाई के प्रति सतत सतर्क है, सजग है, जागरूक है। चित्त की इसी अवस्था को सम्यक समाधि कहते हैं। यह पूर्णतः मलरहित एवं शुद्ध है।"[1]

साधको! सात बज रहा है। पाँच मिनट विश्राम लेकर पुनः वापस आ जाओ। सवा सात बजे द्वितीय ध्यान की चर्चा होगी।

1. आत्मदर्शन, आचार्य सत्यनारायण गोयनका, पृ. 93-94

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

दूसरा ध्यान

साधक जब सवा सात बजे रात आसनासीन हो गए तो भगवान बुद्ध द्वितीय ध्यान का विश्लेषण करते हुए बोले, "साधको। एक ध्यानी प्रथम ध्यान का अभ्यास करने के पश्चात द्वितीय ध्यान में प्रविष्ट होता है। द्वितीय ध्यान वितर्क और विचार से मुक्त है। इसमें वितर्क तथा विचार का अनुत्पाद होता है। वितर्क-सम्प्रयुक्त स्पर्श आदि धर्मों का अवस्थान तो द्वितीय ध्यान में भी रहता है पर ये प्रथम ध्यान के स्पर्श आदि से भिन्न प्रकार के होते हैं। द्वितीय ध्यान के केवल तीन अंग हैं– 1. प्रीति, 2. सुख और 3. एकाग्रता। द्वितीय ध्यान सम्प्रासादन है। अर्थात् श्रद्धायुक्त होने के कारण तथा वितर्क-विचार के क्षोभ के व्युपशम के कारण चित्त को प्रसन्न रखता है। सम्प्रसाद इस ध्यान का परिष्कार है। यह समाधि की वृद्धि करता है। अतः इसे 'एकोदिभाव' कहते हैं।"

प्रथम ध्यान वितर्क-विचार के कारण क्षुब्ध एवं समाकुल होता है। उसमें श्रद्धा तो होती है पर वह 'सम्प्रासादन' नहीं कहलाता। द्वितीय ध्यान में वितर्क एवं विचार के अभाव के कारण श्रद्धा अच्छी तरह पुष्पित एवं पल्लवित होकर बलवान हो जाती है। शक्तिशाली श्रद्धा की सहायता से समाधि अच्छी तरह आविर्भूत होती है।

द्वितीय ध्यान की प्रीति स्थूल है। इसके अंग दुर्बल हैं। ऐसा कहा जाता है कि इस प्रीति ने परिग्रह में प्रेम का परित्याग नहीं किया है। यह तृष्णा की सहमत होती है। अतः इस प्रीति की प्रवृत्ति का आकार उद्वेगपूर्ण होता है।[1]

साधको! वश, आज केवल इतना ही। तृतीय ध्यान की चर्चा कल होगी। विश्राम करें। साधक शयन करने चले गए।

साधना का तीसरा दिन गुरुवार

ब्राह्म मुहूर्त में साधक अपने-अपने बिस्तर से उठकर नित्यक्रिया के पश्चात् दातून आदि करके तपोभवन में आकर आसनासीन हो गए। बुध, धर्म और संघ की शरण में जाने का उच्चारण कर ध्यानरत हो गए।

भगवान बुद्ध ने साधकों को मन को एकाग्र करने के स्थान पर प्रकाश डालते हुए कहा, "साधको। अब नासिका के नीचे उत्तरोष्ठ तक जो स्थान है, उस पर अपना ध्यान केन्द्रित करना है। इस तिकोने स्थान पर जो भी संवेदनाएँ उत्पन्न हो रही हैं, उन्हें साक्षी भाव से देखना है। संवेदनाएँ स्वतः उत्पन्न होती हैं। वे काल्पनिक नहीं अपितु नैसर्गिक होती हैं। अतः हमें इस छोटे से तिकोने स्थान पर

1. बौद्ध-धर्म-दर्शन, आचार्य नरेन्द्रदेव, पृ. 71-72

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

स्वाभाविक, सच्ची संवेदनाओं को देखना है।"

समाधि के द्वारा हमने अपने मन को वश करना सीखा। मन जब-जब भटका, हमने स्मृति को सजग रखकर उसे साँस पर केन्द्रित करने का सद्प्रयास किया। जोर-जबरदस्ती नहीं की। सही पथ अजमाया क्योंकि दमन से मन में गाँठ पड़ जाती है। नया तनाव पैदा हो जाता है। हमने प्यार से, सतर्कता से जागरूक रहकर उसे वश में किया। हम चित्त के वश में नहीं, उसे अपने वश में किए।

ध्यान करते-करते एक घंटा बीत गया। साधक पाँच मिनट विश्राम के बाद वापस आकर पुनः स्मृति-परायण साँस का आना-जाना देखते रहे। उन्हें यह अनुभूत होने लगा कि आश्वास-प्रश्वास का स्वभाव शान्त हो गया है और साँस अत्यन्त ही सूक्ष्म हो गया है।

साढ़े छः बजे सभी साधक भोजनालय में जाकर जलपान किए। घूम-घूमकर स्नान किए। आठ बजे पुनः साधना-कक्ष में आकर साँस की आने-जाने की प्रक्रिया को स्मृतपरायण देखने लगे। उनका सारा ध्यान नासिकाग्र और ऊपर के होंठ से लेकर नाक तक के तिकोने स्थान पर था। इस छोटे से स्थान पर उन्हें कभी ठंढेपन का, कभी जलन का, कभी धड़कन, कभी फड़कन, कभी चिपचिपाहट का और कभी-कभी निष्पंदता का अनुभव होता था। पर, छोटे से स्थान पर उत्पन्न होने वाली दुःखद और सुखद दोनों प्रकार की संवेदनाओं को साक्षी भाव से देख रहे थे। धीरे-धीरे उन्हें आभास होने लगा कि वे राग, द्वेष और मोह से विलग हो रहे हैं।

भगवान बुद्ध प्रजा का अभ्यास चौथे दिन शुक्रवार को करने वाले थे पर भावनामयी प्रज्ञा को जगाने के कार्य के पहले सभी साधकों को प्रज्ञा और उसके विभिन्न सोपानों से अवगत कराना चाहते थे। अतः उन्होंने तीसरे दिन ही प्रज्ञा-विश्लेषण का कार्य प्रारम्भ कर दिया।

साधकों को संबोधित करते हुए वे बोले, "भिक्षुओ! आज मैं प्रज्ञा की चर्चा करूँगा। अभी अष्टांगिक मार्ग के जो दो विशिष्ट अंग अर्थात् सम्यक संकल्प एवं सम्यक दृष्टि बाकी हैं, उनकी गणना प्रज्ञा के अन्तर्गत होती है।

प्रज्ञा का अर्थ है—मन की आँख या मानसिक चक्षु। जिसके द्वारा यथाभूत वस्तु का ज्ञान हो, उसे प्रज्ञा कहते हैं। बिनाध्यान अर्थात चित्तैकाग्रता के प्रज्ञा की उत्पत्ति नहीं हो सकती क्योंकि समाहित चित्त होने पर ही यथाभूत का परिज्ञान होता है, जिससे सब आवरणों की समाप्ति होती है।

भगवान बुद्ध बोले, भिक्षुओ! दो दिनों से आप लोग जागरूक होकर स्मृति परायण साँस के आवागमन को शान्तिपूर्वक देख रहे हैं। अभ्यास के दौरान आप लोगों ने भलीभाँति देखा और अनुभव किया कि मन में हर पल कोई न कोई

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

विचार चलता रहता है। चित्त में जो संकल्प-विकल्प चलते हैं, सम्यक होने चाहिए। प्रारम्भ-काल में हमारा मन, राग, द्वेष तथा मोह से आप्लावित था। पर, लगातार स्मृतिपूर्वक अभ्यास करते-करते आश्वास-प्रश्वास को निर्लिप्त भाव से, साक्षी भाव देखते-देखते यह प्रतीत हो रहा है कि दूषित विचार, मलयुक्त विचार धीरे-धीरे हमारा पिण्ड छोड़ रहे हैं। दिन-प्रतिदिन सायंकालीन रश्मियों की तरह क्षीण होते जा रहे हैं। यही है—सम्यक संकल्प। हमने जो अपने अभीष्ट को प्राप्त करने के लिए सम्यक संकल्प किया, अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए जो लगन, निष्ठा, ईमानदारी एवं दृढ़ता के साथ अभ्यास कर रहे हैं, उससे अब हमें साफ-साफ अनुभव हो रहा है कि अमृतत्व दूर नहीं है।

प्रज्ञा-क्षेत्र का दूसरा अंग है—सम्यक् दृष्टि। सम्यक् दृष्टि अर्थात सम्यक् दर्शन। किसी वस्तु को यथातथ्य रूप में देखना, उसके गुण-धर्म और स्वभाव का सही अर्थों में अनुभव सम्यक दर्शन कहलाता है।

नौ बजे पाँच मिनट का विश्राम मिला। साधक अल्प चैन लेकर वापस आकर आँखें बन्द कर साधनारत हो गए।

भगवान बुद्ध प्रज्ञा के प्रभेदों से साधकों को अवगत कराते हुए बोले, "साधको, प्रज्ञा तीन प्रकार की होती हैं—1. श्रुतमयी प्रज्ञा, 2. चिंतनमयी प्रज्ञा, 3. भावनामयी प्रज्ञा। श्रुत का अर्थ है—सुना हुआ, शास्त्र सुनना और शास्त्रों द्वारा अधीत ज्ञान। ज्ञान चाहे सुना हुआ हो, चाहे पढ़ा हुआ, बड़ा उपयोगी है। इस प्रकार के ज्ञान से केवल प्रेरणा ही नहीं मिलती अपितु मार्गदर्शन भी मिलता है। पर ज्ञान-प्राप्ति एवं मार्गदर्शन से अनुप्राणित होकर जब हम प्रयासरत होते हैं, अभ्यास करते हैं, तभी लाभान्वित होते हैं। हाँ, एक बात का विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिए। वह है विवेक को जागृत रखना। अंधश्रद्धा से यथासंभव बचना चाहिए।

"अब चिन्तामयी प्रज्ञा की खूबियों को समझो। चिंतन का अर्थ है—किसी वस्तु को बार-बार सोचना, मनन करना। मनुष्य अन्य प्राणियों की अपेक्षा अधिक विवेकशील होता है। अपनी इसी विशेषता के कारण वह सभी प्राणियों की अपेक्षा अधिक विवेकवान प्राणी कहा जाता है। चिंतन-मनन उसका स्वभाव है। सुनी एवं पढ़ी हुई बात को बुद्धि की कसौटी पर कसकर ही स्वीकारना चाहिए। साधक का यह धर्म है कि जिस बात को वह ग्रहण करे, उसे अनुभूति के स्तर पर उतारे। जब तक साधक सुनी हुई या पढ़ी हुई बात को अनुभूति के स्तर पर नहीं उतारेगा तब उसको मनोवांछित लाभ नहीं होगा।

"तीसरे प्रकार की प्रज्ञा को भावनामयी प्रज्ञा के नाम से अभिहित किया

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

जाता है। भावनामयी प्रज्ञा का अर्थ है—भावनायुक्त प्रज्ञा। हम सबके मन में अनुभूतियों के स्तर पर जो प्रज्ञा विकसित हो रही है, वह महान कल्याणदायिनी है। भावनामयी प्रज्ञा से एक ओर तो मनोबल समृद्ध होता है और दूसरी ओर मलयुक्त जो गाँठें एक बार क्षयीभूत हो जाती हैं, वे फिर से नहीं बँधती, नहीं पनपती। उनसे आजीवन मुक्ति मिल जाती है।

दस बजे पाँच मिनट का विश्राम मिला। साधक तरोताजा होकर साधना कक्ष में ध्यानमग्न हो गए।

भगवान बुद्ध ने कहा, "साधको। अगर अपना लक्ष्य प्राप्त करना है तो भावनामयी प्रज्ञा को जगाने के लिए दृढ़तापूर्वक सद्प्रयास करना आवश्यक है। सत्य को अनुभूति के स्तर पर उतारने पर ही भावनामयी प्रज्ञा सार्थक होगी। संवेदना जैसी भी हो, जैसे भी रूप में हो उसे उसी अवस्था में देखना चाहिए।"[1]

सर्वप्रथम हम शरीर की स्थूल सच्चाइयों को देखने का कार्य प्रारम्भ करेंगे। शरीर की स्थूल सच्चाई को जानने के बाद चित्त की सूक्ष्म से सूक्ष्मतर बातों को जानने का सद्प्रयास करेंगे। उसके गुण, धर्म और स्वभाव को पहचानने का प्रयत्न करेंगे। पर यह तो ऐन्द्रिय धर्म हैं, ऐहिक सच्चाई है। इसके परे जो लोकातीत धर्म और सच्चाई है, उसका साक्षात्कार स्वतः हो जाएगा।

ग्यारह बजे भोजनालय में

ग्रामीण प्राचीनकाल से ही बड़े ही श्रद्धालु, विश्वावसु एवं आतिथ्य-सत्कार प्रेमी होते हैं। गुरुवार को गाँव वालों ने साधकों की जिह्वा को तर करने के लिए पूड़ी, ठोकवा और गुलगुला तथा परवल और भिंडी की तरकारी बनवायी थी। साधक प्रसन्नता के साथ भोजन ग्रहण किए। भोजनोपरान्त टहल-घूमकर वे विश्राम करने लगे।

साधना-शंख

एक बजे शंख बज उठा। साधक हाथ-मुँह धोकर तपोभवन में आकर तपस्या करने लगे।

बुद्ध भगवान ने प्रज्ञा-विवेचन प्रारम्भ किया। साधको! बाहर की सच्चाई का सम्यक् साक्षात्कार करने के बाद अन्तर्मुखी होकर अन्तःकरण की सच्चाई को देखने का प्रयास करो। हमारे शरीर में केश, लोम, नख, दाँत, त्वचा, माँस, रक्त, अस्थि, अस्थिमज्जा, वक्क, हृदय, कान, नाक, आँख आदि अवस्थित हैं। यही

1. आत्मदर्शन, आचार्य सत्यनारायण गोयनका, पृ. 96-99।

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

शरीर की सच्चाई है। इन्हें टुकड़े-टुकड़े करके देखो। तल्लीनतापूर्वक निरीक्षण करने के बाद स्वतः यह ज्ञात हो जायेगा कि इनका निर्माण छोटे-छोटे परमाणुओं से हुआ है। परमाणु-पृथ्वी, जल, तेज, वायु का वह सबसे छोटा भाग जिसके और टुकड़े न हो सकें; किसी पदार्थ का वह सबसे छोटा टुकड़ा जिसके और टुकड़े न हो सकें, परमाणु कण कहलाता है। ये परमाणु कण शाश्वत नहीं अपितु क्षणभंगुर हैं। प्रतिक्षण इनका प्रादुर्भाव एवं विनाश होता रहता है। अपनी अनुभूति से यह सत्य उद्घाटित हो जाएगा कि उत्पन्न एवं विनष्ट होने वाले ये कण परमाणु कण से भी लघुतर हैं। बुद्ध ने इन छोटे-छोटे कणों को अष्टकल्प की संज्ञा दी। यह एक इकाई है क्योंकि यहाँ आठ चीजें जुड़ी हुई हैं। यह भौतिक जगत की नन्ही से नन्ही इकाई है।

आठों बातों में चार तो भौतिक तत्त्व हैं और चार उनके अपने-अपने गुण धर्म एवं स्वभाव हैं। चार तत्त्व हैं—पृथिवी, जल, अग्नि और वायु और चार हैं—उनके गुण, धर्म, स्वभाव आदि। यह जो नन्हीं इकाई दृष्टिगोचर हो रही है वह ठोस नहीं अपितु तरंग ही तरंग है। वह बुलबुले के समान क्षणभंगुर है। प्रतिक्षण उसका उत्पाद-व्यय होता रहता है। ये अष्टकल्प सहस्रों बार उत्पन्न होकर विनष्ट हो जाते हैं।

दो बजे साधकों को यथावत् पाँच मिनट का अल्प विश्राम मिला। विश्राम के बाद ध्यान की प्रक्रिया प्रारम्भ हो गई। ढ़ाई बजे भगवान बुद्ध की अमृतमयी वाणी से ज्ञान की वर्षा होने लगी। प्रशान्त चित्त से वे बोले, "साधको! प्रज्ञा के तीन सोपान हैं—1. अनित्यबोध, 2. अनात्मबोध, 3. दुःख बोध। क्रमशः हम उनका विवेचन कर रहे हैं।"

1. अनित्यबोध—अनित्य का अर्थ है जो नित्य न हो, जो अशाश्वत हो, क्षणस्थायी हो। जब अनुभूति के स्तर सभी साधकों को यह ज्ञान हो जाएगा कि सब संस्कार अनित्य हैं, क्षणभंगुर हैं, नश्वर हैं तो प्रज्ञा का प्रादुर्भाव होता है। यही अनित्यबोध है। शरीर का प्रतिक्षण उदय-व्यय होता रहता है। जब सही अर्थों में इसकी अनुभूति होने लगेगी तो सारे क्लेशों से मुक्ति मिल जाएगी। सारी सांसारिक असक्तियाँ चटाचट स्वतः टूटती जाएँगी। प्रज्ञा की यह अवस्था अनित्यबोध कहलाती है। अनित्यबोध कल्याणकारी होता है। अनित्यबोध होने पर हमारा मन राग, द्वेष, मोह तथा व्याकुलता से पूर्ण रूप से मुक्त हो जाएगा। फलतः जीवन की सारी कठिनाइयाँ स्वतः लुप्त हो जायेंगी। मन कभी भी तनावग्रस्त नहीं होगा।

2. अनात्मबोध—अनात्म निःस्वार्थता को कहते हैं। जब मनुष्य के मन से अहंभाव निकल जाता है और ममत्व का भाव विनष्ट हो जाता है तब उसे

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

अनात्मबोध होने लगता है। मनुष्य के मन में जब तक 'मैं', 'मेरा', मैं-मैं, मेरा-मेरा, तू-तू, तेरा-तेरा, अपना और पराया का भाव जाग्रत रहता है तब तक राग और आसक्तियों की उत्पत्ति होती है। दुःख-उत्पत्ति का यही मूल कारण है।

मनुष्य का यह स्वभाव है कि उसे शरीर-स्कंध के प्रति गहरा लगाव हो जाता है, गहरी आसक्ति हो जाती है। आसक्ति केवल शरीर-स्कंध तक ही सीमित नहीं है, उसका प्रसार चित्त-स्कंध तक हो जाता है। चितैकाग्रता से हमें अनुभूति होने लगेगी कि जिनके प्रति हमारी गहरी आसक्ति हो रही है, वे कुछ और नहीं बल्कि तरंगें ही तरंगें हैं।

अनुभूति के स्तर पर हमें यह विदित हो जाएगा कि "सारे लोक प्रज्चलित ही प्रज्चलित हैं, सारे लोक प्रकम्पित ही प्रकम्पित हैं। यह जो प्रकम्पन है, वह उदय-व्यय का प्रकम्पन है। उसमें न 'मैं' है न 'मेरा'। यह काया मेरी नहीं है। यह शरीर मेरा नहीं है। अतः जो वस्तु, व्यक्ति, और स्थिति है वह भी मेरा नहीं है। इस प्रकार जब 'अहम' समाप्त हो जाएगा, 'मम' मिट जाएगा तो राग, द्वेष, मोह आदि का भाव काफूर हो जाएगा। यही अनात्म है।"[1]

पाँच बजे भोजनालय

पाँच बजते ही साधक अल्पाहार के लिए भोजन-कक्ष में चले गए। वहाँ मिट्टी के सकोरे में फूट, दूध तथा शक्कर का समिश्रण तथा दोनों में भुट्टे रखे हुए थे। साधक भुट्टे और दूध से लवालब सकोरे उठाकर अपनी क्षुधा-पूर्ति करने लगे। अल्पाहार के बाद वे मैदान में टहलने लगे।

सायं छः बजे साधक अपने-अपने आसन पर विराजमान होकर साधनारत हो गए। भगवान बुद्ध उन्हें दुःख-बोध से अवगत कराने लगे। बोले, "भिक्षुओ। दुःख-बोध प्रज्ञा की तीसरी सीढ़ी है। अनात्मबोध के साथ ही दुःख का बोध होने लगता है। दुःख के सही रूप का अनुभूति के स्तर पर परिज्ञान हो जाता है। नश्वर, अस्थिर, क्षणभंगुर—वस्तुओं, संस्कार के प्रति जितनी अधिक आसक्ति होती है, उतना ही दुःख होता है। आसक्ति दुःख का मूल कारण है, यह बात अच्छी तरह समझ में आ जाती है। यह ज्ञान कल्पना के सहारे नहीं, अनुभूति के द्वारा होता है।"

स्थूल को देखते-देखते आगे चलकर सूक्ष्म दुःख की प्रतीति होने लगती है। साधनावस्था में सदैव सतर्क एवं जागरूक रहना चाहिए। साक्षी भाव से, तटस्थ भाव से कायोत्पन्न पीड़ाओं को देखते-देखते यदि सुखद संवेदना जागे तो उसे भी

1. आत्मदर्शन, आचार्य सत्यनारायण गोनयका, पृ. 100-102

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

अनित्य समझना चाहिए। क्योंकि सुखद संवेदनाओं के विनष्ट होने पर दुःख ही होता है। यह निसर्ग का अकाट्य विधान है।

अन्तर्मुखी होकर गहराइयों में प्रविष्ट होकर सच्चाइयों को देखने से प्रज्ञा पुष्ट होती है।

अच्छा। अब पाँच मिनट का विश्राम ले लें। सवा सात बजे तृतीय ध्यान पर विचार किया जाएगा।

तृतीय ध्यान

निश्चित समय पर साधक आसनासीन हो गए। भगवान बोले, "साधको। तृतीय ध्यान के क्षण में प्रीति का अनुत्पाद होता है। इसके दो अंग है--1. सुख एवं 2. एकाग्रता। उपेक्षा, स्मृति एवं सम्प्रजन्य इसके परिष्कार हैं।"

प्रीति का अतिक्रमण होने पर साधक का वितर्क-विचार शान्त हो जाता है। अतः उसके मन में उपेक्षा-भाव का प्रादुर्भाव हो जाता है। वह सब प्राणियों को पक्षपात से दूर हटकर समभाव से देखता है। वह समदर्शी हो जाता है। उसकी समदर्शिता विशद, विपुल और स्थिर होती है। अतः जिसे तृतीय ध्यान का लाभ हो जाता है उसे उपेक्षक कहा जाता है।

तृतीय ध्यान का लाभ प्राप्त कर साधक उपेक्षा-भाव से विहार करता है। वह हर समय जागरूक रहता है और इस बात का ध्यान रखता है कि प्रीति से अपनीत तृतीय ध्यान का सुख प्रीति से पुनः सम्प्रयुक्त न हो जाय। इस ध्यान का सुख अत्यन्त मधुर होता है। सुख में अनुरक्त होना मनुष्य का स्वभाव है। अनुरक्ति से बचने के लिए एक योगी तृतीय ध्यान में स्मृति एवं सम्प्रजन्य द्वारा सुख में आसक्त नहीं होता, प्रीति को उत्पन्न नहीं होने देता।[1]

धीरे-धीरे नौ बज गया। भगवान बोले, "साधको! प्रातः चार बजे जागना है। अब सभी लोग जाकर विश्राम करें।"

शुक्रवार, साधना का चौथा दिन

शुक्रवार, ब्राह्ममुहूर्त में साधक जाग गए। नित्यकर्म के पश्चात हाथ-मुँह धोये और तपोवन में जाकर अपने-अपने आसन पर बैठ गए। नासिकाग्र पर चित्त केन्द्रित करके आती-जाती साँस को देखने लगे। जो भी संवेदनाएं उठती थीं, साक्षीभाव से देखते रहे। धीरे-धीरे साँस सूक्ष्म होने लगा। राग, द्वेष और मोह से मन विरक्त होने लगा।

---

1. बौद्ध-धर्म-दर्शन, आचार्य नरेन्द्रदेव, पृ. 72-74

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

भगवान ने साधकों को संबोधित करते हुए कहा, "भिक्षुओ। हम अन्तुर्मुखी होकर साक्षी भाव से परम सत्य तक पहुँचने का प्रयास कर रहे हैं। प्रयास और अभ्यास से यथाभूत ज्ञान अवश्य प्राप्त होगा। दत्तचित्त से साँस को देखते रहिए। देखते-देखते साँस सूक्ष्म हो जाएगा तब हम सिर से पाँव तक और पाँव से सिर तक के प्रत्येक अंग पर अपना ध्यान केन्द्रित करेंगे। आज विपश्यना का अभ्यास प्रारम्भ होगा। आप अपराह्न दो बजे तक साँस को देखने का कार्य करते रहे। ढाई बजे से विपश्यना का आप लोगों को ज्ञान कराया जायेगा।"

साधक साढ़े छः बजे जलपान किए और ग्यारह बजे तक लगन, निष्ठा, धैर्य के साथ साँस के आवागमन-दर्शन का कार्य करते रहे। ग्यारह बजे भोजन के बाद विश्राम किए। पुनः तैयार होकर एक बजे से लेकर सवा दो बजे तक साँस-निरीक्षण करते रहे।

ढाई बजे भगवान बुद्ध ने साधकों को विपश्यना सिखाना प्रारम्भ किया। हिदायत देते हुए बोले, "साधको! अब हमें ब्रह्मरंध्र से लेकर पाँव तक मानसिक यात्रा करनी है। शरीर के विभिन्न अंगों पर जो संवेदना उत्पन्न हो रही है उसी पर मन केन्द्रित कर स्मृति परायण होकर देखना है। शरीर के भीतर नहीं, केवल बाहरी हिस्सों पर मन को ले जाना है। प्रथम क्रम से हम सिर से पाँव तक के विभिन्न अंगों पर अपने-अपने मन को ले जायेंगे। उसके बाद पुनः हम मन को पाँवों से ऊपर की ओर ले जायेंगे। पाँव से सिर तक काया के जितने अंग-प्रत्यंग हैं, उनको सतर्क होकर जागरूकता के साथ देखेंगे। किसी अंग पर हम अपने मन को कितनी देर स्थिर रखेंगे, यह हमारी मानःस्थिति एवं उस अंग की क्रिया-प्रतिक्रिया पर निर्भर है। जो अंग शून्य होगा, वहाँ मन को दो मिनट टिकाने का प्रयास करेंगे और जिस अंग पर संवेदना उत्पन्न हो रही है, उसे साक्षी भाव से देखेंगे और पुनः अपने मन को शरीर के अगले हिस्से पर ले जायेंगे। चंचल मन स्थूल होता है और शान्त मन सूक्ष्म। सूक्ष्म मन सतर्क और जागरूक होता है। अतः जागरूक मन से किसी अंग पर उत्पन्न होने वाली संवेदना का हम पलभर निरीक्षण करेंगे और आगे के अंग को देखने के लिए आगे बढ़ जायेंगे।

इस बात का सदैव ध्यान रखना चाहिए कि यदि किसी अंग पर कोई संवेदना उत्पन्न न हो रही हो तो व्याकुल नहीं होना चाहिए। धैर्य से काम लेना चाहिए। शरीर का कोई अंग चाहे शून्य हो, चाहे संवेदनशील, हर स्थिति को सम भाव से, तटस्थ भाव से मात्र साक्षी भाव से देखना चाहिए। जब हम शांत एवं स्थिर चित्त से शरीर के अंगों-प्रत्यंगों को देखेंगे तो यह सच्चाई अवश्य सामने आ जायेगी कि हमारे शरीर के अंग-प्रत्यंग पर कोई न कोई संवेदना अवश्य प्रकट हो

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

रही है। यह सच्चाई है कि अभ्यास करते-करते स्थूल मन सूक्ष्म हो जाता है और अन्ततः यह सूक्ष्म मन संवेदनशील होता जाता है।

अब यह प्रश्न उठता है कि आप शरीर पर क्या देखेंगे? शरीर के प्रत्येक अंग पर जो कुछ हो रहा है, उसी को देखना है। शरीर पर गर्मी है तो उसे देखेंगे, शीतलता है तो उसे देखेंगे, पसीना है तो उसे देखेंगे, भारीपन है तो उसे देखेंगे। अमुक स्थान पर घनीभूत पीड़ा है। अमुक स्थान पर ठंढापन है। तरंग है तो तरंग। भोक्त भाव से नहीं अपितु साक्षी भाव से देखना है।

देखते-देखते यह बात स्पष्ट रूप से समझ में आ जाती है कि शरीर पर जो कुछ घटित हो रहा है वही सत्य है। साक्षी भाव से देखते-देखते उसके टुकड़े होने लगेंगे, उसका विघटन होने लगेगा, विश्लेषण होने लगेगा। सघनता टूटेगी अवश्य। अन्त में यह एहसास होने लगेगा कि यह पीड़ा और सघनता मात्र तरंगें हैं। याद रखिए जब तक मन राग, द्वेष और मोह से ग्रसित है तब तक परम सत्य का दर्शन नहीं हो सकता। शरीर का ठोस भाग अर्थात् घनीभूत सत्य देखते-देखते ही जब विघटित होकर टुकड़े-टुकड़े हो जायेगा तब पर परम सत्य का साक्षात्कार होगा।

साधको। अब शुभ घड़ी आ गई। अतः अब विपश्यना का अभ्यास प्रारम्भ होगा। सबसे पहले साधको अपने मन को ब्रह्मरंध्र पर ले जायेंगे और अपने ध्यान को केन्द्रित करके देखेंगे कि सिर के उस हिस्से पर कौन-सी संवेदना उत्पन्न हो रही है। ठंडापन है या भारीपन है। यदि शून्यता प्रकट हो रही हो तो दो मिनट ठहर जाइए पर दो मिनट से अधिक नहीं रुकना है। फिर वहाँ से सिर के अन्य हिस्सों पर मन केन्द्रित कर वहाँ उत्पन्न होने वाली संवेदना का निरीक्षण करें। सिर का चक्कर लगाने के बाद मन को ललाट पर ले जाएँ और सारे माथे को ध्यान से देखें। मन अगर भटके तो धैर्य के साथ उसे वश में करके अभीष्ट स्थान पर केन्द्रित कर लें। भटकना मन का स्वाभाविक गुण है। उसे संयमित करने के लिए ही तो हमारा प्रयास चल रहा है। अब ललाट से नीचे उतरकर फिर भौंहों पर मन को केन्द्रित कर देखो उस भाग पर क्या हो रहा है? फिर अपने ध्यान को आंखों पर केन्द्रित करें। गौर करें वहाँ कौन-सी संवेदना उत्पन्न हो रही है। फिर बरौनियों को देखो। उसके बाद नाक के ऊपरी हिस्से का निरीक्षण करें। फिर नाक के दोनों छिद्रों पर मन को केन्द्रित करें। फिर नासिकाग्र को देखकर उत्तरोष्ठ के तिकोने हिस्से पर उत्पन्न होने वाली संवेदनाओं का अनुभव करें। फिर दोनों होंठों के बीच के हिस्से पर ध्यान लगाएँ। इसके बाद चिबुक पर गौर करें। उसके बाद दोनों गालों पर चित्त को दौड़ाकर उस हिस्से पर जो भी संवेदना उठ रही हो, उसे देखें। उसके बाद क्रमशः दोनों कानों का निरीक्षण करें।

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

अब सिर से मन को उतारकर दायें कंधे पर केन्द्रित करें। देखिए वहाँ कौन-सी संवेदना उत्पन्न हो रही है। यदि संवेदना सुखद है तो राग न जगायें और यदि दुखद है तो उससे द्वेष न जगायें। तटस्थ भाव से, साक्षी भाव से दोनों प्रकार की संवेदनाओं का निरीक्षण करें। फिर काँख का निरीक्षण करें। संवेदना उत्पन्न हो रही हो तो पलभर में मन को हटाकर आगे के अंग पर ले जायें और खालीपन हो तो दो मिनट ठहरें और आगे बढ़ जायें। फिर दाहिनी भुजा पर ध्यान केन्द्रित करें। उसके बाद कुहनी पर मन लगायें। संवेदना महसूस कर फिर पहुँचे पर ध्यान लगायें। पलभर रुककर कलाई पर मन ले जाएँ। उसके बाद हथेली को देखें और पंजे पर मन केन्द्रित करने के बाद पाँचों अँगुलियों और उनके नाखूनों का निरीक्षण कर लें।

अब मन को बायें कंधे पर ले जाकर सर्वप्रथम उस पर उत्पन्न होने वाली संवेदनाओं को देखें। उसके बाद बायें हाथ के हर हिस्से पर मन को ले जाकर उसका निरीक्षण करें। भोक्ता भाव जागने न पावै। द्रष्टा भाव से देखें। द्रष्टा भाव अत्यन्त कल्याणकारी है। यह भोक्ता भाव के स्वभाव का उत्खनन कर देगा।

अब दायें-बायें दोनों हाथों की संवेदनाओं के निरीक्षण की प्रक्रिया पूरी हो गई। अब अपने मन को गले पर केन्द्रित कर उसके हर हिस्से पर उत्पन्न होने वाली संवेदनाओं को साक्षी भाव से निरीक्षण करें। मन को सतर्क और जागरूक रखें। भटकने न पावै। गले का निरीक्षण करने के बाद अब हँसली पर मन को ले जावैं। वहाँ उठने वाली संवेदनाओं को साक्षी भाव से देखें। यदि खालीपन महसूस हो तो दो मिनट ध्यान स्थिर करके उस स्थान को देखें। फिर आगे बढ़ जायें। उसके बाद वक्षस्थल पर मन को केन्द्रित करें। सुखद और दुखद संवेदनाओं को निर्लिप्त होकर देखें। अच्छी लगने वाली संवेदनाओं के प्रति राग न जगने पावै और दुःखद संवेदनाओं के प्रति द्वेष न उत्पन्न होने पावै। हृदय का भी निरीक्षण कर लें। उसके बाद उदर पर मन को ले जाएँ और पेट के पूरे हिस्से पर उत्पन्न होने वाली संवेदनाओं को देखें। फिर नितम्ब कर निरीक्षण करें। अब पेट पर उत्पन्न होने वाली संवेदनाओं के दर्शन की प्रक्रिया पूरी हो गई। चलिए, अब पीठ का निरीक्षण करें।

सर्वप्रथम मन को गर्दन पर ले चलें। तटस्थ भाव से गर्दन के प्रत्येक हिस्से पर उत्पन्न होने वाली संवेदनाओं को देखें। भोक्ता भाव न उभरने पाये। गर्दन से नीचे आकर पीठ के प्रत्येक हिस्से पर उभरने वाली संवेदनाओं पर गौर कर लें। पीठ को देखने के बाद मेरुदण्ड पर अपने मन को केन्द्रित करें। देखिये, वहाँ क्या हो रहा है। यदि दुखदायी संवेदना उत्पन्न हो रही है तो उसके प्रति द्वेष भाव न जगने पावै और अब नीचे उतरकर अपने मन को कमर पर ले जाएँ और पूरे कमर

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

पर उत्पन्न होने वाली संवेदनाओं को देख लें।

अब आत्म-निरीक्षण के कार्य को दायें जाँघ से प्रारम्भ करना है। जाँघ पर उत्पन्न होने वाली संवेदनाओं को देखने के बाद दाएँ पैर के घुटने का निरीक्षण करें। देखें, वहाँ खालीपन तो महसूस नहीं हो रहा है। होता हो दो मिनट गौर कर लें। फिर पिंडली पर मन को केन्द्रित करें। मन स्थिर रहे, भटकने न पाये। टखने को देखकर अपने मन को ऐड़ी पर केन्द्रित कर सम्पूर्ण हिस्से पर उठने वाले संवेदनाओं को देखें। उसके बाद चरण के ऊपर-नीचे वाले भाग पर मन केन्द्रित करें। पैर की पाँचों अँगुलियों पर उत्पन्न होने वाली संवेदनाओं को तटस्थ भाव देखें। दायें पैर का काम पूरा हो गया।

अब बायें जाँघ से आत्म-निरीक्षण का कार्य प्रारम्भ कर बायें पैर के प्रत्येक हिस्से पर मन ले जायें। सावधानी से देखने का कार्य करें। बाएँ पैर के प्रत्येक हिस्से को देख लिया। अब पैर से सिर तक चक्कर लगाना है।

दायें चरण से देखने का कार्य प्रारम्भ करें। दायें पैर के प्रत्येक हिस्से को बिना किसी लगाव-दुराव से देखें और फिर यही प्रक्रिया बायें चरण से जाँघ की ओर होगी। पैरों का निरीक्षण कर पूरे कमर पर अपने मन को ले जाएँ। भटकने न पावे। कमर को देखने के बाद नितम्ब से प्रारम्भ कर गले तक पूरे पेट का निरीक्षण करें। पूरे पेट पर मन को दौड़ाने के बाद कमर से ही पीठ के प्रत्येक हिस्से को गर्दन तक देखें। मेरुदण्ड पर भी एक निगाह डाल लें।

पुनः आप हँसली से प्रारम्भ कर सिर तक प्रत्येक हिस्से पर उठने वाली संवेदनाओं का निर्लिप्त भाव से निरीक्षण करें।

सिर का चक्कर लगाने के उपरांत दाहिने हाथ की गदेलिओं से लेकर कंधे तक के प्रत्येक हिस्से को देखें। इसी प्रकार बायें हाथ की हथेली को देखते हुए कंधे तक पूरे हिस्से को देखना है।

साधको! प्रशिक्षण का कार्य पूरा हो गया। आपको बार-बार सिर से पाँव तक और पाँव से सिर तक शरीर के प्रत्येक अंग का चक्कर लगाना है। संवेदना चाहे सुख हो या दुखद, उसे देखकर तटस्थ रहना है। केवल साक्षी भाव से देखना है। केवल दर्शन करें, उसे भोगने का प्रयास न करें। अभ्यास करते-करते द्रष्टा भाव अधिक बलवान होता जायेगा और भोक्ता भाव रसातल में चला जाएगा। अन्ततः राग, द्वेष और मोह का भाव विनष्ट हो जायेगा और आप राग-रहित, द्वेष विहीन एवं मोह से मुक्त हो जायेंगे। मन से सारे मल, कलुषित विचार और दुष्कर्म भाव निर्मूल हो जायेंगे। अनासक्त हो जायेंगे। प्रज्ञा पुष्ट हो जायेगी। क्षणभंगुर जीवन से मुक्ति मिल जायेगी। जन्म-मरण के चक्कर से छुटकारा पा जायेंगे।"

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

भोजनालय में दूध और फूट को क्रम से रख दिया गया था। पास में चँगेरा में खाँड़ रखी हुई थी। साधकों ने दूध में खाँड़ और फूट को मिलाकर मन से आस्वादन किया। रसना को तृप्त कर वे इधर-उधर टहलने लगे।

सायं छः बजे सभी साधक ध्यानमग्न हो गए। भगवान बुद्ध ने उन्हें सच्चाई से अवगत कराने के लिए अपना उपदेश प्रारम्भ किया। बोले, "भिक्षुओ। संसार स्थिर नहीं अपितु परिवर्तनशील है। यह सच्चाई है। इस सच्चाई को अनुभूति के स्तर पर यदि जान लिया जाये तो परम सत्य का दर्शन सुलभ हो जायेगा। जो बदलाव का कार्य अनवरत चल रहा है, उसका कोई न कोई कारण अवश्य है। जो कुछ होता है उसके पीछे कोई न कोई कारण अवश्य होता है। कारण होने पर ही कार्य की उत्पत्ति होती है। यदि कारण न तो कार्य के उत्पन्न का प्रश्न नहीं उठेगा। कार्य के अन्तर्गत हेतु और प्रत्यय दोनों का होना आवश्यक है। क्योंकि इन दोनों के योग से ही कार्य का प्रादुर्भाव होता है। उदाहरणतः बीज से अंकुर होता है और मिट्टी, पानी, प्रकाश तथा उर्वरक उसके प्रत्यय है। जब कारण से कार्य की निष्पति होती है तो कार्य में कारणत्व की शक्ति आ जाती है। अतः कार्य स्वयं कारण बन जाता है और पुनः कार्य की उत्पत्ति बन जाता है। प्रकृति का यह कानून जड़-चेतन सभी पर लागू होता है।"

कर्मों का फल मनुष्य को अवश्य मिलता है। जैसे कोई आदमी आम का पेड़ लगाएगा तो उसे अवश्य मीठा फल मिलेगा। सच्चाई कल्पना द्वारा नहीं, अनुभूति द्वारा प्राप्त होती है। अनुभूति के सहारे हमें यह परिज्ञान होता है कि चित्त की जैसी चेतना होती है, वैसा फल भी मिलता है।

चेतना के चार खण्ड हैं–विज्ञान, संज्ञा, वेदना और संस्कार।

विज्ञान का अर्थ है–ज्ञान और ज्ञान का अर्थ है–परिचित होना, जानना, समझना। आँख, कान, नाक, जीभ, त्वचा। इनके साथ जब विज्ञान खण्ड जुड़ता है तब किसी वस्तु या पदार्थ, मादक गंध, रस, स्पर्श की जानकारी होने लगती है। अर्थात पहचानने का कार्य प्रारम्भ हो जाता है।

इन्द्रियों के कार्य की जानकारी होने पर संज्ञा की उत्पत्ति होती है। संज्ञा पहचानने का कार्य करती है पर पहचान जीवन के अनुभवों तथा यादगार पर निर्भर रहती है।

जैसे ही पहचान होती है, हमारी बुद्धि मूल्यांकन का कार्य प्रारम्भ कर देती है। कोई शब्द सुनाई पड़ा तो हम तुरन्त पहचान जाते हैं कि वह गाली का शब्द है या प्रशंसा का।

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

संज्ञा के बाद वेदना की उत्पत्ति होती है। वेदना का अर्थ है—अनुभूति। वेदना के लिये संवेदना शब्द भी प्रयुक्त होता है। दुःख या सुख की जो अनुभूति होती है, उसे ही संवेदना कहते हैं।

सुखद या दुखद अनुभूति की पहचान के बाद उसकी प्रतिक्रिया प्रारम्भ हो जाती है। इस प्रतिक्रिया को संस्कार कहा जाता है। यही है चेतना का चौथा खंड।

अनुभव के आधार पर हम जानते हैं कि सुखद संवेदना प्रिय लगती है और उसके प्रति राग उत्पन्न हो जाता है। दुखद संवेदना कष्टदायी होती है। इसलिए अप्रिय लगती है। अतः उसके प्रति द्वेष उत्पन्न होता है।

हमारी ज्ञानेन्द्रियों पर जब उनसे संबंधित विषय टकराते हैं, तब क्षिप्रगति से जानने, पहचाने, मूल्यांकन, संवेदनशीलता एवं संस्कार-निर्माण की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है। सुखद संवेदना से राग का संस्कार बनता है और दुखद से द्वेष का। आप जो विपश्यना का अभ्यास कर रहे हैं, मन को इस आदत से मुक्ति दिलाने के कार्य कर रहे हैं।

कर्म-संस्कार के बीज का निर्माण न तो विज्ञान करता है न ही संज्ञा और न तो वेदना। संस्कार जो प्रतिक्रिया करता है वही बीज बनता है और इस संस्कार का निर्माण काया पर उत्पन्न होने वाली संवेदना के आधार पर होता है।

आप सतर्क मन से शरीर के विभिन्न अंगों पर उत्पन्न होने वाली संवेदनाओं को द्रष्टा भाव से देख रहे हैं। अभ्यास करते-करते एक ऐसी स्थिति में आ जायेंगे जहाँ आपके मन में सुखद संवेदनाओं के प्रति न राग जागेगा, न दुःखद संवेदनाओं के प्रति द्वेष। किसी संवेदना के प्रति मन में मोह नहीं जागेगा। संवेदना चाहे जैसी भी हो वह अस्थिर है, अनित्य है। जो कुछ हो रहा है, उसको अनुभूति के स्तर पर आप जानेंगे अवश्य पर उसके प्रति आप प्रतिक्रिया नहीं प्रकट करेंगे। बस क्या? प्रज्ञा जाग जाएगी। निर्वाण-प्राप्ति हो जाएगी।"[1]

सात बज गया। साधकों को पाँच मिनट का विश्राम मिला। जब सवा सात बजे रात में सभी लोग आसन पर बैठ गए तब भगवान ने उन्हें चौथे ध्यान से अवगत कराना प्रारम्भ किया।

चौथा ध्यान

साधको! चतुर्थ ध्यान शान्त है। इसके दो अंग हैं—उपेक्षा-वेदना और एकाग्रता। चतुर्थ ध्यान के उपचार-क्षण में चैतसिक सुख का प्रहाण (विनाश) होता है। चतुर्थ-ध्यान के उपचार-क्षण में अर्पणा-प्राप्त उपेक्षा के अभावं में तथा भली प्रकार

1. आत्मदर्शन, आचार्य सत्यनारायण गोयनका, पृ. 104-111

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

से चैतसिक का अतिक्रम न होने से चैतसिक सुख की उत्पत्ति संभव है।

यह दुःख और सुख-रहित वेदना अतिसूक्ष्म और दुर्विज्ञेय है। सुगमता से इसका ग्रहण नहीं हो सकता। यह न कायिक सुख है, न कायिक दुःख, न चैतसिक सुख है न चैतसिक दुःख। यह सुख, दुःख, सौमनस्य (=चैतसिक सुख) और दौर्मनस्य (=चैतसिक दुःख) का अभाव मात्र नहीं है। यह तीसरी वेदना है। इसे उपेक्षा भी कहते हैं। यही उपेक्षा चित्त की विमुक्ति है। सुख दुःखादि के प्रहाण से इसका अधिगम होता है।

सुख आदि के प्रतिघात से राग-द्वेष प्रत्यय (हेतु) सहित नष्ट हो जाते हैं अर्थात् उनका दूरी भाव हो जाता है। स्मृति चतुर्थ ध्यान में परिशुद्ध हो जाती है। यह शुचिता उपेक्षा द्वारा होती है। अन्यथा नहीं। केवल स्मृति ही परिशुद्ध नहीं होती अपितु सम्प्रयुक्त धर्म भी परिशुद्ध हो जाते हैं। चतुर्थ ध्यान में वितर्क आदि विरोधी धर्मों के उपशम से तथा उपेक्षा वेदना के प्रति लाभ से उपेक्षा अत्यन्त ही परिशुद्ध होती है। इतना ही नहीं, स्मृति आदि भी परिशुद्ध होती है।[1]

जब नौ बज गया तो भगवान बुद्ध ने साधकों को विश्राम करने का आदेश दिया।

शनिवार, साधना का पाँचवाँ दिवस

शनिवार को प्रातः साढ़े चार बजे सभी साधक हाथ-मुँह धोकर तपोभवन में आकर आसन पर बैठकर शरीर के अंग-प्रत्यंग पर मन दौड़ाकर उत्पन्न होने वाली संवेदनाओं का तन्मय होकर निरीक्षण करने लगे।

भगवान बुद्ध साधकों का उचित मार्ग-दर्शन करते हुए प्रोत्साहित करते रहे। साढ़े पाँच बजे साधक पाँच मिनट का विश्राम लेकर संवेदनाओं का निरीक्षण करते रहे। साढ़े छः बजे प्रातः पुनः जलपान करने के लिए भोजनालय में चले गये।

जलपान में चीले, रायता, हलवा एवं गुड़ मिश्रित इमली की चटनी की व्यवस्था थी। रुचिकर जलपान देखकर साधक फूले न समाये। जलपान करने के बाद वे प्रातः शीतल एवं सुगन्ध भरी वायु का आनन्द लेते हुए चहल कदमी करने लगे। घूमघाम कर स्नान किए और प्रातः आठ बजे विपश्यना में जुट गए।

भगवान बुद्ध ने कहा, "साधको! अपने मन को सिर से पाँव तक और पाँव से सिर तक सतर्क होकर प्रत्येक अंग को एक पल, दो पल रुककर ध्यान से देखते जाओ। साक्षी भाव, तटस्थ भाव बराबर बना रहे। न तो मन भटकने पावे और न तो सुखद संवेदना के प्रति राग जागे और न दुःखद संवेदना के प्रति द्वेष उत्पन्न हो।

1. बौद्ध-धर्म-दर्शन, आचार्य नरेन्द्रदेव, पृ. 74-75

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

शून्य एवं स्थूल स्थान पर जरा एक मिनट रुककर देखने का प्रयास करें। संवेदना महसूस हो या न महसूस हो, मन को दूसरे स्थान पर लगा दें।"

पलभर विश्राम के बाद भगवान बोले, "साधको। आज नौ बजे से ग्यारह बजे तक और सायं ढाई से पाँच बजे परिचर्चा होगी। पाँच मिनट विश्राम लेकर सभी साधक आकर अपना-अपना आसन ग्रहण करें।"

प्रातः नौ बजे जब साधकों ने अपना-अपना आसन ग्रहण कर लिया तब भगवान बोले, "साधको! आज हम सभी साधकों को प्रतीत्य-सुमुत्पाद से परिचित करायेंगे कौंडिन्य बोला, "भगवान! आप कृपाकर हमें समझाने का कष्ट करें?"

"साधको! प्रतीत्य-समुत्पाद कार्य-कारण का सिद्धांत है। कारण पर आश्रित होकर ही कार्य की उत्पत्ति होती है। हर वस्तु उत्पन्न होती हुई प्रतीत होती है। इसलिए प्रतीत्य समुत्पाद है। जो प्रतीत्य-समुत्पाद को देखता है वह धर्म को देखता है, वह प्रतीत्य समुत्पाद को देखता है। कार्य कारण में अटूट सम्बन्ध है। जो जैसा बीज बोता है वैसा ही फल पाता है। प्रकृति का यही नियम है। एक के विनाश के बाद उसी से दूसरे की उत्पत्ति होती है। कार्य कारण का नियम एक विच्छिन्न प्रवाह है।"

भद्दिय बोला, "भन्ते। जरा कर्म-सिद्धान्त पर प्रकाश डालें?"

"तुम सब तो यह बात अच्छी तरह समझ गए हो कि बिना कारण के कुछ भी उत्पन्न नहीं हो सकता। मनुष्य जैसा कर्म करता है वैसा ही फल पाता है। चित्त की जैसी चेतना होती है वैसा ही फल भी मिलता है।

पाँचों उपादान स्कंध अर्थात् रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान प्रतीत्य समुत्पन्न (=विच्छिन्न प्रवाह के तौर पर उत्पन्न) हैं।

प्रतीत्य समुत्पाद मानव पर लागू होता है। इसके बारह अंग होते हैं। जिस-जिस प्रत्यय से विज्ञान (=जीव) चेतना उत्पन्न होता है, वही उसकी संज्ञा होती है। चक्षु के निमित्त से (जो) विज्ञान उत्पन्न होता है, उसकी चक्षु-विज्ञान ही संज्ञा है। इसी तरह श्रोत्र-विज्ञान, घ्राण-विज्ञान, रसना-विज्ञान, काया, मन-विज्ञान संज्ञा होती है। यथा, जिस-जिस निमित्त (=प्रत्यय) से आग जलती है, वही वही उसकी संज्ञा होती है। काष्ठ, अग्नि, तृण अग्नि।"

साधक बोले, "साधु-साधु-साधु।"

"साधको। चित्त (जीव) के चार खण्ड हैं—विज्ञान, संज्ञा, वेदना, संस्कार।" कौंडिन्य बोला, "भगवान! इन चारों को क्रम से समझावें?"

"साधको! विज्ञान का अर्थ है जानना। हमारी पाँचों इन्द्रियों के साथ जब विज्ञान खण्ड जुड़ता है तो पहचानने का कार्य प्रारम्भ हो जाता है। इन्द्रियों द्वारा

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

संपादित कार्यों की जानकारी के बाद संज्ञा का प्रादुर्भाव होता है। संज्ञा का काम है—पहचानना। पहचाने का कार्य स्मरण शक्ति एवं अनुभव के आधार पर होता है। पहचान के बाद मूल्यांकन का कार्य प्रारम्भ हो जाता है। किसी के रूप को देखा तो पहचाना और प्रतिक्रिया प्रारम्भ हो गई। मुँह से यह वाक्य निकल पड़ा कितना सुन्दर रूप है! कुरूप है तो कह दिया, कितना कुरूप है!"

चेतना का चौथा खण्ड अर्थात् वेदना जाग उठी। वेदना अर्थात् संवेदना। संवेदना के दो प्रकार हैं—सुखद और दुःखद। इन दोनों की प्रतीति प्रतिदिन होती है। इस प्रतीति से जो प्रतिक्रिया होती है, उसे संस्कार कहा जाता है। सुखद संवेदना प्रिय लगती है। इसलिए उसके प्रति राग उत्पन्न होता है। दुःखद संवेदना अप्रिय लगती है। अतः उसके प्रति द्वेष पैदा होता है। इन्द्रियों से संबंधित विषय जब चेतना से टकराते हैं तब जानने, पहचानने, मूल्यांकन करने, संवेदनशील होने एवं संस्कार बनने का कार्य प्रारम्भ हो जाता है। रागजनित संस्कार, द्वेषजनित संस्कार बनने लगता है।

पारम्परिक मान्यताओं से आसक्त मनुष्य अपनी मान्यताओं की आलोचना सुनकर आगबबूला हो जाता है और मार-पीट पर उतारू हो जाता है। साम्प्रदायिक कर्मकाण्ड भी आसक्ति का सबसे सशक्त उपादान है। कर्मकाण्ड के प्रति आसक्त व्यक्ति अपने सम्प्रदाय की निन्दा सुनकर व्याकुल होकर मारपीट पर उतारू हो जाते हैं।

आप लोग कार्य-कारण की जो श्रृंखला है, उसका साक्षी भाव से निरीक्षण करें और उनकी जड़ों तक पहुँचने का अथक प्रयास करें।"

ग्यारह बज गया। साधक भोजनालय में पहुँच गये।

भोजनालय

भोजन में ग्रामीणों ने मालपूआ और बण्डे की सब्जी का प्रबन्ध किया था। साधकों को मनभाया भोजन मिला। वे सबका मंगल मनाने लगे। उसके बाद एक बजे तक विश्राम किए और बाद में साधना कक्ष में पहुँच गए।

अपराह्न ढाई बजे भगवान ने अपना प्रवचन प्रारम्भ किया। बोले, "साधको! कारण है तो कार्य है। जीवन-धारा सतत चलती रहती है। भव-भव अर्थात् कुछ बनता चला जा रहा है। मनुष्य का पार्थिव शरीर जैसे विनष्ट होता है, चेतना प्रवाह पुराने शरीर को त्याग कर तुरन्त दूसरे शरीर में प्रविष्ट हो जाता है। भव क्यों होता है। आसक्ति ही भव का कारण है। आसक्ति जितनी गहरी होगी, भव का कारण भी उतना ही गहरा होगा।"

महानाम ने पूछा, "भन्ते! उपादान क्या होता है? उसका क्या कारण है?"

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

बुद्ध बोले, "साधको। तृष्णा अर्थात् राग-द्वेष उपादान के कारण है।"

महानाम ने फिर प्रश्न किया, "भन्ते! तृष्णा क्यों पैदा होती है?"

"साधको! सारे शरीर-स्कंध पर जहाँ संवेदना होती है वहाँ तृष्णा जागती है। सुखद संवेदना होती है तो राग उत्पन्न होता है, और दुख हो तो द्वेष।"

महानाम बोला, "वेदना (संवेदना क्या है?) यह क्यों उत्पन्न होती है?"

"साधको! वेदना स्पर्श से उत्पन्न होती है। आँख, कान, नाक, रसना, त्वचा, मन के द्वारों पर विषयों के स्पर्श से संवेदना उत्पन्न होती है।"

महानाम ने पूछा, "भन्ते! ज्ञानेन्द्रियों का आगमन कहाँ से हुआ?"

"साधको! नाम-रूप से। नाम-रूप क्या है? मन और रूप अर्थात् काया। इनके मेल से ही विभिन्न इन्द्रियों के साथ जीवन-प्रवाह का इस धरा पर आगमन होता है। नाम-रूप क्या है? विज्ञान से नाम-रूप हुआ, विज्ञान अर्थात् चेतना मनुष्य के जीवन-काल तक ही रहती है। जैसे ही जीवन-लीला समाप्त होती है उसके साथ ही जीवन-धारा अपना काम बन्द कर देती है। उस शरीर का परित्याग कर वह उत्पन्न होने वाले शरीर में प्रविष्ट होकर आती है। समाप्त होने पर नये जीवन के क्षण नया विज्ञान उत्पन्न होता है।"

महानाम बोला, "भन्ते! संस्कार कैसे बनते हैं?"

"साधको! अविद्या से ही संस्कार बनते हैं। अविद्या का अर्थ है अज्ञान। यह अविद्या ही दुःख का मूल कारण है। विपश्यना का अभ्यास कर इसे समूल नष्ट कर दें।

अविद्या को जब जड़ से उखाड़ देंगे तो सारे-सारे दुःख काफूर हो जायेंगे। वेदना के स्थान पर जब प्रज्ञा जाग जायेगी तो अविद्या के कारण जो दुःख-चक्र चल रहा है, वह धर्म-चक्र में बदल जाएगा। जब प्रज्ञा जागेगी तो मालूम हो जाएगा कि संवेदनाएँ नश्वर हैं, अनित्य है। जब हर संवेदना के साथ प्रज्ञा जागेगी तो नये संस्कार नहीं बनेंगे और पुराने संस्कार नष्ट हो जायेंगे और हम नया बनायेंगे नहीं। अन्त में निर्वाण ही निर्वाण है?[1]

जैसे ही परिचर्चा समाप्त हुई, पाँच बज गया।

अल्पाहार

भोजनालय में ठुर्री और भुना हुआ चना तथा बड़े हौद में सिखरन रखा हुआ था। साधक ठुर्री और चना खाकर रस-पान कर घूमने चले गये।

छः बजे पुनः साधना-कक्ष में आकर अभ्यास करने लगे। सात बजते ही विश्राम करने चले गए। पाँच मिनट बाद पुनः वापस आकर आसन पर बैठ गए।

1. आत्म-दर्शन, आचार्य सत्यनारायण गोयन्का, पृ. 113-120।

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

प्रवचन

सवा सात बजे रात में भगवान् का प्रवचन प्रारम्भ हुआ। भगवान बोले, "साधको! आज मैं सभी भिक्षुओं को पारमिता-मार्ग से अवगत कराऊँगा। ध्यान से सुनो। पारमिता शब्द परम से निष्पन्न हुआ है। इसका अर्थ है—सर्वोच्च अवस्था। पारमिताएँ छः हैं—

1. दान-पारमिता, 2. शील-पारमिता, 3. शान्ति-पारमिता, 4. वीर्य-पारमिता, 5. ध्यान-पारमिता, 6. प्रज्ञा-पारमिता।"

1. दान-पारमिता—सभी प्राणियों की भलाई के लिए सर्वस्व दान कर देना और दानफल का भी परित्याग दान-पारमिता है। आत्मभाव का त्याग ही निर्वाण है।

सांसारिक दुःख का मूल सर्वपरिग्रह है। अतः अपरिग्रह द्वारा भव-दुःख से विमुक्ति मिलती है।

2. शील-पारमिता—शील का अर्थ है—प्राणातिपात (वध, हिंसा आदि) सब गर्हित कार्यों से चित्त की विरति। विरति-चित्तता ही शील है। शरीर, वाणी और मन से हिंसा न करना, चोरी न करना, झूठ न बोलना, चुगली न करना मैथुन से विरत रहना, मद्यपान न करना शील-पारमिता है।

3. शान्ति-पारमिता—शान्ति का अर्थ है—क्षमा, सहनशीलता। दूसरे के द्वारा अपकार होने पर क्रोध न करना। कष्ट पड़ने पर संयम और धैर्य रखना, मरने जैसा कष्ट होने पर शान्ति से उसे सहन कर लेना शान्ति-पारमिता है।

4. वीर्य पारमिता—इसका लक्षण कुशलोत्साह है। यह स्पष्ट रूप से चित्त है। वीर्य का अर्थ है—उत्साह।

5. ध्यान-पारमिता—इसका प्रमुख लक्षण चित्त की एकाग्रता। ध्यान-पारमिता को चित्त से पृथक नहीं किया जा सकता।

6. प्रज्ञा-पारमिता—प्रज्ञा-पारमिता यथार्थ ज्ञान को कहते हैं। इसे भूत-तथता भी कहते हैं। प्रज्ञा के बिना पुनर्भव का अन्त नहीं होता। ध्यान से चित्त एकाग्र होता है और चित्तैकाग्रता से प्रज्ञा का प्रादुर्भाव होता है। समाहित चित्त होने से यथाभूत का ज्ञान होता है और सब आवरणों का प्रहाण होता है।[1]

रविवार, साधना का छठवाँ दिन

रविवार चार बजे प्रातः सभी साधक जागकर नित्य-क्रिया से मुक्त होने के बाद दातून कर हाथ-मुँह धोये और तपोभवन में आकर अपने-अपने आसन पर बैठकर

1. बौद्ध-धर्म-दर्शन, आचार्य नरेन्द्रदेव, पृ. 188-216।

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

सिर से पाँव तक और पाँव से सिर तक मन को दौड़ाते हुए प्रत्येक अंग और उस पर उत्पन्न होने वाली संवेदनाओं को द्रष्टा भाव से देखने लगे। भोक्ताभाव के परिणामों को अच्छी तरह जानते थे। अतः सतर्क होकर भोक्ताभाव को उठने नहीं दिए।

भगवान ने कहा, "साधको! अब सिर से पाँव तक कई अंगों को एक साथ देखते चलो। सिर से पाँव तक धारा-प्रवाह ही दिखलाई पड़ेगा। सिर से पाँव पर धारा-प्रवाह को देखते यदि सुखद संवेदना की अनुभूति तो उसके प्रति राग न उत्पन्न होने पावै। इसी प्रकार पाँव से सिर तक धारा-प्रवाह को देखो। सारे शरीर पर धारा ही धारा चल रही है।"

साधक बुद्ध के आदेशानुसार शरीर के कई अंगों को एक साथ देखते हुए धारा-प्रवाह की अनुभूति करने लगे।

साढ़े छः बजे सभी भोजनालय गए और कलेवा करने के बाद थोड़ी देर तक टहलते रहे। स्नान करने के बाद प्रातः आठ बजे साधना-कक्ष में आकर चित्तैकाग्रता में जुट गए।

नौ बजे पाँच मिनट का विश्राम लेकर जब वे अधिष्ठान में बैठे तो परिचर्चा प्रारम्भ हो गई।

भगवान बुद्ध बोले, "साधको! विपश्यना का एक अर्थ तटस्थता भी है। सिर से पाँव तक साढ़े तीन हाथ की काया पर स्वाभाविक रूप से जो कुछ घट रहा है, उसी को तटस्थ भाव से जागरूकता के साथ जानना है। सभी साधकों को यह अनुभूति हो ही गई होगी कि शरीर में प्रतिक्षण कोई न कोई संवेदना उत्पन्न होती रहती है। संवेदना पलभर में उत्पन्न होती है और पलभर में ही विलुप्त भी हो जाती है। यह इसका नैसर्गिक स्वभाव है। अतः काया में उत्पन्न होने वाली संवेदनाओं को मन को एकाग्र करके जो आप लोग देख रहे हैं, उसे साक्षी भाव से ही देखें।

एक अनुसंधानकर्त्ता की तरह हर साधक अपने शरीर का स्वतः अन्वेषण कर रहा है। शरीर के अंग-प्रत्यंग पर घटित होने वाली क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं को देख रहा है। अतः अनुभूति के स्तर पर जो परिज्ञान हो रहा है, उसी को सत्य मानें। सच्चाई का दर्शन कर मन को सुधारें, मलों को निकाल कर मन को विमल करें। अनुभूतियों द्वारा यथातथ्य का साक्षात्कार करें। प्रत्यक्ष ज्ञान ही प्रज्ञा प्रदान करता है।

कौतूहल और तृष्णा दो ऐसी चीजें हैं जिनका अन्त नहीं होता है। कौतूहल जागा और उसकी पूर्ति हो गई तो मन पुनः दूसरी चीज को पाना चाहेगा। तृष्णा की पूर्ति हुई तो पुनः दूसरी चीजों को पाने की तृष्णा उत्पन्न होगी।

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

दर्शन का अर्थ है—चाक्षुप प्रत्यक्ष अर्थात् साक्षात्कार और इसकी पूर्ति अनुभूति द्वारा होती है। अन्तर्मुखी होकर आत्मदर्शन करना चाहिए। विभाजन करते हुए कलाप (समूह) तक पहुँच जाओगे। पार्थिव शरीर का निर्माण चार महाभूतों से हुआ है। ये हैं—पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु। ये चारों महाभूत अपने-अपने गुण, धर्म और स्वभाव के साथ हैं। आत्मदर्शन-काल में इन महाभूतों के प्राकृतिक गुणों और धर्म को देखना है। जब शरीर पर कहीं भारीपन महसूस हो या हल्कापन हो तो समझ लेना चाहिये कि इस समय शरीर पर पृथ्वी धातु का प्राबल्य है। वायु धातु का प्रभाव हाने पर शरीर में हलचल, तरंग, धड़कन और फड़कन की अनुभूति होती है। अग्नि धातु का प्रभाव होने पर शरीर पर शीतलता या गर्माहट का अहसास होता है। जल धातु का प्रभाव होने पर शरीर में नमी या चिपचिपाहट की अनुभूति होती है। अनुभूति द्वारा यह ज्ञात हो जाता है कि इन चार महाभूतों में से कोई भी ऐसी धातु नहीं है जो अपने गुण, धर्म और स्वभाव को प्रकट न करे। शरीर स्कंध के परमाणु समूह में चारों महाभूत समाहित हैं। इनमें से जो भी धातु शरीर में प्रबल रूप से आयेगा, अपना गुण, धर्म और स्वभाव अवश्य प्रकट करेगा। वह संवेदना के रूप में ही दिखलाई पड़ेगा। ध्यान रखिए जब एक धातु शरीर में आएगा तो दूसरा धातु नहीं आएगा। एक साथ चारों धातु शरीर में सक्रिय नहीं होते। कभी-कभी दो धातु एक साथ प्रकट होते हैं। उस समय हम दोनों के गुण, धर्म और स्वभाव का अनुभव करते हैं। जो भी कलाप (समूह) अपने गुण, धर्म, स्वभाव के साथ उत्पन्न होते हैं, बाद में विलीन हो जाते हैं। इस प्रकार उत्पादन होना और क्षय होना उनका अपना स्वभाव है। साक्षी भाव से देखते-देखते जब इस सत्य का परिज्ञान हो जायेगा तो उन्मुक्ति का द्वार अपने-आप खुल जायेगा।"

ग्यारह बज गया। सभी साधक आहार ग्रहण करने के लिये भोजनालय में चले गए। भोजनोपरान्त सभी लोग विश्राम करने लगे।

अपराह्न एक बजे से लेकर दो बजे तक साधक सजग होकर तस्टथ भाव से अंग-प्रत्यंग पर उठने वाली संवेदनाओं का दर्शन कर अनुभूति के स्तर पर उतारते रहे। ढाई बजते ही परिचर्चा प्रारम्भ हो गई।

भगवान बुद्ध बोले, "साधको! भिन्न-भिन्न स्वभाव के परमाणुओं के प्रधान होकर आने के चार मुख्य कारण हैं। सबसे पहला कारण तो यह है कि हमारी साढ़े तीन हाथ की काया जो परमाणुओं का पुंज (कलाप) है, उसे हर आदमी भौतिक आहार प्रदान करता रहता है। आहार के अनुसार ही परमाणुओं का निर्माण होता है। मिर्ची का सेवन करने पर शरीर में जलन होती है। पलभर में हमें यह ज्ञान हो

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

जाता है कि अग्नि धातु का अपने प्रबल रूप के साथ शरीर पर आगमन हुआ है। गरिष्ट भोजन का आस्वाद लेने पर शरीर पर भारीपन महसूस होता है। यह पृथिवी धातु का साक्षात् रूप है।

दूसरा कारण परिवेश है। हमारा अंग-प्रत्यंग बाह्य वातावरण से आहार ग्रहण करता रहता है। वातावरण द्वारा जैसा खाद्य मिलता है वैसा ही शरीर में परमाणुओं का निर्माण होता है।

शरीर-धारा (रूपधारा) साथ-साथ चित्त (नाम) की धारा भी चलती रहती है। इसे चेतना का आहार मिलता है। मन में जिस पल जो संस्कार बनता है वह उस पल की चेतना-धारा का आहार है। यह सारी प्रक्रिया अनुभूतियों के स्तर पर दिखलाई पड़ती हैं। अगर मन में वासना जागी तो उसी के आधार पर चित्तधारा अग्रसर होती है। चित्तधारा के बढ़ने के लिए प्रतिक्षण कोई न कोई आहार चाहिए। वह क्रोध भी हो सकता है, राग भी हो सकता है और द्वेष भी। यदि चित्तधारा को कोई नया आहार नहीं मिलेगा तो पुराने संस्कार स्वतः निर्मूल होते चले जायेंगे। अतः नये संस्कार बनने नहीं पावेंगे। इसलिए जैसी भी संवेदना हो, सुखद हो या दुखद हो, उसे साक्षी भाव से देखना चाहिए। कोई वस्तु प्रिय लगे तो उसके प्रति राग न जगने पाये और दुखद लगे तो उसके प्रति द्वेष न जागे।

शरीर और मन में चोली-दामन का संबंध है। सारे कलापों की निष्पत्ति शरीर और चित्त से होती है। चित्त पर क्रोध उत्पन्न हो तो समझना चाहिए शरीर में अग्नि धातु प्रधान परमाणु उभरे हुए हैं। इसीलिए हम जले जा रहे हैं। इसी प्रकार यदि चित्त भयातुर हो तो तुरन्त समझ लेना चाहिए कि शरीर में वायु प्रधान परमाणु अवतरित हो रहे हैं।

काया पर उत्पन्न होने वाले परमाणु को द्रष्टाभाव से देखने पर नये संस्कार निर्मित नहीं हो पाते। पुराने संस्कार अपने आप क्षयीभूत होते जायेंगे। अतः संवेदनाओं का निरीक्षण द्रष्टाभाव से, साक्षी भाव से करना चाहिए।

शत्रु दो प्रकार के होते हैं। बाहरी और आंतरिक। आंतरिक शत्रुओं की संख्या पाँच है—1. राग, 2. द्वेष, 3. आलस्य, 4. बेचैनी, 5. संदेह।

राग-द्वेष हमारे प्रबल शत्रु हैं। इन्हें खदेड़ने के लिए हम विपश्यना का स्मृति सहित अभ्यास कर रहे हैं। ये पिण्ड छोड़ेंगे तो अवश्य पर जागरूक रहने पर। सुखद संवेदना के प्रति राग न जगने पावे और दुःखद के प्रति द्वेष न जागे। आलस्य मनुष्य को निकाम बना देता है। अतः मन को उत्साहित कर आलस्य को दूर भगा दें। चौथा शत्रु बेचैनी है। बेचैनी से मन व्याकुल होता है। व्याकुल भिक्षु साधनारत कैसे होगा? उसे मैत्री, करुणा और क्षमा द्वारा मन को निर्मल कर शान्त

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

और एकाग्र करना चाहिए। संदेह का क्या कहना है! वह श्रद्धा का प्रतिपक्ष है। करुणा, श्रद्धा और विश्वास की लगाम से उस कस दें।"[1]

पाँच बज गया। साधक अल्पाहार के लिए भोजनालय में चले गए। अल्पाहार के बाद वे शारीरिक अकड़ाव को मिटाने के लिए मैदान में टहलने लगे।

सायं छः बजे साधक शान्त तथा स्मृतिपूर्वक पाँव से सिर तक तथा सिर से पाँव तक शरीर के विभिन्न अंगों पर उठने वाली संवेदनाओं को एक-एक करके तटस्थ भाव से निरीक्षण करने लगे। एक बार कई अंगों पर एक साथ निरीक्षण करते थे और कभी-कभी एक-एक अंग को। उन्हें धाराप्रवाह की अनुभूति होने लगी। सारे शरीर में तरंगें ही तरंगें हैं, इसकी अनुभूति उन्हें होने लगी। एक घंटे बाद पाँच मिनट का विश्राम किए और पुनः सात पाँच पर धर्मोपदेश सुनने के लिए अपने-अपने आसन पर बैठ गए।

चार ब्रह्मविहार

भगवान बुद्ध साधकों को संबोधित करते हुए बोले, "भिक्षुओ! विपश्यना-साधना में चार ब्रह्मविहारों का बहुत बड़ा योगदान है। ये चार हैं—1. मैत्री, 2. करुणा, 3. मुदिता और 4. उपेक्षा।

ये चारों चित्त की उत्तम एवं पवित्र अवस्थाएँ हैं। चित्त विशुद्धि के ये सर्वोत्कृष्ट साधन हैं। इन चार भावनाओं द्वारा राग, द्वेष, ईर्ष्या असूया (रोष) आदि चित्त के मलों का परिक्षालन होता है। कितनी सुखद बात है! योग के अन्य परिकर्म जहाँ आत्महित के साधन हैं वहाँ ब्रह्मविहार परहित के भी साधन हैं। प्रथम तीन अर्थात् मैत्री, करुणा और मुदिता द्वारा प्रथम तीन ध्यानों का उत्पाद करते हैं पर चौथा अर्थात् उपेक्षा अन्तिम अर्थात् चौथे ध्यान का उत्पाद करता है।"

भिक्षुओ! अब एक-एक करके मैं समझा रहा हूँ—

1. मैत्री—यह परहित का सर्वोत्कृष्ट साधन है। प्राणियों के प्रति स्नेह तथा सुहृद्भाव प्रवर्तित करना मैत्री है। मैत्री प्रवृत्ति का महापुरुष चेतन-अचेतन सभी जीवों का केवल उपकार ही नहीं करता अपितु उनकी सुख-सम्पन्नता की कामना भी करता है। उसका चित्त द्वेष और द्रोह की भावना का परित्याग कर देता है। मैत्री भावना की सम्यक् निष्पत्ति से द्वेष शान्त हो जाता है। राग मैत्री का आसन्न शत्रु है। राग की उत्पत्ति होने पर इस भावना का विनाश हो जाता है। जीवों के शील आदि गुणों के ग्रहण करने के कारण मैत्री की प्रवृत्ति का उदय होता है। मैत्री का सौहार्द तृष्णा के कारण नहीं होता है। वह केवल सभी प्राणियों की भलाई के

1. आत्मदर्शन, आचार्य सत्यनारायण गोयनका, पृ. 122-129

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

लिए होता है। मैत्री का स्वभाव अद्वेष तथा अलोभ युक्त होता है।

2. करुणा–करुणा मानवता का उपकारक है। दूसरे लोगों के दुःख को देखकर दयालु पुरुषों के हृदय का जो कम्पन होता है, उसे 'करुणा' कहते हैं पराये लोगों के दुःख को देखकर सत्पुरुषों का कोमल हृदय द्रवित हो जाता है। करुणाशील व्यक्ति दूसरों की क्षति नहीं करता। करुणा के भाव के जागरण से विहिंसा का उपशम होता है। पर याद रखें! शोक, दौर्मनस्य करुण-भावना का आसन्न शत्रु है।

3. मुदिता–इसका अर्थ है हर्ष यह चित्त की वह अवस्था जिसमें दूसरे का सुख देखकर सुख होता है। मुदिता की भावना करने वाला व्यक्ति दूसरों की सम्पन्नता को देखकर खूब प्रसन्न होता है। वह समृद्ध लोगों से न तो ईर्ष्या करता है न ही द्वेष। मुदिता की भावना का उदय होने पर अरति का उपशम होता है। पर यह प्रीति सांसारिक व्यक्तियों की प्रीति नहीं है। मुदिता भावना में जो हर्ष उत्पन्न होता है, उसका प्रवाह शान्त होता है। मुदिता भावना रखने वाला पुरुष उद्वेग और क्षोभ शून्य होता है।

4. उपेक्षा–यह भी योग की एक भावना है। इसका अर्थ होता है उदासीनता। उपेक्षा-भाव रखने वाला पुरुष प्रिय-अप्रिय में कोई भेद-भाव नहीं रखता। वह सबके प्रति सम्भाव रखता है। उपेक्षा-भावना द्वारा यह परिज्ञान होता है कि "मनुष्य कर्म के अधीन है, कर्मानुसार ही सुख से सम्पन्न होता है या दुःख से मुक्त होता है या प्राप्त सम्पत्ति से च्युत नहीं होता।" यह ज्ञान उपेक्षा-भावना का आसन्न कारण है।

साधकों ये चारों ब्रह्मविहार समान रूप से ज्ञान एवं सुगति के प्रदाता हैं। अतः इन पर ध्यान दें। सोने का समय हो गया है। विश्राम करें।"[1]

सोमवार, साधना का सातवाँ दिन

सारे शरीर का तटस्थ भाव का निरीक्षण करते-करते साधकों का विश्वास और प्रयत्न प्रबल हो उठा। सारी काया और इन्द्रियों की हलचल देखकर उन्हें यह परिज्ञान हो गया कि सब कुछ अनित्य है। सोमवार को वे शरीर और मन को शुद्ध और तरोताजा कर तपोभवन में आकर साधना में तल्लीन हो गये। शरीर पर उद्वेलित होने वाले धारा-प्रवाह को देखते हुए उन्हें यह अहसास होने लगा कि सारे शरीर में लहरें ही लहरें हैं।

साढ़े छः बजते ही वे भोजनालय में चले गए। ग्रामवासियों ने उनके लिए

1. बौद्ध-धर्म-दर्शन, आचार्य नरेन्द्रदेव, पृ. 94-96

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

हलुये, दूध और कटहल के पके फल के कोये का प्रबन्ध किया था। स्वादिष्ट एवं सात्विक आहार पाकर उनके चित्त में सत् एवं परहित भाव लहराने लगे। क्षुधा-शान्ति के बाद वे सुगंधित और शीतल पवन का आनन्द लेते हुए चुपचाप टहलने लगे। मौनव्रत-पालन पर वे सदैव ध्यान रखते थे।

साधना-कक्ष में आकर वे प्रातः आठ से नौ बजे तक अभ्यास करते रहे। नौ बजे से लेकर ग्यारह बजे तक का समय परिचर्चा का था।

भगवान बुद्ध साधकों को सम्बोधित करते हुए बोले, "भिक्षुओ। यह देखकर मुझे बड़ा ही आनन्द आ रहा है कि सभी साधक सिर से पाँव तक और पाँव से लेकर सिर तक अंग-प्रत्यंग को सजग मन से देख रहे हैं। आत्म-निरीक्षण का जो कार्य हो रहा है, वह शरीर पर उत्पन्न होने वाली एवं क्षय होने वाली संवेदना के दर्शन का कार्य है। प्रतिपल संवेदनाओं का उत्पाद और व्यय हो रहा है। संवेदनाओं की उठने और विलीन होने वाली प्रक्रिया को हर साधक समता में रहकर पहचान रहा है। सुखद संवेदनाओं को देखकर न कोई उनके प्रति राग-रंजित हो रहा है और न ही दुखद संवेदनाओं का साक्षात्कार उनके प्रतिद्वेष प्रकट कर रहा है। समता में रहने के कारण पल-पल अनित्य-बोध जाग रहा है। चित्त बिलकुल शान्त है। व्याकुलता और बेचैनी का नामोनिशान नहीं है। जहाँ-जहाँ जो कुछ हो रहा है, कैसे हो रहा है, साधकों का मन द्रष्टा भाव से उसे देख रहा है। हर भिक्षु को यह ज्ञान हो रहा है कि कोई भी वस्तु नित्य, स्थिर और शाश्वत नहीं है।

साँस के आवागमन को देखते-देखते हर एक साधक को स्थूल मन की स्थूल सच्चाई का परिज्ञान हुआ। साँस निरीक्षण का कार्य स्थूल आलम्बन से प्रारम्भ हुआ। धीरे-धीरे मोटे साँस को देखते-देखते सूक्ष्म साँस पर आ गये हैं। सभी साधकों ने ऊपर से होंठ के लेकर नासिका के अग्रभाग तक के तिकोने हिस्से पर जहाँ साँस का स्पर्श होता है, उस स्पर्श स्थान को अनुभूति के स्तर पर पहचाना। इस छोटे से तिकोने हिस्से पर गरम, ठंडी, चिपचिपी, तीखी जो भी संवेदनाएँ उठीं, उन्हें पहचाना। उनका साक्षात्कार किया। अब अपने ध्यान को नासिकाग्र के छोटे से बिन्दु पर केन्द्रित करें। विपश्यना साधना भी एक यात्रा है और इसके अनेक पड़ाव हैं। अपने मन को उन पर रोकते हुए, वहाँ पर उठने वाली संवेदना का दर्शन कर आगे बढ़ रहे हैं। हमारा मन स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर जा रहा है। पल-पल पर हमें यथार्थ-बोध हो रहा है। यथाभूत का दर्शन हो रहा है। यथातथ्य का काया और चित्त से बहुत गहरा संबंध है। हमारी काया और चित्त पर जो हलचल हो रही है, उसका हम एकाग्र मन से निरीक्षण कर रहे हैं।

आत्मनिरीक्षण से जो अनुभूति हो रही है, उसका संबंध वर्तमान से है और

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

इस पल की सबसे बड़ी सच्चाई है। जैसी भी संवेदना हो, सुखद या दुखद, दोनों के प्रति समता का भाव है। इस सच्चाई का हमें अच्छी तरह बोध हो रहा है कि हमारा तन और मन पल-पल परिवर्तित हो रहा है। हर अवस्था एवं स्थिति अस्थिर है। साढ़े तीन हाथ की काया में जो भी इन्द्रियाँ हैं, सभी नश्वर हैं। अस्थैर्यता उनका स्वभाव है।

बाहर से देखने पर शरीर ठोस प्रतीत होता है पर यह न तो सघन है न ठोस। शरीर और मन में गहरा संबंध है। दोनों में तादात्म्य है। काया के प्रति आसक्त होना मन का स्वभाव बन गया है। इसीलिए मन 'मैं' और 'मेरा' के भाव से आक्रान्त है। आत्म-निरीक्षण करते-करते एक ऐसा भी पल आयेगा जब सारी सच्चाई प्रकट हो जायेगी और तब शरीर एवं मन का तादात्म्य समाप्त हो जायेगा। ठोसपना इति की ओर उन्मुख होकर टुकड़े-टुकड़े हो जायेगा। अन्ततः हमें यह बोध हो जायेगा कि काया का जो ठोसपना था, समाप्त हो गया। भौतिक पदार्थों के ठोसपन की इति भौतिक पदार्थों के सच्चे स्वरूप का अहसास कराती है। यही उसका सच्चा दर्शन है, यथार्थ है। विज्ञान कहता है कि जैसा शरीर होता है वैसा ही मन भी होता है। शरीर जब तक ठोस रहता है तब चित्त की समस्त वृत्तियाँ घनीभूत होकर दृष्टिगोचर होती हैं।

जब ये चित्तवृत्तियाँ सिर पर आरूढ़ होती हैं तो दर्द होता है। यह दर्द काया का नहीं अपितु मन का होता है। पीड़ा मन को हो रही है। हमारा विज्ञान है, चेतना है वह सिर की पीड़ा का अनुभव कर रहा है। यह पीड़ा चित्त की एक वृत्ति है। इसे हमें टुकड़े-टुकड़े करके देखना है। पर देखने की इस प्रक्रिया में समता का भाव सदैव बना रहना चाहिए।

काया, मन और मन की वृत्तियों के टुकड़े-टुकड़े को देखेंगे तब स्वतः हमें यह परिज्ञान हो जायेगा कि वे सूक्ष्मतम् हो गये हैं। जब शरीर और मन के वास्तविक रूप का बोध हो जायेगा तो 'मैं' और 'मेरा' का भाव काफूर हो जायेगा।

ग्यारह बज गया। सभी भिक्षु भोजनालय में पिल पड़े। भोजनालय में साधकों के लिए झोर, बड़ा, पकौड़ी, चावल एवं मक्के की रोटी का प्रबन्ध किया गया था। साधक बड़े चाव से क्षुधापूर्ति किए। भोजन के बाद एक बजे अपराह्न तक वे विश्राम करते रहे।

एक बजे से साधनारत हो गये। विश्राम और आत्म-निरीक्षण का कार्य पाँच बजे तक चलता रहा।

पाँच बजे वे अल्पाहार के लिये भोजनालय में गये। अल्पाहार करके खूब घूमे-फिरे और छः बजे सायं साधना में जुट गये।

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

रात सवा सात बजे भगवान बुद्ध का उपदेश प्रारम्भ हुआ। भगवान ने कहा, "साधको! रतिक्रिया का आनन्द लेते-लेते मैं नारी-सम्पर्क से मैं ऊब गया। उस समय मुझे यह बोध हुआ कि 'अति सर्वत्र वर्जयेत। संभोग एवं तपस्या की पराकाष्ठा अत्यन्त ही कष्टदाई है। अचानक मेरे अन्दर यह भाव जाग्रत हुआ कि मेरे अन्दर श्रद्धा है, वीर्य है, स्मृति है, समाधि है, प्रज्ञा है। क्यों न इनका सहारा लेकर मोक्ष प्राप्त करूँ। शील, समाधि और प्रज्ञा के विकास में इनका बड़ा योगदान है। अतः आज इस पावन बेला में इन पाँचों इन्द्रियों से आप सभी को अवगत कराऊँगा।

भावना में जब श्रद्धा आदि इन्द्रियाँ सुविशद एवं तीक्ष्ण हो जाती हैं तो कामादि दोषों का लोप हो जाता है। श्रद्धा चित्त का सम्प्रसाद है। मन अपने अभीष्ट की प्राप्ति के जिन साधना एवं विधियों को उपयोग में लाता है, उनके प्रति उसके मन में श्रद्धा और विश्वास होना चाहिए। हम जिस साधना का अभ्यास कर रहे हैं, श्रद्धा उस अभ्यास की आधारशिला है। पर श्रद्धा विवेकयुक्त होनी चाहिए। हमारी साधना में श्रद्धा के साथ विवेक, ज्ञान एवं समझ भी अत्यन्त आवश्यक है। हमारा सारा प्रयास अंध श्रद्धा को इस धरा से विदा करने के लिये हो रहा है। विवेक मनुष्य का सबसे बड़ा मित्र है क्योंकि वह हमें सत्-असत्, यथार्थ और वायवीयता का बोध कराता है। श्रद्धा, विवेक और समझ में गहरा संबंध है। इन दोनों के साथ जब सम्यक दृष्टि का उदय होता है तो हमारा भी कल्याण होता है और मानव जाति का भी।

हमारी दूसरी इन्द्रिय है—वीर्य। यह चित्त का अभ्युत्साह है। यह कुशल चित्त का उत्साह है। जब हम उत्साह के साथ साँसों तथा काया के अंग-प्रत्यंग को समता भरी दृष्टि से देखने का शुभ प्रयत्न करें तभी हमें अनित्य बोध होगा। अतः पराक्रम के साथ, सजग प्रयत्न से आत्म-निरीक्षण का अभ्यास करें। फल अवश्य मिलेगा। यथाभूत को अवश्य पहचानेंगे।

हमारी तीसरी इन्द्रिय है—स्मृति। अनुभूत विषय के असम्प्रमोष को स्मृति कहते हैं। इसका अर्थ है जागरूकता, सावधानी। सावधानी न अतीत के प्रति रखनी है न तो काल्पनिक भविष्यत् के प्रति। सावधानी और जागरूकता का संबंध केवल वर्तमान से रहता है। हमारे अंग-प्रत्यंग में वर्तमान की जो यथाभूत अवस्था है, उसी का हम समता भरी दृष्टि से अवलोकन कर रहे हैं।

अब बात आती है समाधि की। समाधि चित्त की एकाग्रता को कहते हैं। हमें वर्तमान क्षण के प्रति अत्यन्त सजग रहना है। जैसे ही अगला क्षण वर्तमान का बने, हम उसे एकाग्रचित्त से देखें, यही समाधि है। मन भटकने न पावे, सदा

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

वर्तमान पल पर केन्द्रित रहे। यह सम्यक् समाधि है।

अन्तिम इन्द्रिय है—प्रज्ञा। जिसके द्वारा यथाभूत वस्तु का ज्ञान हो, उसे प्रज्ञा कहते हैं। जब अभ्यास करते-करते प्रज्ञा जागेगी तो मन के सारे विकार, मल और क्लेश लुप्त हो जायेंगे। हमें यह ज्ञान हो जायेगा कि संसार की हर चीज नश्वर है, क्षणभंगुर है, अनित्य है। हम सब मन के अनित्य स्वभाव को द्रष्टाभाव से, समताभरी दृष्टि से देख रहे हैं। विपश्यना का जो अभ्यास कर रहे हैं, वही प्रज्ञा है।"[1]

मंगलवार, साधना का आठवाँ दिवस

आठवें दिन साधक साढ़े चार बजे से आत्म-निरीक्षण प्रारम्भ किए। बीच-बीच में पाँच मिनट का विश्राम लेते रहे। जलपान, भोजन एवं अल्पाहार समय-समय पर करते रहे। जो भी अवकाश का समय मिला, उसमें टहलते रहे।

रात में जैसे सवा सात बजा, भगवान बुद्ध धर्मोपदेश करने लगे। उनके प्रवचन में अधिकतर बातें विपश्यना से संबंधित थीं। भिक्षुओं को संबोधित करते हुए बोले, "साधको! शरीर के अंग-प्रत्यंग पर उत्पन्न होने वाली संवेदनाओं का साक्षीभाव से निरीक्षण करते रहें। हर अवस्था में समता बनी रही। प्रिय संवेदना के प्रति राग न जागे और अप्रिय के प्रति द्वेष न उत्पन्न हो। विपरीत परिस्थितियों में चित्त को सम्भालने का प्रयास करते रहें। वह न तो व्याकुल हो न बेचैन। परिस्थिति जैसी भी हो, शांति और धैर्य से काम लेना है। उद्वेलित न होना ही समता है। यदि किसी के मन में अभ्यास करते समय संवेदनाओं के मूल्यांकन का विचार उत्पन्न हो तो उसे इस सच्चाई को जान लेना आवश्यक है कि अंग-प्रत्यंग पर जो संवेदनायें उत्पन्न हो रही हैं, जिन्हें महसूस कर रहे हैं, उनके प्रति क्रिया प्रतिक्रिया न प्रकट कर समता में पड़े रहें, यह समता की सच्चाई का सबसे बड़ा मापने का उपकरण है।

समता के साथ संवेदनःओं के निरीक्षण के कार्य के साथ आपका मन अत्यधिक सक्रिय है। आपकी चित्तधारा निरंतर प्रवहमान है। राग, द्वेष और मोह से सतर्क रहें। ये तीनों आपके चित्त पर प्रभाव न जमाने पावे। जैसे ही तीनों शत्रु प्रबल बनने का कार्य प्रारम्भ करें, उनका संवर कर दें। वे प्रभाव न जमा सकें, प्रारम्भ में उन्हें रोक दें। मनोनिग्रह कर अपने चित्त को बाह्यजगत से बिलकुल अलग रखें। इसी को सच्ची समता कहते हैं।

आत्म-निरीक्षण करते समय सभी साधकों ने अच्छी तरह यह महसूस किया

---

1. आत्मदर्शन, आचार्य सत्यनारायण गोयनका, पृ. 131-138

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

होगा कि सारी काया में एक तरह की सूक्ष्म-सूक्ष्म संवेदनाओं की एक धारा प्रवाहित हो रही है। यह धारा-प्रवाह अनित्यता, क्षणभंगुरता का बोध कराता है। यदि किसी अंग पर मूर्छा दिखाई पड़े अथवा स्थूलता प्रकट हो, तो निराश न हों। देखते-देखते मूर्छा, घनीभूतता आदि का विखण्डन हो जाता है और वे टूटकर बिखर जायेंगी। बस क्या? धारा-प्रवाह की अनुभूति होने लगेगी।

साधको! आप लोगों को एक साथ दो कार्य करने हैं। पहला कार्य यह है कि बालकाल से लेकर आपके मन में जो पुराने संस्कार कुंडली मारकर बैठे हुए हैं, संवेदनाओं को देखकर एक ओर तो उन्हें निर्मूल करना है और दूसरी ओर नये संस्कार पनपने न पाये, इस हेतु उनका संवर करना है। उन पर रोक लगानी है। संवर लगाने से संगृहीत संस्कार उभरकर बाहर आकर स्वतः क्षय होते जायेंगे। पर तटस्थ रहकर समता कायम रखें। शरीर के ऊपर ही नहीं, अपितु अंतर्मन पर भी संवर लगाना है। ऐसा करने से अन्तर्मन की गहरी तह में जो मैल एकत्रित हैं, ऊपर आयेंगे और नष्ट हो जायेंगे।

साधको! ज्ञानेन्द्रियों पर लगाया गया संवर केवल 'स्व' का कल्याण नहीं करता अपितु मानवजाति का भी कल्याण करता है। मनोनिग्रह सर्वोत्तम है पर मन से भूलकर भी जबर्दस्ती नहीं करनी चाहिए। लगाम संयम की होनी चाहिए। अगर ध्यान से देखें तो यह सच्चाई विदित होती है कि मन का जो संवर है वह बाहरी नहीं बल्कि अन्तर्मन की गहराइयों का संवर है। मनुष्य के भीतर संवेदनाओं का जो प्रदुर्भाव होता है उनका अनुभव अचेतन मन ही नहीं करता है। अपितु अर्द्ध अचेतन मन भी करता है। इसीलिए शरीर के अन्दर प्रतिक्रिया चलती रहती है। भले-बुरे का विवेक भीतरी इन्द्रियाँ करती हैं। चित्तधारा पर जो राग-द्वेष की उत्पत्ति होती है, उसका मूल कारण अन्दर की प्रतिक्रिया है। इस हलचल से चेतन मन अनभिज्ञ रहता है। भला वह इस पर रोक (संवर) कैसे लगायेगा? पर निराश होने की आवश्यकता नहीं है। अभ्यास में अमोघ-पाश है। यदि हम अभ्यास के नैरन्तर्य बनाये हुए समता में रहेंगे तो मन की तीनों अवस्थाओं (अचेतन, अर्द्धचेतन और चेतन) के बीच दीवारें स्वतः धराशायी हो जायेंगी।

साधको! शरीर एवं मन दोनों को आहार की बहुत बड़ी आवश्यकता होती है। शरीर का आहार है—खाद्य सामान और चित्तधारा (मन) का आहार संस्कार। संस्कार पुराना भी होता है और नया भी। जब इन दोनों में से कोई भी आहार मिलता है तो संस्कारों का पालन-पोषण होता है। चित्तधारा को आहार देना हम बन्द नहीं करते। उदाहरणतः किसी ने शत्रुतावश हमारा नुकसान कर दिया। हानि देखकर शत्रु पर हमारा क्रोध तमतमा उठा। इसका प्रभाव शत्रु के ऊपर पड़ने

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

के पहले हमारे ऊपर पड़ेगा। हम उद्विग्न हो जायेंगे। चित्तधारा डगमगाने लगेगी। अतः क्रोधाग्नि से बचने के लिए हमें अपने चित्त पर शान्ति, सहनशीलता की लगाम लगानी पड़ेगी। यदि हम उत्पन्न होते ही क्रोध पर संवर लगा दें तो क्रोध का संस्कार नहीं बनेगा। इससे अपनी भी भलाई है और जग की भी भलाई है।

अभ्यास के दौरान हम अन्तर्मन की गहराई में जो कुछ हो रहा है, अनुभूति के स्तर उसका साक्षात्कार कर रहे हैं। हम समता में स्थित रहने का सतर्कता के साथ प्रयास कर रहे हैं। समता केवल ऊपरी स्तर तक ही सीमित न हो। सूक्ष्मता को जानने की प्रक्रिया में समता बनी रहनी चाहिए। अभ्यास सफलता की कुंजी है। अभ्यास करते-करते जब मन चेतन हो जायेगा तो भी मन में समता बनी रहनी चाहिए।

जनसाधारण के भूतवादी विचार-विश्वास क्या है? उत्थान-पतन, सफलता-असफलता, लाभ-हानि, दुःख-सुख, उतार-चढ़ाव, यश-अपयश, जय-पराजय जीवन की इन सारी अवस्थाओं को भूतवादी (भौतिकवादी) विचार-विश्वास की संज्ञा दी गई है। इन अवस्थाओं का स्पर्श हर मनुष्य को कम या अधिक होता रहता है। पर, हम सामान्य मनुष्य नहीं अपितु साधक हैं। अतः इन अवस्थाओं के घटित होने पर हमें अपने चित्त को दृढ़ एवं अचल रखना है। अगर हमारा चित्त विचलित न होकर समता में बना रहेगा तो वह शोकाकुल नहीं होगा। हर अवस्था में अशोक रहेगा।

अपने मन में यह गाँठ बाँध लेनी चाहिए कि किसी भी अवस्था में समता की स्थित न टूटे। क्योंकि समता के भंग होने पर चित्तधारा विषम हो जायेगी।

संस्कार डालने का और उसे विनष्ट का कार्य पराये से नहीं करवाया जाता है। यह कार्य तो स्वतः करना है। जो बीत गई सो बात गई। व्यर्थ में उस पर क्या सोचें? हमें न तो अतीत को महत्त्व देना है और न ही भविष्य को। विचार करना है तो केवल वर्तमान क्षण पर। अतः इस पल जो साधना की जा रही है, उसमें हमें यह देखना है कि हमारा मन सतर्क, सजग, सावधान है कि नहीं। कर्म-फल का सदैव ध्यान रखना चाहिए। बीजारोपण जैसे होगा, फल भी वैसा ही मिलेगा। राग-द्वेष और मोह का जो पुराना नशा चढ़ गया है, उसे तोड़ना है। नशा टूटेगा तो स्वभाव भी परिवर्तित हो जायेगा पर यह कार्य बड़ा ही दुरूह है। निराश न हो। आप मौन धारण कर, समता में स्थिर रहकर शील का पालन करते हुए, साधना-विधि का पालन हुए करते समाधि लगाए हुए हैं, उससे प्रज्ञा अवश्य प्राप्त होगी।"[1]

1. आत्मदर्शन, आचार्य गोयनका, पृ. 140-147

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

बुद्धवार, साधना का नौवाँ दिवस

साधना के नौवें दिन का उदय होने वाला था। साधक प्रातः साढ़े चार बजे से लेकर साढ़े छः बजे तक अभ्यास करते रहे। उसके बाद जैसे ही घंटा बजा, भोजनालय में जाकर....जलपान किए। नहा-धोकर आठ बजे प्रातः से लेकर ग्यारह बजे तक पुनः साधनारत रहे। ग्यारह बजे पौष्टिक एवं सात्विक भोजन कर विश्राम किए। दो बजे से लेकर पाँच बजे तक पूर्ववत् साधना करते रहे। पाँच बजे अल्पाहार किए और सायंकालीन परिभ्रमण कर साधना में बैठे। सात बजे पाँच मिनट का विश्राम लेकर प्रवचन सुनने के लिए साधना-कक्ष में आकर अपना आसन ग्रहण किए।

सवा सात बजे बुद्ध भगवान का भाषण प्रारम्भ हुआ। वे बोले, "साधको! समाधि आत्म-निरीक्षण का सर्वोत्तम साधन है। आप लोगों की काया के अन्दर और बाहर वर्तमान पल में जो सच्चाई प्रकट हो रही है, उसे आप कैसे देख रहे हैं? समता में रहकर साक्षी भाव से। आनन्द देने वाली सच्चाई प्रिय लगती है पर दुखदायी सच्चाई अप्रिय लगती है। जिस प्रकार आप प्रिय सच्चाई को स्वीकारते हैं उसी प्रकार अप्रिय सच्चाई को अंगीकार करना चाहिए। क्योंकि अपनी कमियों, दोषों और बुराइयों को देखने और स्वीकार करने से उन्हें बाहर निकालने में सुविधा होगी।

विपश्यना का जो एकाग्रता के साथ अभ्यास कर रहे हैं, उस अभ्यास में स्वयं को देख रहे हैं। आपका चित्त इस समय रागरंजित, द्वेषयुक्त एवं मोहाक्रान्त है, उसे देखना है। विकार क्यों उत्पन्न हो रहे हैं? उनके कारणों का अनुसंधान भी करना है और उन्हें अच्छी तरह पहचानना है। आपको राग, द्वेष और मोह से तभी मुक्ति मिलेगी जब उनके उत्पन्न होने के कारणों से भलीभाँति परिचित हो ज़ायेंगे।

जीवन में जो दुख है तो उसका कोई न कोई कारण अवश्य है और दुःख को दूर करने का मार्ग भी है। जैसे ही आपके मन में यह सुविचार उत्पन्न होगा, वह आशान्वित हो जायेगा और यह आशा आपके मन को मुक्ति-मार्ग ढूढ़ने और उस पर चलने की प्रेरणा देगी। अभ्यास करते-करते आपको यह आभास होने लगेगा कि 'चित्तधारा पर कई वर्षों से जो मल जमा हुआ था, वह स्वतः विदीर्ण होता जा रहा है। आप प्रज्ञा जगाने का कार्य कर रहे हैं पर इस कार्य में सफलता आपको तभी मिलेगी जब अन्तर्मुखी होकर संगृहीत मैल को पूर्णतः चित्त से बाहर कर देंगे। इस अवस्था में पहुँचने पर आपको यह ज्ञान हो जायेगा कि संसार में कुछ भी नित्य और शाश्वत नहीं है, सब कुछ क्षणभंगुर और नश्वर है। यही प्रज्ञा है।

प्रज्ञा का अर्थ है—नाना प्रकार से जानना। प्रज्ञा तक पहुँचने के लिए एकांत दृष्टि से काम नहीं चलेगा, उसे तो अनेकांत दृष्टि से देखना पड़ेगा। यदि किसी

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

बात को भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण से देख रहे हैं तो आपको उसका सम्पूर्ण ज्ञान होने लगेगा। जब सच्चाई को अच्छी तरह समझ लेंगे तो उसे दूर करने में आसानी होगी। हमारे भीतर जो संवेदनाएँ प्रकट हो रही हैं, उन्हें जब हम देखते हैं तो एक नयी दृष्टि मिलती है। यह भीतर की दृष्टि है। इसी ज्ञान-चक्षु से अपने आभ्यान्तर को देखना प्रज्ञा है।

मनुष्य को जो सुख-दुःख होता है, उसका उत्तरदायित्व दूसरे पर नहीं अपितु स्वयं अपने पर है। ध्यान केन्द्रित करके देखिए कि दुःख कहाँ पैदा होता है? उसका श्रीगणेश कैसे होता है? कैसे उसकी वृद्धि होती है। जब अंग-प्रत्यंग में उत्पन्न होने वाली संवेदनाओं को देखते-देखते भीतर की सारी सच्चाई को भलीभाँति जान लेंगे तब साधना पुष्ट होकर मंगलमयी बन जायेगी।

साधको! मन में व्याकुलता क्यों उत्पन्न होती है? जब चित्त विकारों से अस्वाभाविक हो जाता है तो वह व्याकुल हो जाता है। जब शोक होता है तो उसके कारण दुःख उत्पन्न हो जाता है और मनुष्य बेचैन हो जाता है।

अन्तर्मन की गहराइयों को देखने से विदित होता है कि भीतर ही भीतर ग्रंथियों का सारा ताना-बाना अचेतन एवं अर्धचेतन मन करता है। जब विकार अन्तर्मन पर गहराता है तो वह एक गाँठ पर दूसरी गाँठ बँधती जाती है। अन्तर्मन का निरीक्षण करते-करते शरीर-स्कंधों तथा चित्त स्कंध का सम्यक दर्शन हो जाता है। इनकी सीमा को पार करके हम उस अवस्था को देख लेते हैं जहाँ शाश्वत का दर्शन होता है। अपनी अनुभूति द्वारा हम परम सत्य का दर्शन कर प्रकृति के रहस्य को भलीभाँति समझ जाते हैं।

भय आए तो भय को देखें। क्रोध आये तो क्रोध को देखें। दर्द हो रहा हो तो दर्द को देखें। बार-बार निरीक्षण करने से चित्तधारा पर आसन्न विकार क्षयीभूत हो जायेंगे। उस समय यह अनुभव होने लगता है कि जो उदय हुआ, क्षय हो गया। एकदम शमन हो गया। फिर मिला क्या? आनन्द। सुख।

साधको! किसी विकार का दर्शन तभी हो सकता है जब उसके आलम्बन को काट दिया जाये। विकार तो क्रोध और वासना से उत्पन्न होता है। उसे देखें तो कैसे देखें? जैसे ही यह कुंजी हाथ में आई वैसे ही अमूर्त विकारों को अनुभूति द्वारा जान लेंगे।

शरीरधारा और चित्तधारा दोनों एक हैं। नाम-रूप की धारा और जीवन की धारा साथ-साथ चलती हैं। अतः एक का दूसरे पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। जहाँ चित्त में विकार जागा, वहाँ शरीर में वेदना उत्पन्न हुई। विकार के कारण शरीर में जो कुछ हो रहा है, उसे एकाग्रचित्त से देखना चाहिए। साँस देखते-देखते

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

संवेदनाओं को देखने का कार्य हम लोगों ने आरम्भ किया। उत्पन्न विकारों के दर्शन का कार्य स्वतः शुरू हो गया।

अन्तर्मुखी होकर विकारों को देखने का कार्य प्रारम्भ करके हमने जीवन-जीने के मार्ग की खोज कर ली। हमें यह परिज्ञान हो गया कि बाहर के प्राणियों, वस्तुओं और घटनाओं से हमारे दुःख के कारण का कोई संबंध नहीं है। कारण है तो हमारे भीतर है, उसे दूर करना है। यदि कोई व्यक्ति किसी के प्रति उदण्डता करता है तो हमें यह समझना चाहिए कि वह व्यक्ति अन्दर से कहीं न कहीं घायल है। यह परिज्ञान होते ही उसके प्रति क्रोध नहीं उत्पन्न होगा। उसके प्रति मैत्री जागेगी। करुणा जागेगी। दोष मनुष्य का नहीं अपितु परिस्थितियों का है।"[1]

गुरुवार, साधना का दसवाँ दिवस

साठों साधक दसवें दिन प्रातः साढ़े चार बजे से लेकर रात सात बजे तक अपनी-अपनी काया के भीतर नैसर्गिक तरंगों की जाँच-पड़ताल में लगे रहे। उनका मूल उद्देश्य था—तरंगों को खोजना और उनकी प्रतिपल की गतिविधियों को जानना। शील, समाधि से प्रज्ञा तक पहुँचना था। समाधि द्वारा उन्हें चित्तैकाग्रता में महती सफलता मिली। पर उनका अंतिम लक्ष्य तो अमृतत्व प्राप्त करना था। चित्त को सम्यक समाधि में ले जाना था। अर्हतपद में प्रतिष्ठा के लिए शमथ की भावना के बाद विपश्यना की वृद्धि करना आवश्यक है। सम्यक समाधि प्राप्त होते ही उनकी चित्तधारा राग, द्वेष और मोह से विमुक्त हो गई।

उन्हें विकारों पर संवर लगाना आ गया। वे अपनी संवेदनाओं के प्रति राग और द्वेष से विमुक्त हो गए। उन्हें पूर्ण रूप से यह एहसास हो गया कि वेदना के साथ जो तृष्णा की उत्पत्ति होती थी, उसका उपशमन हो गया। उनकी प्रज्ञा जाग गई। तृष्णा जो सारे दुःखों की जननी है, उसका अन्त हो गया। उन्हें अनात्म बोध हुआ। अतः उनके चित्त में जो 'मैं', 'मेरा', 'तू', 'तेरा' का समाहित भाव तिरोहित हो उठा। अहंकार का प्रहाण हो गया। उनके अन्दर की 'अहं' और 'हीन' ग्रंथियाँ काफूर हो गईं। विपश्यना का अभ्यास करते-करते जब वे सम्यक समाधि में पहुँचे तब उनकी प्रज्ञा जाग गई। 'अति सर्वत्र वर्जयेत' विचार-धारा के अनुगमन से उन्हें सच्चाई सहज रूप से ज्ञात हो गई। अति भोग और अति शारीरिक प्रताड़ना का मार्ग त्याग कर वे मध्यम मार्ग के अनुगामी बन गये।

निश्चित समय पर वे जलपान, भोजन, अल्पाहार तथा लघु और लम्बा विश्राम लेते रहे।

1. आत्मदर्शन आचार्य गोयनका, पृ. 149-157

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

रात सवा सात बजे का समय प्रश्न और उत्तर का काल था। तपोभवन में आसनासीन साधकों को संबोधित करते हुए भगवान बुद्ध बोले, "भिक्षुओ! अब आप लोगों का मौनव्रत समाप्त हो गया। आपकी साधना पूरी हो गई। अब आप लोगों की प्रज्ञा जाग गई। अब परिचर्चा होगी।"

भगवान बुद्ध ने सर्वप्रथम कौंडिन्य से प्रश्न किया, "अर्हत! अब तो शास्ता हो गये हो। सच्चा धर्म कैसा लग रहा है?"

"भगवान! आप द्वारा पुनजीर्वित धर्म अति कल्याणकारी और शान्ति-प्रदाता है।"

भगवान बोले, "आयुष्मान कौंडिन्य। कोई शंका हो तो प्रकट करें?"

"भन्ते! अब मैं सम्यक बुद्ध हो गया हूँ।"

बारी-बारी से भगवान ने सभी भिक्षुओं से प्रश्न किया। सभी लोगों ने उनके प्रश्नों का सारगर्भित उत्तर दिया।

आश्वस्त होकर भगवान बोले, "भिक्षुओ। साधना-काल समाप्त हो गया। मौन व्रत भी टूट गया। अब हम सब मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा—इन चारों ब्रह्मविहारों का पालन करेंगे।"[1]

ग्यारहवें दिन प्रातः साढ़े छः बजे ने सुखदेव, राजदेव, शान्तिराम और ग्रामीणों ने भगवान और साधकों को खीर, कचौड़ी और कटहल की सब्जी खिलाई। सुस्वाद एवं सात्विक आहार पाकर भिक्षुओं की रसना तृप्त हो गई।

जब सभी लोग हाथ मुँह धोकर शान्तिपूर्वक आसन ग्रहण कर लिये तब भगवान ने कृतज्ञता प्रकट करते ग्रामवासियों से कहा, "श्रद्धालुओ! आपकी सेवा से हम ही नहीं अपितु सारी प्रकृति लहलहा उठी। आप लोगों के मंगल की मैं कामना करता हूँ। आपका सौजन्य, त्याग, सहानुभूति और औदार्य भारतीय संस्कृति का सच्चा प्रतीक है।"

गद्‌गद होकर श्रोताओं ने साधु, साधु, साधु का उच्चारण किया।

पलभर शान्त रहने के बाद बुद्ध ने सुखदेव से कहा, "आप, राजदेव, शान्तिराम तथा समस्त ग्रामवासी भारतमाता की शान हैं। मंडप गिराकर आप लोग अपना-अपना सामान वापस ले जायें।"

हाथ जोड़कर सुखदेव बोला, "भन्ते! मृगदाव अब शुद्ध धर्म का जन्म स्थान बन गया है। भविष्य में यहाँ पर स्तूप, विहार, प्रार्थनागृह तथा शून्यागार वनेंगे। बनेंगे तो बनेंगे तब तक यह तपोभवन भिक्षुओं के साधना-केन्द्र का काम करता रहेगा। हर दूसरे या तीसरे वर्ष हम तीनों मिलकर इसकी मरम्मत करवाते रहेंगे।"

1. आत्मदर्शन, आचार्य सत्यनारायण गोयनका, पृ. 159-165

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

भगवान बोले, "धन्य हो त्रिमूर्तियो! स्तूप और विहार बनवाना साधारण लोगों की सामर्थ्य के बाहर है। सामूहिक एवं बड़ा निर्माण-कार्य पृथ्वी पतियों एवं श्रेष्ठियों की कृपा पर निर्भर है।"

शान्तिराम बोला, "सारे गुण मुद्रा पर आश्रित हैं। धर्म प्रचार और पूजास्थल के निर्माण में धन्नासेठों का निहित-स्वार्थ है।"

"शान्तिराम जी! हमारा धर्म मध्यमार्गी है। हम सबकी समुन्नति से प्रसन्न होते हैं। ईर्ष्या और द्वेष से दूर रहने के लिये मुदिता-भावना करते हैं।"

ग्यारह बजे सभा विसर्जित हुई। ग्रामवासी। भगवान की प्रदक्षिणा कर अपने घर चले गये।

वर्षा-काल समाप्त होने वाला था पर तब तक के लिए ऋषिपत्तन मृगदाव के पासवर्ती गाँव के लोग उन्हें निमंत्रण देकर भोजन देते रहे और बदले में धर्मोदेश सुनते थे।

वर्षा समापन की शाम प्रवारण (पवारणा) उत्सव मनाया गया।

शरत् ऋतु का आगमन

वर्षा-काल समाप्त हो गया। सुहावनी शरत् ऋतु के आगमन से चर-अचर सभी प्राणी अह्लादित हो गए। राजा, तपस्वी एवं व्यापारी अन्यान्य दिशाओं की ओर प्रस्थान करने लगे। हाथियों की चिंघाड़, घोड़ों के हिनहिनाहट और बैलगाड़ियों के चक्कों की चरमराहट सुनकर भगवान ने एक आदिवासी महिला से पूछा, "सुमुखी! यह कैसी हलचल है?"

"भन्ते! शरत् ऋतु आ गई है। राजा और श्रेष्ठी गण धनोपार्जन के लिए परदेश यात्रा पर निकल पड़े हैं। राजा किसी राजा को पराजित कर उसके राज्य को हड़पेगा, व्यापार गरीबों का खून चूसेगा और तपस्वी सुदूर जंगल में जाकर नये आश्रम की प्रतिष्ठा करेगा।"

भगवान चौकन्ने हो गए और धर्म-चक्र घुमाने की योजना बनाने लगे।

अकेला चलो रे?

आश्विन मास था। चन्द्रमा आश्विनी नक्षत्र के सन्निटक था। शरत् पूर्णिमा की स्वच्छ एवं धवल चाँदनी का लुत्फ लेने के लिये श्रद्धालु गृहस्थ वरुणा एवं गंगातट पर रात बिता रहे थे। भक्त गण स्नान कर रहे थे।

भगवान बुद्ध ने साठों अर्हतों को एकत्र कर संबोधित किया। बोले, "भिक्षुओ! आप सभी सुधर्म से विज्ञ हैं। प्रज्ञा प्राप्त हैं। विपश्यना की साधना-प्रक्रिया में दक्ष हैं।"

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

हमारा सुधर्म आत्मकेन्द्रित नहीं है। यह परमार्थ से आप्लावित है। जो मनुष्य प्राप्त ज्ञान को अपने तक ही सीमित रखता है, वह अधम है। नरकगामी है। मनुष्य नहीं, पशु है।

धर्म-प्रचार का क्षेत्र व्यापक है क्योंकि जहाँ देखो वहाँ दुखियारे-दुखियारे मिलेंगे। लोक-कल्याण, जनता को सुख प्रदान करने के लिए, दुखग्रस्त प्राणियों के दुःख निवारण के लिए, देवताओं और मानवों के प्रयोजन को पूरा करने के लिये; सबके हित और सुख के लिये जो कार्य किया जाता है, वह सद्धर्म है। अतः ऋषिपत्तन मृगदाव के परिसर के बाहर जाओ।

ध्यान रहे। हमारी संख्या इकसठ है और शौक-संतप्त मानवों की संख्या करोड़ से ऊपर है। अतः 'अकेला चलो रे' नीति का अनुसरण करते हुए एक-एक गाँव में अकेले जाओ। लोगों को समझाओ कि यह शुद्ध धर्म है। यह केवल आदि और मध्य में ही कल्याणकारी नहीं है बल्कि अन्त में भी कल्याणकारी है। जो इस धर्म का अनुसरण करेगा, वह सुख से पार्थिव शरीर का त्याग करेगा। सरल शब्दों में उपदेश दो जिससे तुम्हारी अभिव्यक्ति सबकी समझ में सुगमता से आ जाये। कठिन शब्दों के अर्थ से भी श्रोताओं को अवगत करा दो। लोगों को ब्रह्मचर्य-पालन का महत्व भी समझाना है। समाज में कुछ ऐसे भी मनुष्य हैं जिनमें अपेक्षाकृत दोष बहुत कम हैं। यदि वे धर्म को सुनेंगे तो उनका एवं संसार का बड़ा कल्याण होगा। शीघ्र प्रस्थान करो। चरैवेति चरैवेति, चरैवेति का सिद्धान्त अपनाओ।

"भिक्षुओ! मैं भी पूर्व-दिशा में प्रस्थान करने वाला हूँ। उरुवेला में सेनानी नाम का एक गाँव है। वहाँ के लोगों तथा तपस्वियों को सुधर्म के गुणों और लाभों से अवगत कराऊँगा।"

बस क्या? आदेश की देरी थी। आदेश मिल गया। भिक्षु भिन्न-भिन्न दिशाओं में उपदेश देने के लिए छिटक गए।

भद्रवर्गीय कथा

बौद्ध-काल में वाराणसी व्यापार, शिक्षा तथा वैदिक संस्कृति का प्रमुख केन्द्र था। वहाँ तीस भद्रवर्गीय नवयुवक थे। रसिया थे रसिया। कामोन्मत्त थे। सुरा और सुन्दरियों से उन्हें अगाध प्रेम था। नगर में रहकर सामाजिक मर्यादा, नियम तथा रीति-रिवाज का पालन आवश्यक था। अतः वे स्वच्छन्द रूप से रतिक्रिया का आनन्द नहीं ले सकते थे। एक दिन पत्नियों सहित एकत्र होकर काम-प्रवृत्ति की शान्ति के लिए आपस में विचार-विमर्श किये। एक स्वर से निर्णय हुआ कि किसी वनस्थली में चलकर सरोवर में रति कलह करें। पशुओं की तरह निर्वस्त्र होकर

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

रतिक्रिया का लुत्फ लें। सभी ने एकमत से स्वीकृति प्रदान कर दी। उनमें से एक पुरुष की पत्नी नहीं थी। दो तीन नवजवान जो यौन विज्ञान-विशारद एवं नारी-सौन्दर्य के पारखी थे, गणिका-नगर चले गए। वहाँ एक मनोहर नगर-वधू गिल गई। नाम था गोपपल्ली। उसके पास जाकर युवक बोले, "बाई जी! क्या आप मेरे मित्र की संगिनी बनकर वन-विहार कर सकती हैं?"

"महाशय जी! उसी के लिए निर्दयी नियति ने मुझे इस घिनौने पेशे में ढकेल दिया है। कितना बेरहम है समाज, धिक्कार है श्रेष्ठी वर्ग और पृथ्वीपतियों को।"

"बाई जी! कितने आभूषण और मुद्रा की आप अपेक्षा करती हैं?"

"हीरा-पन्ना जड़ित अंगूठी, कंगन, कर्णफूल, बेसर और बनारसी साड़ियाँ।"

"बाई जी! सर्राफा बाजार चलें। आपका मनचाहा समान खरीद दें।"

गोपपल्ली आगे-आगे और भद्रवर्गीय युवक पीछे-पीछे। बाई की इच्छा पूरी हुई।

सायंकाल होते ही कलाराशि घोड़े रथ में जुत गये। आनन-फानन में सब वनस्थली में पहुँच गये। चाँदनी रात थी। सारी प्रकृति बर्फ के समान सफेद साड़ी पहने इठला रही थी। नगर से कामी लोग नायाब मदिरा लाए थे। जमकर सुरापान किए। थोड़ी देर में मदोन्मत हो गए। अपने-अपने वस्त्र उतारकर नंग-धड़ंग रति-क्रीड़ा में तल्लीन हो गए। आदिवासी उनकी बेशर्मी को देखकर दाँतों तले उँगली दबा लिये।

जब थककर चूर हो गए तो गहरी नींद में निमग्न हो गए तो गोपपल्ली अन्य औरतों के आभूषणों को लेकर भाग निकली। थोड़ी दूर पर एक पारदर्शी जलयुक्त सरोवर मिला। उसके किनारे एक विशाल पीपल का वृक्ष था जिसकी सघन छाया तले एक शिला पर एक अजानुबाहु, विशाल नेत्रों तथा बड़े-बड़े कानों वाला महापुरुष बैठा था। अजीव गुरुत्वाकषर्ण था उनमें। उनके पास जाकर प्रदक्षिणी कर सामने खड़ी हो गई। सिर झुकाकर बोली, "भगवान! क्या आप मुझे अपनी दासी बनाकर सेवा करने का अवसर दे सकते हैं?"

"अभी नहीं पर....।"

"भगवान! क्या आप मेरी दर्दभरी कहानी सुन सकते हैं?"

"अवश्य।"

"भगवान! मैं स्वतः नरकीय जीवन में नहीं पड़ी हूँ।"

"ज्ञात है। तुम एक-एक गणाधिपति की दुहिता हो। दस्युओं ने तुम्हारा अपहरण करके वाराणसी में राधिकाबाई के हाथों बेच दिया।"

"भगवान! अद्‌भुत है। आप मेरे अतीत को कैसे जानते हैं?"

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

"महामाया! मुझे दिव्य-चक्षु जो मिला है।"

"भगवान! मेरा उद्धार कैसे होगा?"

"तुम सारा सामान लेकर वैशाली चली जाओ। रास्ते में तुम्हारा कोई बाल बाँका नहीं कर सकता। वह भारत का बड़ा नगर है। वहाँ आम्रपाली नाम से लोगों को गांधर्व-वेद का ज्ञान कराना।"

मन मसोसकर वह वैशाली चली गई। नाम घोषित किया आम्रपाली। बन गई नगर-वधू।

भद्रवर्गीय नारी-पुरुष जब होश में आये तो वहाँ गोपपल्ली नदारद। तुरन्त सभी पुरुष सारे जंगल को छान मारे पर गोपपल्ली नहीं मिली। घूमते-घूमते वे उस वृक्ष के पास पहुँचे जहाँ भगवान बुद्ध पद्मासन लगाये बैठे थे।

हाथ जोड़कर बोले, "भन्ते! क्या आपने किसी नारी को भागते हुए देखा है?"

"नवयुवको! तुम मायारूपी स्त्री को खोजना चाहते हो या अपने को?"

भगवान की अमृतमयी वाणी सुनकर उन्हें आत्मबोध हो गया। वे बोले, "भन्ते! हम आत्मखोज करना चाहते हैं। हमें धर्म-उपदेश देकर प्रव्रज्या और उपसम्पदा प्रदान करें।"

भगवान बोले, "तथास्तु।"

उरुवेला

इधर-उधर विचरण करते हुए भगवान बुद्ध उरुवेला में उस स्थान पर पहुँचे जहाँ उरुवेल काश्यप, नदी काश्यप एवं गया काश्यप ने कठिन तपस्या के बल पर लोगों पर अच्छी धाक जमा रखी थी। बड़े ही आतिथ्य-सत्कार प्रिय थे उरुवेल काश्यप। खूब आव-भगत की उन्होंने भगवान बुद्ध की। भगवान के विशेष आग्रह पर उन्होंने रात में अग्निशाला में निवास करने का अवसर प्रदान किया। वहाँ नागराज आता था। यद्यपि वह तपस्या काल में पराजित होने के बाद भगवान का मित्र बन गया फिर भी वह अग्निशाला में आया। भगवान ने अपने तेज से नागराज के तेज एवं विष को विनष्ट कर उसके दाँत को विष-विहीन कर दिया।

उरुवेल काश्यप के आश्चर्य की सीमा न रही। उसे अपनी तपस्या पर नाज था। एक दिन वह भगवान से बोला, "महाश्रमण! निस्संदेह आप दिव्यशक्तिधारी हैं पर मेरे जैसे अर्हत नहीं हैं।"

भगवान को उस पर करुणा आ गई। उसकी अविद्या एवं दर्प को विच्छिन्न करने के लिए भगवान बोले, "काश्यप! तुम तो अभी तक अर्हत मार्ग पर आरूढ़

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

ही नहीं हुए हो। तुम्हारे अन्दर तो अभी तक अर्हत बनने की सूझ-बूझ भी नहीं उत्पन्न हुई है। फिर तुम कैसे अर्हत बन सकते हो?"

उरुवेल काश्यप का ज्ञान-चक्षु खुल गया। वह बोला, "भन्ते! मुझे प्रव्रज्या और उपसम्पदा दें।"

भगवान ने उसे धर्मोपदेश कर प्रव्रजित कर दिया। काश्यप के साथ पाँच सौ जटिल समर्थक थे। करुणा कर भगवान ने उन्हें भी प्रव्रज्या एवं उपसम्पदा दे दी।

नदी काश्यप एवं गया काश्यप भी पीछे नहीं रहे। उन्होंने भी भगवान से प्रव्रज्या एवं उपसम्पदा ग्रहण कर ली।

गया

उरुवेला में भिक्षु-संघ बन गया। इसमें एक सहस्र पुराने जटिल भिक्षु थे। कुछ दिन भगवान उरुवेला में विहार कर भिक्षुओं के साथ गयासीस (गया का ब्रह्मयोनि पर्वत) गये। वहाँ पर भिक्षुओं को अष्टांगिक मार्ग का विवेचन कर सांसारिक दुःखों और उनके कारणों से अवगत कराकर उनके चित्त को राग, द्वेष और मोह से विमुक्त करा दिया। उनके मन के सारे मल दूर हो गये। धर्म का उपदेश सुनकर उनकी प्रज्ञा जाग उठी।

देवदत्त की धृष्टता

भगवान बुद्ध जन्म से ही करुणा के सागर थे। बचपन में उन्होंने घायल हंस को देवदत्त के चंगुल से मुक्त कर जीवन-दान दिया था। तभी से उनके प्रति देवदत्त के मन में ईर्ष्या, द्वेष और प्रतिकार का भाव बोरसी की आग की तरह सुलग रहा था। वह हर तरह से भगवान बुद्ध से बदला लेना चाहता था। कामुक तो बचपन से ही था। रत्यात्मक प्रवृत्ति को शान्त करने के लिए वह वैशाली में आया-जाया करता था। उसे गाणिका-साहचर्य का शौक चर्राया, बस क्या? घोड़े को दौड़ा दिया वैशाली की ओर। वहाँ गोपपल्ली जो आम्रपाली के नाम से सुव्याख्यात थी से पता चला कि भगवान बुद्ध काश्यप बन्धुओं से मिलने उरुवेला जायेंगे। वह फूला न समाया। उसकी रत्यात्मक प्रवृत्ति ने उसे यशोधरा-सान्निध्य के लिए प्रेरित किया। आनन-फानन में वह सैंधव अश्व की पीठ पर सवार हुआ और मोड़ दिया उसे क़पिलवस्तु की ओर।

पहर रात बीत गई थी। यशोधरा इस वेला में शयन के लिए उद्यत हो रही थी। देवदत्त शैतान ही नहीं अपितु बहुरुपिया भी था। झट से बदल लिया चोला। बन गया श्रमण भिक्षु। शर्मो-हया बेचकर यशोधरा के सन्निकट खड़ा हो गया। एक

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

भिक्षु को देखकर वह सतर्क हो गई। जितनी विवेकवान थी, उतनी करुणाशील भी। भिक्षु की ओर मुखातिब होकर बोली, "श्रमण! बिना अनुमति के तुम मेरे शयनकक्ष में क्यों प्रविष्ट हुए? क्या उरुवेला से आ रहे हो? तथागत का क्या संदेश लाए हो?"

"नहीं। यशोधरा! वह तुम्हारे हृदय का नासूर है। उसे निकाल फेंको। वह महापुरुष नहीं, पुरुप जाति का कलंक है। कितना कठोर है उसका हृदय! तुम्हारी तो कभी बात ही नहीं छेड़ता।"

"देवदत्त! यह तो सूर्यवंश की परम्परा और रीति है। प्रजावत्सल राम ने लोककल्याण के लिये गर्भवती सीता को वाल्मीकि के आश्रम भिजवा दिया और सिद्धार्थ गौतम ने विश्व-कल्याण के हेतु पुत्र और पत्नी को त्याग दिया। गलती किये हैं तो क्षमायाचना भी करेंगे।"

यशोधरा की बात सुनकर कामांध देवदत्त की जबान लड़खड़ाने लगी। हाथ जोड़कर बोला, "यशोधरा! सिद्धार्थ ने तुम्हारा ही नहीं अपितु नारी जाति का अपमान किया है। प्रतिकार के लिए तत्पर हो जाओ? ईंट का जवाब पत्थर से दो।"

"नीच देवदत्त! तुम्हारे इस कथन का क्या आशय है?"

"यशोधरा! मेरा समर्पण स्वीकार करो। अनुग्रह कर संसर्ग का अवसर प्रदान कर दोनों को आप्यायित होने दो।"

इधर उसकी जबान से कामुकता प्रकट हुई, उधर भय और आतुरता से उसका शरीर थर-थर काँपने लगा। उसका आडम्बर उजागर हो गया। चीवर धराशायी हो गया। असली चेहरा निरखकर यशोधरा आवाक् हो गई। घायल नागिन की तरह फुफकार कर बोली, "अधम, पापी, नारकीय कुत्ते! तो तुम भिक्षु नहीं, देवदत्त हो। शीघ्र कमरे से बाहर निकल। नहीं तो तुम्हें अपने पातिव्रत्य तेज से उसी प्रकार भस्म कर दूँगी, जैसे शिव ने मन्मथ को अपने तीसरे नेत्र से भस्म कर दिया।"

कामी पुरुष को न तो भय होता है न ही लज्जा। देवदत्त अपना-सा मुँह लेकर वहाँ से नौ दो ग्यारह हो गया।

गया से राजगृह

गयासीस में कुछ समय तक विहार करने के बाद भगवान बुद्ध को उस प्रतिज्ञा की याद आई जो उन्होंने मगध नरेश श्रेणिक बिम्बसार से की थी। बस क्या? एक हजार जटिल भिक्षुओं के संघ को साथ लिए और राजगृह की ओर चल पड़े।

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

चारिका करते-करते राजगृह के लट्ठि (=यट्ठि) वन के चौरे (चैत्य) पर पहुँचे। प्रकृति का रम्य एवं शान्त परिवेश उन्हें भा गया। वह वहीं पर विहार करने लगे।

मगध नरेश का माली वहाँ फूल लोढ़ने गया था। भगवान का दिव्य दर्शन कर उसके दिव्य चक्षु उन्मीलित हो गये। फूल लोढ़कर टोकरी में भरकर वह मगध नरेश श्रेणिक बिम्बिसार के राजमहल में गया। महाराज को प्रणाम कर वह एक ओर खड़ा हो गया। उसके उत्फुल्ल चेहरे को देखकर बिम्बिसार ने पूछा, "माली! तुम आज बहुत प्रसन्न दिख रहे हो। क्या कारण है?"

"महाराज! शाक्य कुल शिरोमणि शाक्य पुत्र श्रमण गौतम परिब्राजक रूप में यट्ठिवन के चैत्य में एक हजार जटिल भिक्षुओं के साथ ठहरे हुए हैं।"

शुभ समाचार सुनकर मगध नरेश बिम्बिसार की बाछें खिल गईं। राजा तो था ही। बारह लाख ब्राह्मणों और गृहपतियों को साथ लेकर भगवान बुद्ध के पास पहुँच गया। सभी लोग भगवान को प्रणाम किए और परिक्रमा कर एक किनारे बैठ गए।

बिम्बिसार ने कहा, "भगवान! आप बात के पक्के हैं। श्रमण गौतम के रूप में आपने जो वचन दिया था, उसे पूरा कर दिया।"

भगवान बोले, "महाराज! आपका तथा आपके राज्य का मंगल हो।" इसके बाद भगवान ने धर्म-देशना दी। फिर श्रोताओं से कहने लगे, "मगध वासियो! संसार में जो कुछ उत्पन्न होने वाला है, नश्वर है।"

महाराज बिम्बिसार और उनके साथियों को अनित्यबोध हो गया। अब वे प्रव्रजित होने के लिए ललक उठे। भगवान से बोले, "भन्ते! हम लोगों को प्रव्रज्या और उपसम्पदा मिले।"

भगवान ने कहा, "मगधवासियो! यह धर्म सुव्याख्यात है। ब्रह्मचर्य और पंचशील का पालन करो। मैत्री, करुणा, मुदिता एवं उपेक्षा चारों ब्रह्मविहारों का पालन करो।"

भगवान के उपदेश से सभी मगधवासियों को निर्मल-चक्षु उत्पन्न हुआ और वे भगवान के उपासक बन गए।

वेणुवन

गृहस्थ उपासक बनने के बाद मगध नरेश ने भिक्षु-संघ सहित भगवान को भोजन का न्यौता दिया। भगवान ने चुपचाप हामी भर दी। प्रातःकाल से भोजन बनाने की प्रक्रिया प्रारम्भ हो गई। भोजन तैयार होने पर भगवान को सूचना दी गई। भगवान भिक्षुओं के साथ हाथ-पैर धोकर ऊपर गए और आसन ग्रहण कर भोजन करने

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

लगे। राजा स्वयं भोजन परोस रहे थे। खा-पीकर भगवान हाथ मुँह साफ किए और आसन पर आकर बैठ गए। बिम्बिसार भी भगवान के सामने बैठ गया और हाथ जोड़कर बोला, "भगवान! मैं बिम्बिसार नरेश अपना वेणुवन उद्यान प्रमुख भिक्षु-संघ को दान देना चाहता हूँ।"

"राजन्! तुम्हारा दान स्वीकार है।" बिम्बिसार को उपदेश देने के बाद भगवान वहाँ से उठकर चले गये। उसके बाद भिक्षु संघ को संबोधित करते हुए, बोले, "भिक्षुओ! मैं विहार....को स्वीकार करने की अनुमति देता हूँ।"

सुदत्त (अनाथपिंडक)

कौसल नरेश प्रसेनजित का श्रेष्ठी सुदत्त अनाथों को नित्यप्रति दान दिया करता था। अतः कौसलवासी उसे अनाथपिंडक कहने लगे। व्यापार के सम्बन्ध में वह राजगृह आया जाया करता था और अपने साले के यहाँ ठहरा करता था। जिस समय वह अपनी ससुराल पहुँचा उस समय उसका साला भिक्षु संघ और भगवान के लिए भोजन तैयार करवा रहा था। सभी राजगृहवासी भगवान बुद्ध के उपदेश को सुनने के लिए आतुर थे। सोते समय अनाथपिंडक को भगवान के दर्शन की उत्कट इच्छा उत्पन्न हुई।

सच्ची श्रद्धा, विवेकशील श्रद्धा बड़ी कल्याणकारी एवं अभीष्ट पूर्ति में सहायक होती है। भोर में ही वह शीतवन में पहुँच गया। नहा-धोकर भगवान उस समय पद्मासन लगाकर बैठे थे। भगवान बुद्ध अन्तर्यामी तो थे ही। अनाथ रक्षक आगन्तुक के शुद्ध भावों को जानने में उन्हें देरी न लगी।

बोले, "स्वागत है सुदत्त। पधारो।"

भगवान की प्रदक्षिणा करके अनाथपिंडक एक किनारे बैठ गया। हाथ जोड़कर भगवान से बोला, "भगवान! मुझे धर्म-कथा सुनावें?"

भगवान बोले, "तथास्तु।"

भगवान के मुँह से सुधर्म की कथा सुनकर उसका मन राग, द्वेष और मोह से विमुक्त हो गया। चित्त के जीवनभर के संगृहीत मैल विनष्ट हो गए। चित्त में अनित्य भाव जाग उठा।

समर्पित भाव से बोला, "भगवान। कल भिक्षु संघ सहित मेरे घर पर भोजन करने का अनुग्रह करें।"

दूसरे दिन भिक्षुओं सहित भगवान अनाथपिंडक के घर गए और सुस्वाद एवं सात्विक भोजन चखकर तृप्त हो गए। भोजनोपरान्त भगवान ने उपस्थित सज्जनों को धर्मामृत का पान कराया।

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

अन्त में अनाथपिंडक ने हाथ जोड़कर उनसे प्रार्थना की। बोला, "भगवान! भावी वर्षा काल में आप श्रावस्ती में विश्राम करें।"

"श्रद्धालु पिंडक! तुम्हारा आमंत्रण स्वीकार है। पर....।"

"भगवान! पर का क्या तात्पर्य है?"

"यही कि तथागत शून्यागार अर्थात् एकांतवास पसन्द करते हैं।"

"भगवान! समझ गया, समझ गया। सारी व्यवस्था हो जायेगी।"

अनाथपिंडक श्रावस्ती लौट आया। तलाशता रहा एकान्त स्थान। अचानक उसकी निगाह महानगर के सन्निकट राजकुमार के उद्यान पर पड़ी। भा गई वह जगह उसे। अविलम्ब वह राजकुमार के पास पहुँचा।

हाथ जोड़कर बोला, "महाराज! आपका भव्य उद्यान भगवान बुद्ध के विहार के लिए उपयुक्त है। अतः महत् धर्म-प्रचार के लिये वह उद्यान मुझे प्रदान कर दें?"

महाराज बोले, "अनाथपिंडक! उद्यान का मूल्य कोटि-संथर (करोड़ों का बिछावन) है।"

अनाथपिंडक बोला, "महाराज! स्वीकार है—मूल्य।"

गाड़ियों में भर-भर सोने के सिक्के आने लगे और उद्यान के वक्षस्थल पर बिछने लगे। जब आधे से अधिक भाग सोने के सिक्कों से जगमगाने लगा तो राजकुमार आश्चर्यचकित हो गया।

अनाथपिंडक का हाथ पकड़कर बोला, "गृहपति! स्वर्णमुद्रा बिछाना बन्द करो। बाकी भूमि मेरी ओर से दान ले लो।"

"कृपालु नरेश! यही एक राजा का धर्म है।"

श्रावस्ती राजकुमार के सौजन्य से अनाथपिंडक ने उद्यान को धर्मकेन्द्र एवं साधना-स्थल के रूप में परिणत कर दिया। बन गए भव्य विहार, स्तूप, शून्यागार, तपोभवन, विशाल जलाशय, विश्रामगृह, प्रसाधन एवं स्नानागार। भगवान वहाँ आये और वर्षावास किये।

प्रसेनजित की प्रव्रज्या

भगवान बुद्ध जैतवन में विहार कर रहे थे और नित्यप्रति लोगों को धर्मोपदेश द्वारा अमृतत्व की ओर उन्मुख कर रहे थे। जब राजा प्रसेनजित के कानों में यह बात पड़ी तो वह भगवान के दर्शन के लिए लालायित हो गया। राजा तो था ही, तुरन्त रथ पर आरूढ़ हो गया। सारथी ने रथ को जैतवन की ओर मोड़ दिया। आनन-फानन में रथ भगवान के विहार के पास पहुँच गया। राजा प्रसेनजित ने

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

हाथ जोड़कर भगवान को प्रणाम किया। भगवान राजा की उपस्थिति से प्रसन्न हो गए। बोले, "राजन्! आपके यहाँ आने का क्या उद्देश्य है?"

"भगवान! मैं आपके मुँह से धर्मोपदेश सुनना चाहता हूँ।"

"अच्छा! शान्त एवं एकाग्रचित्त से सुनें। राजन्! मनुष्य के शुभ और अशुभ कर्म परछाईं की तरह उसका पीछा करते रहते हैं।"

"भगवान! बड़ा ही प्रेरणादायक एवं परोपकारी है, आपका यह कथन।"

"राजन्! मैत्रीपूर्ण हृदय मनुष्यता का सर्वोपरि गुण है।"

"भगवान! राजा और प्रजा का क्या सम्बन्ध है?"

"राजन्! राजा अथवा गणाध्यक्ष को अमीर एवं गरीब जनता को पुत्र के समान समझना चाहिए। एक ओर तो उसे संयम एवं धैर्य के साथ सन्मार्ग पर चलना चाहिए और दूसरी ओर दीन-दुखियों का यथाशक्ति कल्याण करना चाहिए।"

"भगवान! शोक एवं दुःख हमारे समक्ष हिमालय के समान अड़े हुए हैं। उनसे कैसे निपटा जाये?"

"राजन्! सद्धर्म मार्ग पर चलकर आप शोक एवं दुःख के विशाल पहाड़ को पार कर सकते हैं।"

"भगवान! भवसागर को कैसे लाँघ सकते हैं?"

"राजन्! आध्यात्मिक विकास एवं विपश्यना का अभ्यास करके सन्मार्ग पर चलते-चलते प्रज्ञा-प्राप्त होगी। प्रज्ञा-प्राप्ति ही मानव-जीवन का श्रेय-प्रेय है।"

"भगवान! राजा होने के कारण मेरे पास अपार सम्पत्ति है। रत्यात्मक आनन्द के लिये हमारे अन्तःपुर में हजारों देश-विदेश की रमणियाँ हैं। लक्ष्मी, सुरा और कामिनी का उपभोग कैसे छोड़ूँ?"

"राजन्! इतिहास इस बात का साक्षी है कि सुरा एवं रमणियों के संसर्ग से पता नहीं, कितने सम्राट और उनके राज्य मिट्टी में विलीन हो गए। यद्यपि नारियों के मायाजाल से छुटकारा पाना कठिन काम है। पर आप चिन्ता न करें। मैं आपको प्रज्ञा की नाव एवं विचारणा का चप्पू दे रहा हूँ। यदि विपश्यना द्वारा इन दोनों में सिद्धि प्राप्त कर लें तो शील का पालन करते हुए मार को दृढ़ता के साथ कुचल डालेंगे।"

"भगवान! समझ गया। जन्म है, तो मृत्यु है। यौवन भी नश्वर है। रूप भी नश्वर है। बचपन, जवानी, बुढ़ापा और मृत्यु परिवर्तन-चक्र के ज्वलन्त उदाहरण हैं। अन्ततः चर-अचर सभी को काल निगल जायेगा।"

"राजन्! लगता है कि आपकी प्रज्ञा जाग गई। प्रेम से तीन बार बोलिए—बुद्धं शरणं गच्छामि, धम्म शरणं गच्छामि, सघं शरणं गच्छामि।"

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

महाराज प्रसेनचित्त बोल पड़े—बुद्धं शरणमं गच्छामि, धम्म शरणं गच्छामि, सघं शरणं गच्छामि।

सारिपुत्र तथा मौद्गल्यायन बन गए बुद्ध के पटु शिष्य

एक समय की बात है। राजगृह तीन परिव्राजकों एवं ढाई सौ संन्यासियों का संगम स्थल बन गया है। नाम था इनका—सारिपुत्र एवं मौद्गल्यायन (दोनों घनिष्ट मित्र थे) तथा संजय परिव्राजक तीनों अमृतत्व प्राप्ति के लिए लालायित थे। सौभाग्य से राजगृह में एक दिन आयुष्मान अश्वजित् का आगमन हो गया। संयम, धैर्य एवं शान्ति के साथ वह भिक्षार्जन के लिए धीरे-धीरे घूम रहे थे। सारिपुत्र एवं मौद्गल्यायन की पैनीदृष्टि उन पर पड़ गई। दोनों उनके पीछे-पीछे चलने लगे।

संयोग से अश्वजित् की निगाह अनुगामुकों पर पड़ गई। वह पलभर के लिए रुक गए! सारिपुत्र ने फौरन प्रश्न किया, "आवुस! आपका ललाट आभामंडित एवं शरीर कान्तियुक्त हैं। लगता है कि आप कोई सिद्ध पुरुप हैं। आप किस धर्म के अनुयायी हैं। किस गुरु से आपने दीक्षा ग्रहण की है।"

"परिव्राजक! मेरे गुरु तो भगवान बुद्ध हैं। उन्हीं का धर्म मैं मानता हूँ।"

सारिपुत्र बोला, "आवुस! क्या आप अपने धर्म के 'सार' से मुझे अवगत करा सकते हैं?"

"अवश्य! हेतु से जितनी वस्तुएँ उत्पन्न होती हैं उनके कारण से भगवान भिक्षुओं एवं सद्गृहस्थों को परिचित कराते हैं। यहीं तक नहीं रुकते। उनके निरोध का उपाय भी बतलाते हैं। भगवान बुद्ध का धर्म पर्याय यह है कि जो कुछ उत्पन्न होने वाला है, वह नाशवान है।" इस उपदेश ने सारिपुत्र को अनुप्राणित कर दिया। केवल श्रवण से उसे विमल दिव्यचक्षु मिल गया।

सारिपुत्र आत्मकेन्द्रित नहीं अपितु परोपकारी था। वह मौद्गल्यायन के पास गया। उसके जाज्वल्यमान चेहरे, कान्तिमयी शरीर एवं हर्ष से आप्लावित इन्द्रियों को, देखकर मौद्गल्यायन को कौतूहल हुआ। उसने सारिपुत्र पूछा, "परिव्राजक। क्या अश्वजित ने तुम्हें अमृतत्व प्रदान कर दिया है?"

"मौद्गल्यायन! तुम्हारा अंदाजा सही है। अश्वजित से धर्म का सार सुनकर मेरा काया-कल्प ही नहीं हुआ है अपितु चित्तधारा भी मलों से विमुक्त हो गई है।" दोनों भित्र परिव्राजकों के पास गये और उनसे निवेदन किए, "परिव्राजको! शुद्ध धर्म को प्राप्त करना है। चलो, चलें भगवान बुद्ध के पास।"

सभी परिव्राजक अविलम्ब तैयार हो गये। सर्वप्रथम वे संजय के पास गये। सारिपुत्र ने संजय से पूछा, "क्या तुम हमारे साथ भगवान बुद्ध के पास चलोगे?"

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

संजय बोला, "भाइयो! वहाँ जानने की क्या आवश्यकता है यहीं पर हम तीनों मिलकर महंती जमायेंगे।"

सारिपुत्र और मौद्गल्यायन ने हाथ जोड़कर तीन बार प्रार्थना की पर स्वार्थांध एवं अहंकारी संजय ने उनकी प्रार्थना ठुकरा दी। अधर्म एवं वर्गलाने का फल तुरन्त मिलता है। संजय के मुँह से गर्म लहू बहने लगा।

संजय को अकेला छोड़कर ढाई सौ परिव्राजकों के साथ दोनों मित्र वेणुवन पहुँचे। भगवान तो प्रज्ञाचक्षु थे। श्रद्धालुओं के चित्त को पहचानने में उन्हें देर नहीं लगी। उन्होंने भिक्षुओं से कहा, "भिक्षुओ। देखो? सारिपुत्र एवं मौद्गल्यायन पधार रहे हैं। इनका चित्त माया, क्लेशों तथा विकारों से पूर्णतः विमुक्त है। यही दोनों मेरे प्रधान शिष्ययुगल होंगे।"

परिव्राजकों सहित सारिपुत्र और मौद्गल्यायन भगवान की प्रदक्षिणा कर एक ओर बैठ गये। हाथ जोड़कर बोले, "भगवान! हमें प्रव्रज्या एवं उपसम्पदा प्रदान करें।"

भगवान बोले, "श्रद्धालुओ! यह धर्म सुविख्यात है। दुःख-निवारण के हेतु ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करो।"

इस प्रकार सारिपुत्र, मौद्गल्यायन तथा उनके साथियां को प्रव्रज्या और उपसम्पदा मिली।

भंगी सुनीत

राजगृह में सुनीत नाम का एक भंगी रहता था। उसका पेशा था, राजमार्ग पर यत्र-तत्र बिखरे कूड़े-कचरे को साफ करना। राजगृह उस समय मगध की राजधानी था। प्रातःकाल का समय था। सुनीत कूड़ा-कचरा एकत्र कर ढेर लगा रहा था। वाद में टोकरी में भर-भर गाड़ी में डालकर गाड़ी को खींचकर नगर के बाहर ले जाने वाला था।

संयोग से उसी समय भिक्षु संघ के साथ तथागत उसी मार्ग से राजधानी राजगीर की ओर आँखें नीचे किये हुए जा रहे थे। भगवान का दर्शन कर वह अह्लादित हो गया। उपेक्षित था। अतः डर गया। गाड़ी को दीवार से सटाकर खुद दीवार से सटकर हाथ में झाड़ू लिये भगवान को श्रद्धापूर्वक टकटकी लगाकर देखने लगा। वह भाव-विभोर हो गया। उसके मुँह से "भन्ते! भगवान! वाक्य निकल पड़ा। उसकी निश्छल श्रद्धा से भगवान का करुण हृदय द्रवित हो उठा।

अमृतमयी वाणी में भगवान बोले, "सुनीत! तुम्हारी जीविका का साधन अत्यन्त ही तुच्छ है। इसे त्यागकर भिक्षु संघ की शरण लो।"

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

सुनीत की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। गद्गद होकर बोला, "भगवान! आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। मुझे भिक्षु संघ में शामिल कर प्रव्रज्या एवं उपसम्पदा दे दें।"

भगवान अमृतमयी वाणी में बोले, "आओ भिक्षु!" इन्हीं शब्दों के साथ सुनीत को प्रव्रज्या और उपसम्दा मिली।

भगवान ने उसे यह शिक्षा दी, "सुनीत! शील, संयम एवं दमन से प्राणी परिशुद्ध होता है।"

वेणु वन में अपने साथ ले जाकर भगवान ने उसे विधिपूर्वक विपश्यना का अभ्यास करवाया।

रोगग्रस्त प्राणी की सेवा सर्वोत्तम मानवीय गुण है

एक भिक्षु था। वह उदर-रोग से ग्रस्त था। पल-पल वह टट्टी और पेशाब कर रहा था। बार-बार दस्त होने से उसका शरीर असक्त हो गया था। उसमें उठने-बैठने की सामर्थ्य नहीं रह गई थी। बेचारा शरीर को पानी लाकर कहाँ से धोता। प्रातःकाल उठकर वह भिक्षु-सभा में नहीं गया। भगवान उसकी अनुपस्थिति से अवगत हो गये। जैसे प्रवचन समाप्त हुआ, वह आनन्द को साथ लेकर उस भिक्षु के पास गये।

मधुरवाणी में बोले, "भिक्षु! तुम्हारे शरीर पर मक्खियाँ क्यों भिनभिना रही हैं?"

"भगवान! मेरा पेट खराब हो गया है। बार-बार झाड़ा होता है।"

"भिक्षु! क्या तुम्हारा कोई परिचारक है?"

"नहीं।"

"क्यों?"

"भगवान! ताली दोनों हाथ से वजती है। मैंने आजतक किसी भिक्षु रोगी की सेवा नहीं की। फिर दूसरा भिक्षु मेरी सेवा क्यों करेगा!"

भगवान ने आनन्द से कहा, "आनन्द! दो घड़े पानी भरकर लाओ?"

"भन्ते! अच्छा।"

आनन्द पास के सरोवर से दो घड़े जल भर लाया।

भगवान ने अपने हाथ में पुरवा लेकर घड़े से पानी भर-भर आनन्द को देने लगे और वह रोगी भिक्षु को नहलाता रहा। थोड़ी देर में रोगी का शरीर स्वच्छ हो गया। स्नान से उसका शरीर शीतल हो गया। भगवान पानी गिराने लगे और आनन्द कमरे को धोने लगा। कमरे की सारी गन्दगी और दुर्गन्ध गायब हो गई।

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

भगवान ने रोगी-भिक्षु का सिर थामा और आनन्द ने पैर पकड़ा। दोनों ने सहारा देकर आहिस्ता-आहिस्ता रोगी को पलंग पर लिटा दिया।

दोपहर को भिक्षु-संघ की सभा हुई। सभा को संबोधित करने के बाद भगवान ने प्रश्न किया, "भिक्षुओ! विहार में क्या कोई रोगी बीमार है?"

"हाँ।"

"उसे क्या रोग हुआ है?"

"दस्त हो रहा है।"

"क्या उसका कोई परिचारक है?"

"भन्ते नहीं।"

"क्यों?"

"भन्ते! उसने किसी की सेवा आज तक नहीं की। फिर उसकी सेवा कौन करे?"

"भिक्षुओ! तुम लोगों की यह सोच आत्मकेन्द्रित और निरर्थक है।"

"भिक्षुओ! रोगी कोई भी हो। उसकी सेवा करनी चाहिए। यही सुधर्म है। रोगी से प्रेम करो, घृणा नहीं। दवा से अधिक मीठी बोली और सेवा कारगर होती है। जो रोगी की सेवा नहीं करता, उसे दुष्कृत दोष लगता है।"

भिक्षुओं ने भगवान से प्रार्थना की, "भन्ते! परिचारक के क्या गुण हैं?"

"भिक्षुओ! परिचारक में निम्नलिखित गुण होते हैं–

1. उपयुक्त समय पर दवा देना।
2. प्रतिकूल को हटाकर अनुकूल को देना।
3. मैत्री भाव से रोगी की सेवा करना।
4. धर्म कथा सुना-सुनाकर रोगी को प्रसन्न करना।

भिक्षुओ! याद रखो। मेरी सेवा का आकांक्षी भिक्षु पहले रोगी की सेवा करे।"

चित्त के मल

किसी समय भगवान बुद्ध श्रावस्ती के जेतवन में विहार कर रहे थे। भिक्षुओं में से एक भिक्षु ने पूछा, "भगवान! चित्त के मल से क्या हानियाँ होती हैं?"

"भिक्षुओ! प्रश्न उत्तम है। सुनो। यदि कोई रंगरेज मैले-कुचैले वस्त्र को किसी रंग में रंग दे, तो वह बदरंग ही रहेगा। इसी प्रकार जिस मनुष्य के चित्त पर मल संगृहीत होगा, उसकी दुर्गति निश्चित है।"

भिक्षु बोला, "चित्त पर कितने प्रकार के मल इकट्ठा होते हैं?"

"भिक्षुओ! मल ही उपक्लेश कहलाता है। इन्हें निम्नलिखित रूपों में पहचाना

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

जा सकता है—

1. विषम लोभ, 2. द्रोह, 3. क्रोध, 4. पाखंड, 5. अमर्ष, 6. निष्ठुरता, 7. ईर्ष्या, 8. मात्सर्य, 9. ठगना, 10. शठता, 11. जड़ता, 12. हिंसा, 13. मान, 14. अतिमान, 15. मद, 16. प्रमाद।"

अंगुलिमाल : हिंसा से अहिंसा, करुणा और मैत्री की ओर

श्रावस्ती में महाराज कौसल नरेश की राजधानी थी। उसके सन्निकट ही जेतवन विहार था। एक समय भगवान बुद्ध भिक्षु-संघ सहित वहाँ निवास कर रहे थे।

महाराज प्रसेनजित के शासनकाल में एक कुख्यात डाकू था। नाम था अँगुलिमाल। लोगों को जान से मारना और उनकी अँगुलियों को काटना और माला में पिरोकर पहनना उसकी दिन-चर्या थी। अँगुलियों की माला पहनने के कारण उसे लोग अँगुलिमाल कहा करते थे। उसके अत्याचारों और हिंसक घटनाओं से जनता के मन में आतंक छाया हुआ था। सर्वत्र त्राहिमाम, त्राहिमाम मची हुई थी। उसके कुकृत्यों की कहानी, जनता की जबानी भगवान के कानों में पड़ी, दुखिया जनता की आह सुनकर भगवान बुद्ध का नवनीत-सा कोमल हृदय द्रवित हो गया। एक दिन विशाल जनसमूह भगवान के पास पहुँचा। भगवान ने उनसे कहा, "गृहस्थो! धैर्य धारण करो। संयम से काम लो।"

जनसमूह का मुखिया बोला, "भगवान! बड़ा खूँख्वार है वह। प्रजा ही नहीं अपितु राजा भी उससे घबड़ाता है।"

भगवान बोले, "मुखिया! अपने साथियों को लेकर घर जाओ। मेरे ऊपर विश्वास रखो। मैं सुधर्म द्वारा उसके चित्त को हिंसा से हटाकर अहिंसा की ओर उन्मुख कर दूँगा। काया-पलट भी होगा और चित्त परिवर्तन भी।"

आश्वासन पाकर ग्रामीण अपने-अपने घर चले गए। भगवान ने भिक्षा-पात्र सँभाला और चीवर धारण कर उस स्थान की ओर चल पड़े जहाँ अँगुलिमाल दुष्कृत्यों को अंजाम देता था। कानों-कानों सबको पता चल गया कि भगवान अँगुलिमाल के पास जा रहे हैं।

मार्ग में चरवाहे, किसान, गड़रिये तथा राहगीर मिले। उन्हें भगवान के गन्तव्य स्थान का पता चल गया था। भगवान को घेरकर समवेत स्वर में वे बोले, "भन्ते! हमारी प्रार्थना है कि आप आगे न बढ़ें।"

"क्यों?"

"भगवान! अँगुलिमाल कठोर हृदय वाला भी है और दुर्मद भी। वह आपको मार डालेगा, राजा, रंक, कायर, योद्धा, नर-नारी, किसान-बनिया किसी को नहीं

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

बख्शता। हत्या और लूट-खसोट उसके जीवन का मुख्य लक्ष्य है।"

तथागत दृढ़निश्चयी एवं आत्मबली थे, रुके नहीं, चल दिये। जब वह अँगुलिमाल के पास पहुँचे तो वह आश्चर्य में पड़ गया। मन ही मन सोचने लगा कि दस-बीस, चालीस-पचास आदमी समूह बद्ध होकर मेरे सामने आने की हिम्मत नहीं जुटा पाते। अकेला यह कौन है जो निर्भय मेरी ओर बढ़ा आ रहा है। वह आगबबूला हो गया। उसने भगवान की हत्या का निश्चय किया। हाथ में ढाल-तलवार, पीठ पर तूणीर और कंधे पर धन्वा रखकर भगवान की ओर पिल पड़ा। दौड़ा तो क्षिप्रगति से पर भगवान के निकट पहुँच न सका। थककर चकनाचूर हो गया। उसके आश्चर्य की सीमा न रही। सोचने लगा, "आज तक तीव्रगामी हाथियों, घोड़ों, रथों, हिरणों और नीलगायों को मैं आनन-फानन में पकड़ लेता था पर हौले-हौले चलने वाले श्रमण को पकड़ने में बिलकुल असमर्थ रहा।"

हार मानकर रुक गया। पर अल्पविराम के बाद गरज उठा। बोला, "श्रमण! आगे मत बढ़। जहाँ हो, वहीं रुक जाओ।"

भगवान बोले, "अँगुलिमाल! मैं अपनी जगह पर खड़ा हूँ। तू भी जहाँ हो, वहीं खड़े रहो।"

"श्रमण! चल रहे हो, तो भी कहते हो खड़ा हूँ। उलटे मुझसे कह रहे हो कि खड़े रहो, चलो मत। जरा समझाओ तो कैसे तुम स्थित हो और मैं अस्थित।"

"अँगुलिमाल! मैं रुका हूँ। तू भी रुक। सभी प्राणियों की हिंसा से मैं रुका हूँ पर दूसरे प्राणियों की हत्या करने के कारण तू चलायमान है। तेरा भव गतिमान है। हिंसक नरकगामी होता है। अतः हिंसा-पथ का त्यागकर चर-अचर सभी प्राणियों पर दया कर। तुम्हारे हृदय में करुणा का सागर लहरा रहा है, उसे सबके परोपकार के लिए उन्मुक्त कर दो।"

भगवान की वाणी में दिव्य शक्ति थी। अमृतमयी वाणी को सुनते ही अँगुलिमाल का हृदय-परिवर्तन हो गया। उसने मन ही मन निश्चय किया कि आज से हिंसा और दुष्कृत्यों पर विराम लगा दूँगा। आत्मज्ञान के साथ आत्मविश्वास भी बढ़ गया। उसने अस्त्र-शस्त्रों को सन्निकट प्रवहमान नाले के जल में फेंक दिया। भगवान के चरणों पर गिरकर उसने प्रव्रज्या एवं उपसंपदा देने की प्रार्थना की।

भगवान बोले, "अँगुलिमाल! प्राणिरक्षा सबसे बड़ा पुण्य है। अब तुम्हारा चित्त ईर्ष्या, द्वेष, मोह, क्रोध, तृष्णा एवं अहंकार से विमुक्त हो गया है। मैं तुझे धर्म-दीक्षा दे रहा हूँ।" अँगुलिमाल कृतज्ञता प्रकट करते हुए बोला, "भगवान! आपका दर्शन धन्य है। अपार करुणा प्रकट कर आपने मुझे भव-सागर से उबार लिया।"

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

भगवान ने कहा, "अँगुलिमाल! अब तू डाकू नहीं अपितु भिक्षु हो, भिक्षु आ।" प्रव्रज्या मिलते ही उसका चंचल चित्त शान्त हो गया। वह भगवान का अनुगमन करता हुआ वैशाली के जेतवन विहार में पहुँच गया।

अँगुलिमाल के आतंक से सहमी हुई जनता प्रसेनजित के पास गई। उनका मुखिया राजा से बोला, "महाराज! डाकू अँगुलिमाल की हिंसात्मक प्रवृति से आपकी सारी प्रजा परेशान है। प्रजा की रक्षा का भार आप पर है। आप अपनी प्रजा का उद्धार करें।"

प्रजा को रक्षा का अश्वासन देकर वैशाली नरेश भगवान के पास पहुँचे और चरण-वन्दना कर बोले, "भन्ते! डाकू अँगुलिमाल के अत्याचारों निरीह जनता प्रताड़ित हो रही है। मैं उसका हनन करूँगा।"

भगवान बोले, "राजन्! अँगुलिमाल अब डाकू नहीं अपितु भिक्षु है। सुधर्म में दीक्षित है। उसकी चित्तधारा सभी प्रकार के विकारों से मुक्त हो गई। वह अब जनता की भलाई करेगा। आप इस समय क्रोधाग्नि से जल रहे हैं। यदि वह भिक्षु के रूप में आपके सामने आए तो क्या आप उसे मार डालेंगे?"

"भगवान! यदि वह भिक्षु हो गया है तो मैं उसका स्वागत करूँगा, गले लगाऊँगा। उसे दावत दूँगा। चीर और भिक्षा-पात्र की व्यवस्था करूँगा।"

अश्वासन पाकर भगवान ने कहा, "महाराज! सामने देखो? भिक्षु अँगुलिमाल बैठा हुआ है। उसे देखकर राजा काँपने लगा। भगवान ने कहा, "राजन्! भयभीत न हो।"

आश्वस्त होने पर राजा उसके पास गया और बोला, "भिक्षु! क्या तुम सचमुच अँगुलिमाल हो।"

"राजन्। हाँ।"

राजा ने पूछा, "भिक्षु अँगुलिमाल! तुम्हारे माता-पिता का क्या गोत्र है?"

"राजन्! पिता गार्ग्य था और माता मैत्रायणी।"

"बहुत बड़े तपस्वी एवं तपस्विनी की संतान हो। पूर्व जन्म में जो कुछ दिनों तक शुभकर्मों से च्युत रहे। इसलिये इस जन्म में कुछ काल तक डाकू बने रहे। आपने उस जन्म में जो शुभ कार्य किये थे, उसका उदय अब हुआ। उसी पुण्य से भिक्षु बने हो। मनुष्य को पूर्वजन्म का फल भोगना ही पड़ता है। यह कहकर प्रसेनजित भगवान को प्रणाम कर वहाँ से चले गए।"

भिक्षु संघ में भिक्षा माँगना आवश्यक था। एक दिन अँगुलिमाल चीवर धारण कर हाथ में भिक्षापात्र लेकर वैशाली नगर में भीख माँग रहा था। लोग उसे पहचान गए। डरकर ढेला, पत्थर, लकड़ी के टुकड़ों से उसका स्वागत करने लगे। बेचारे का

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

सिर फूट गया चीवर चिन्दी-चिन्दी हो गया। सारे शरीर पर लहू की धारा बहने लगी। शरीर खून से लथपथ था। भयंकर प्रहार सहने के बाद भी वह शान्त था। प्रतिहिंसा का भाव उसके मन में नहीं उभरा। उसके अहंकार, क्रोध, हिंसक आदि भाव रसातल में चले गये। उसकी चित्त-धारा मलों से विमुक्त हो गई थी।

खून से भीगा हुआ वह भगवान के पास गया। भगवान उसके धैर्य एवं संयम से पूरी तरह प्रभाहित हुए। बोले, "भिक्षु! तूने पाप स्वीकार कर लिये। जिस कर्मफल से तुम्हें अन्यान्य योनियों में जन्म लेकर हजारों वर्ष नरक भोगना पड़ता, तू इसी जन्म उसे भोगकर मोक्ष की ओर उन्मुख हो गये। रात-दिन विपश्यना करो। प्रज्ञा जागी रहे।"

अन्य डाकुओं का उद्धार

डाकू कोई अपने आप नहीं बनता है। परिस्थितियाँ ही मनुष्य को घिनौने कार्य और हिंसा के लिये प्रेरित करती हैं। डाकुओं को धर्म का सार सिखा कर उन्हें मुख्यधारा से जोड़ना तथा वैराग्य की ओर मोड़ना बड़ा ही पुनीत कार्य माना जाता रहा है। भगवान बुद्ध 'आत्म साक्षात्कार' के साथ-साथ परोपकार एवं समाज-कल्याण को अपने धर्मोपदेश में अधिक महत्त्व देते थे।

एक समय श्रावस्ती की राजधानी राजगृह नगर था। राजगृह के दक्षिण में पचहत्तर मील की दूरी पर एक विशाल पर्वत था। उस पहाड़ के मध्य में एक तंग एवं सुनसान दर्रा था। उसे दक्षिण का द्वार कहा जाता था। क्योंकि उसी दर्रे के द्वारा उत्तर और दक्षिण के व्यापारी तथा तीर्थ यात्री आया जाया करते थे। यह दर्रा डाकुओं का आरामगाह एवं लूटपाट का प्रमुख केन्द्र बन गया था। यात्रियों को मारकर उनके सामन को लूटना इनका प्रमुख व्यवसाय था।

श्रावस्ती नरेश ने इन्हें पकड़ने के प्रयास तो किए पर उन्हें अपने अभियान में सफलता नहीं प्राप्त हुई।

एक समय बुद्ध भिक्षु-संघ के साथ जैतवन में विहार कर रहे थे। जैसे ही डाकुओं के अत्याचारों की भनक भगवान के कानों में पड़ी, उन्होंने उनसे मिलने का दृढ़ संकल्प किया। खुरजी घोड़े की पीठ पर बाँध दी गई। घोड़े की लगाम में हीर-पन्ने जड़ दिए गए। भगवान पीठ पर तरकस, कंधे में धनुष एवं हाथ में चमचमाती तलवार लेकर घोड़े की पीठ पर बैठ गये। कलाराशि घोड़ा था। सरपट मारने लगा। सायंकाल के पहले ही दर्रे पर पहुँच गया।

दर्रे में प्रविष्ट होते ही घोड़ा हिनहिनाने लगा। भारी रकम देखकर डाकुओं का मन मयूर नाचने लगा। घोड़े को वे घेरने के लिए वे दौड़ पड़े। जैसे ही भगवान की

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

नजर उन पर पड़ी, वे धराशायी हो गए। उन्हें भगवान के प्रताप का ज्ञान हो गया।

हाथ जोड़कर वे बोले, "भगवान! यह क्या है? भगवान! यह क्या है?"

उनकी गिड़गिड़ाहट सुनकर भगवान का मन करुणा से भर उठा। बोले, "डाकुओ सारा प्राणि-जगत दुःखों से घिरा है। यदि लोगों के दुःखों से तुलना करें तो तुम लोगों का दुःख नगण्य है। तुम लोगों का चित्त अश्रद्धा और विचिकित्सा से आक्रान्त है। अविद्या यानी अज्ञानता सारे दुःखों का कारण है। अविद्या-निवारण के लिए धर्म-देशना सबसे बड़ा साधन है। धर्म-शिक्षा से अंधों की आँखें खुलती हैं और अज्ञानियों को ज्ञान प्राप्त होता है।"

भगवान की अमृतमयी वाणी सुनकर डाकुओं के मन का सारा विकार दूर हो गया। भगवान के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए डाकू कहने लगे, "भगवान! आपकी धर्म-शिक्षा से केवल हमारे मानसिक क्लेषों का उपशमन नहीं हुआ है बल्कि विमलप्रज्ञा भी मिल गई है। सारा संसार अनित्य है, क्षणभंगुर है, नश्वर है, हमें इसका बोध हो रहा है।"

भगवान् बोले, "भिक्षुओ! अब तुम डाकू नहीं, अर्हत हो। अनित्य-बोध ही हमारे सुधर्म का सार हो।"

बोधि राजकुमार

कौशाम्बी के राजकुमार का नाम बोधि था। भगवान बुद्ध के प्रति उसके मन में अपार श्रद्धा और विश्वास था। राजा तो था ही। प्रतिवर्ष नये-नये महल का निर्माण करवाया करता था। जब नया राजमहल बनकर तैयार हो जाता था तो वह विधिवत् गृहप्रवेश का आयोजन करता था। एक बार की बात है कि उसका नया महल बनकर तैयार हो गया तो उसके मन के यह सद्विचार उत्पन्न हुआ कि इस बार मैं गृहप्रवेश के अवसर पर भगवान बुद्ध को भिक्षु-संघ सहित भोजन करवाऊँगा। अपने इस सपने को कार्यान्वित करने के लिए वह भगवान के पास गया। सर्वप्रथम तो उसने भगवान को श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया और फिर उनसे प्रार्थना की, "भगवान! कल हमारे नवनिर्मित महल का गृहप्रवेश है। आपसे मेरी यह विनम्र प्रार्थना है कि कल इस शुभ अवसर पर आप भिक्षु-संघ सहित हमारे यहाँ भोजन करें?"

"राजकुमार! आपका आमंत्रण स्वीकार है।"

राजकुमार बोधि हर्ष में फूला हुआ अपनी राजधानी लौटा। भोज के दिन उसने सीढ़ियों पर कोमल ऊन से निर्मित चादरें बिछवा दीं।

ठीक समय पर भिक्षु-संघ सहित भगवान राजमहल के प्रांगण में पहुँच गए।

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

बोधि राजकुमार उनकी अगवानी में पहले से ही द्वार पर खड़ा था। सष्टांग प्रणाम करके उसने भगवान से ऊपर चलने के लिए प्रार्थना की। भगवान भिक्षुओं के साथ ऊपर जाने के लिए उद्यत हो गए। जैसे ही दो कदम आगे बढ़े, उनकी निगाह सीढ़ियों पर बिछे हुए आलीशान चादर पर पड़ गई। जहाँ का तहाँ वह बिरम गए। आनन्द को भगवान के मन की बात को भाँपने में देर नहीं लगी।

आनन्द बोधि राजकुमार से बोला, "राजकुमार! भगवान चेलिका-पंक्ति पर चरण नहीं रखेंगे। अतः तुम अपने सेवकों से उन्हें हटवा लो।"

"तथास्तु।" कहकर राजकुमार ने सीढ़ियों पर बिछे वस्त्रों को हटवा दिया।

भगवान भिक्षुओं के साथ ऊपर गए और प्रसन्नतापूर्वक भोजन किये। भोजनोपरान्त उन्होंने उपस्थित श्रोताओं को धर्मोपदेश दिया।

धर्मोपदेशना के बाद राजकुमार बोधि ने भगवान से प्रश्न किया, "भन्ते! मुक्तावस्था कैसे प्राप्त हो सकती है?"

"राजकुमार! मोक्ष की प्राप्ति योग्यता पर निर्भर है। एक योग्य व्यक्ति यदि प्रातःकाल प्रशिक्षित होकर भगवान द्वारा निर्देशित मार्ग का धैर्य और संयम के साथ अवलंबन करे तो सायंकाल होते-होते वह मोक्ष का अधिकारी हो सकता है। इसी प्रकार सायंकाल में प्रशिक्षित व्यक्ति प्रातःकाल होते-होते अवश्य मुक्तावस्था में पहुँच जायेगा।"

भगवान की अमृतमयी वाणी सुनते ही राजकुमार को शुद्ध धर्म प्राप्त हो गया। उसे अनित्य बोध हो गया। अचानक उसके मुँह से तीन वाक्य निकल पड़े, अहो बुद्ध! अहो धर्म! अहो संघ!

राजकुमार बोधि की माँ भगवान बुद्ध द्वारा प्रवर्तित सुविख्यात धर्म में विधिवत दीक्षित थीं। एक बार जब राजकुमार बोधि उनके गर्भ में पल रहा था, उस समय वह भगवान का दर्शन कर घर वापस आई। श्रद्धा विह्वल होकर वह भगवान को याद करती हुई बोली, "भन्ते! मेरी कोख में पुत्र या पुत्री जो भी पल रहा है, वह बुद्ध की शरण, धर्म की शरण और संघ की शरण ग्रहण करेगा। भगवान उसे शरणागत अपना उपासक मानें।"

जब गर्भ से मैं धरती पर गिरा तो धाय मुझे अपनी गोद में लेकर भगवान के पास आई और बोली, "नवजात शिशु बोधि आपकी अर्थात् बुद्ध, धर्म की तथा संघ की शरण में हैं। इसे आप अपना उपासक मानें।"

प्रथम बार माँ ने मुझे बुद्ध, धर्म और संघ की शरण में भेजा और दूसरी बार धाय ने और तीसरी बार मैं स्वयं बुद्ध, धर्म एवं संघ की शरण ग्रहण कर रहा हूँ। भगवान आज से मैं आपका उपासक बन गया।

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

आम्रपल्ली

भगवान अर्हत थे। वह सदैव परिभ्रमण करते रहते थे। एक बार आनन्द के साथ नदिका में कुछ दिनों से रुके हुए था। अचानक उनके मन में स्थान-परिवर्तन की इच्छा जाग उठी। वह बोले, "आनन्द! चलो, कोटिग्राम चलें।"

आनन्द उनके प्रस्ताव को स्वीकारते हुए बोला, "भगवान्! आपकी आज्ञा का पालन होगा।"

कोटिग्राम में आम्रपाली का विशाल आम्रवन था। वैशाली पहुँचने पर जब उनकी निगाह उस रम्य उद्यान पर पड़ी तो उन्होंने भिक्षु संघ तथा आनन्द से कहा, "भिक्षुओ! यह आम्रवन बड़ा ही मनोहर और शान्त है। अतः यहीं पर अड्डा जमा दें। भगवान बुद्ध के प्रस्ताव से सहमत होकर सभी लोग वहीं रुक गए।"

आम्रपाली भगवान बुद्ध के विचारों एवं महिमा से भलीभाँति परिचित थी। उनके आगमन का समाचार पाते ही, वह दर्शन के लिए आकुल हो उठी। कला राशि घोड़े रथ में जुत गए और वह रथ पर आरूढ़ होकर अपने उद्यान की ओर चल पड़ी। दास-दासियां उसके पीछे-पीछे चल पड़े। आम्रवन के सन्निकट पहुँचकर वह रथ से उतर गई। कोमल पावों से धरती को नापती हुई वह भगवान के पास पहुँची। उन्हें हाथ जोड़कर प्रणाम किया और चुपचाप एक कोने में बैठ गई। भगवान की अमृतवाणी जैसे ही उसके कानों में पड़ी, उसके क्लेश और मल काफूर हो गए।

धर्मोपदेश समाप्त होने के बाद हाथ जोड़कर बोली, "भन्ते! भिक्षु संघ सहित कल मेरे घर भोजन कीजिए।"

भगवान बोले, "आम्रपाली! तुम्हारा आमंत्रण स्वीकार है।"

बाद में भगवान की प्रदक्षिणा कर वह लौट गई।

वैशाली में लिच्छवि राजवंश का बोलबाला था। लिच्छवि साथियों सहित रथ में सवार हुए और आम्रवन की ओर चल पड़े। वे भी भगवान बुद्ध को भोजन के लिए आमंत्रित करना चाहते थे। बीच में राजमार्ग पर उन्हें आम्रपाली मिली। दोनों के रथ टकरा गए। वे आम्रपाली से पूछ बैठे, "आम्रपाली! क्या बात है? तुमने अपने रथ को हमारे रथ से क्यों टकराया?"

"मालिको! कल भगवान बुद्ध भिक्षुओं के साथ हमारे घर भोजन करेंगे।" लिच्छवि आम्रपाली को एक लाख का उत्कोच देकर भिक्षु संघ का भोजन कल अपने यहाँ करवाना चाहते थे। पर राजवंश के उत्कोच को अस्वीकार करते हुए वह बोली, "प्रभुओ! आप लोग मेरी ओर से एक लाख ले लें पर भगवान को भोजन मेरे यहाँ करने दें।"

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

बेचारे लिच्छवि अपना-सा मुँह लेकर रह गए। आपस में कहने लगे कि आज आम्रपाली ने हमें पराभूत कर दिया। शासन का घमण्ड था। भगवान बुद्ध के पास पहुँचे और निवेदन करते हुए बोले, "भगवान! कल आप भिक्षु-संघ सहित हमारे यहाँ भोजन करें।"

"लिच्छवियो! कल हम लोग आम्रपाली के यहाँ भोजन करेंगे।"

लिच्छवियों ने भगवान का अभिवादन किया और प्रदक्षिणा कर अपने राजभवन लौट गए।

दूसरे दिन जब भोजन बनकर तैयार हो गया तो भगवान के पास आम्रपाली ने सूचना भिजवाई कि भोजन तैयार हो गया है। भगवान भिक्षुओं सहित पधारकर भोजन करें।

ठीक समय पर भगवान आम्रपाली के घर पधारे और आसन ग्रहण कर भोजन करने लगे। आम्रपाली श्रद्धापूर्वक अपने कोमल हाथों से भोजन परोस रही थी।

भोजनोपरान्त जब तथागत तख्ते पर बैठ गए तो आम्रपाली एक ओर नीचे आसन पर बैठकर भगवान से प्रार्थना करती हुई बोली, "भगवान! मैं अपना आम्रवन भिक्षुसंघ को प्रदान करना चाहती हूँ।"

भगवान बोले, "आम्रपाली! तुम्हारा दान स्वीकार है।"

बाद में उठकर वे भिक्षुओं सहित आम्रवन चले गए।

सिंह सेनापति

एक समय की बात है। बहुत से गणमान्य लिच्छवी संस्थागार (=प्रजातंत्र-सभागृह) में बैठकर भगवान बुद्ध तथा भिक्षु-संघ की प्रशंसा का पुल बाँध रहे थे। संयोग से उसी समय निगंठों (जैनों) का श्रावक सिंह सेनापति प्रजातंत्र-सभागृह में बैठा था। वह अपने मन में सोचने लगा, "जिस महापुरुष का प्रख्यात लिच्छवी गुणगान कर रहे हैं, वह भगवान अवश्य ही सम्यक संबुद्ध होंगे। अतः हमें उनका दर्शन अवश्य करना चाहिए।"

वह निगंठनाथपुत्र के पास गया और बोला, "भन्ते! मैं श्रमण गौतम के दर्शन के लिए उनके पास जाना चाहता हूँ। आप उनके दर्शन की अनुमति प्रदान करें?" निगंठनपुत्र बोला, "सिंह सेनापति। जहाँ तुम क्रियावादी हो वहाँ श्रमण गौतम अक्रियावादी है। वह श्रावकों अक्रियावाद का उपदेश देता है। फिर तुम उसके पास क्यों जाना चाहते हो?"

बेचारे सिंह सेनापति की इच्छा शान्त हो गई। पर उसकी उत्कंठा ज्यों की

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

त्यों बनी रही, फिर वह प्रजातंत्र-गृह में गया जहाँ लिच्छवी भगवान बुद्ध के गुणों का बखान कर रहे थे। उसका मन पुनः भगवान बुद्ध के दर्शन के लिये लालायित हो गया। पुनः वह निगंठनाथपुत्र के पास गया। हाथ जोड़कर बोला, "भन्ते! मुझे श्रमण गौतम के दर्शन की अनुमति दें।"

निगंठनाथपुत्र बोला, "सेनापति। तुम कितने अहमक हो। कहीं एक क्रियावादी व्यक्ति अक्रियावादी श्रमण गौतम का दर्शन करने जाता है?"

बेचारा सिंह सेनापति मौन हो गया।

तीसरी बार जब प्रजातंत्र-गृह में बैठकर लिच्छवियों के मुँह से उसने सम्यक-सम्बुद्ध की प्रशंसा सुनी तो उसकी दृढ़ इच्छा-शक्ति जाग उठी। उसने अपने मन में यह संकल्प किया, "मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता स्वयं है। फिर मैं किसकी फिरकी बनकर क्यों नाचूँ? मैं भगवान के दर्शन के लिए अवश्य जाऊँगा।"

फिर क्या? पाँच सौ रथों के साथ सिंह सेनापति दोपहर को वैशाली से निकलकर आराम-विहार की ओर चल पड़ा। जहाँ तक रथ जा सकते थे, गया। बाद में वह रथ से उतर आराम-विहार में विहार कर रहे भगवान के पास पहुँचा और अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। जब भगवान ने अपनी कृपा दृष्टि उस पर फेरी तो वह बोल उठा, "भन्ते! कुछ लोगों को मैंने ऐसा कहते हुए सुना है—श्रमण गौतम अक्रियावादी हैं। अतः वह शिष्यों को अक्रियावाद समझाकर उन्हें अक्रियावादी बनाता है। क्या आपके बारे में उनका यह कथन अलीक नहीं है?"

भगवान बोले, "सिंह सेनापति! मुझे अक्रियावादी कहने के पीछे कोई न कोई कारण तो अवश्य है। पर, साथ-साथ मुझे श्रमण गौतम क्रियावादी है, ऐसा भी कुछ लोग कहते हैं।"

सिंह सेनापति बोला, "भगवान! क्या कारण है?"

"सिंह सेनापति! मैं काय-दुश्चरित, वचन-दुश्चरित, मन-दुश्चरित तथा अनेक प्रकार के पापों और बुराइयों को अ-क्रिया कहता हूँ। वास्तव में मैं क्रियावादी हूँ। क्रिया के लिए श्रावकों को उपदेश देता हूँ। मैं कायसुचरित (=अ-हिंसा), चोरी न करना, अ-व्याभिचार, वाक्-सुचरित (=सच बोलना, चुगली न करना, मीठा वचन, बकवाद न करना) मन सुचरित (अ-लोभ, अ-द्रोह, सम्यक्-दृष्टि) अनेक प्रकार के कुशल़ धर्मों को क्रिया कहता हूँ। इसी कारण लोग मुझे 'श्रमण गौतम क्रियावादी है' कहते हैं।"

सेनापति ने विनम्रतापूर्वक प्रश्न किया, "भगवान! क्या कारण है कि आपको श्रमण गौतम अस्ससंत (=आश्वसंत) कहा जाता है?"

"सिंह सेनापति! मैं आश्वास के लिए धर्म-उपदेश देता हूँ, उसी के द्वारा

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

श्रावकों को ले जाता हूँ। मैं परम आश्वास से आश्वासित हूँ, आश्वास के लिए धर्म उपदेश करता हूँ, आश्वास के मार्ग से ही श्रावकों को ले जाता हूँ। इसी कारण मुझे आश्वसंत कहा जाता है।"

सिंह सेनापति भगवान के स्पष्टीकरण से हुलसित हो गया। हाथ जोड़कर भगवान से प्रार्थना करते हुए बोला, "भन्ते! मुझे अपना उपासक स्वीकार करें।"

भगवान ने कहा, "सेनापति! अच्छी तरह सोच-विचार लो। संभ्रान्त हो। तुम्हारे जैसे मनुष्यों को सोच-समझकर निर्णय करना चाहिए।"

भगवान की व्यावहारिक सलाह से सिंह सेनापति संतुष्ट हो गया। मन ही मन सोचने लगा कहाँ भगवान बुद्ध और कहाँ तैर्थिक। कितना संयम एवं शालीनता है सम्यक् बुद्ध की वाणी में। अगर उनकी जगह पर कोई अन्य तैर्थिक होता तो मेरे जैसा शिष्य पाकर मेरे नाम का सर्वत्र ढिंढ़ोरा बजवाता। उसने कहा, "भन्ते! मैं दूसरी बार भगवान की शरण जाता हूँ, धर्म की शरण जाता हूँ, संघ की शरण ग्रहण करता हूँ।"

भगवान ने सिंह से कहा, "तुम्हारा परिवार निगंठों के लिए हमेशा प्याऊ की तरह रहा है। उनके जाने पर पिंड नहीं देना चाहिए, ऐसा विचार मन में मत लाना।"

सिंह सेनापति भगवान के विचारों से अभिभूत हो गया। सोचने लगा कि कितने उदार हैं भगवान! मुझे निगंठों को भी दान देने की सलाह दे रहे हैं। भन्ते! मैं बुद्ध-धर्म एवं संघ की शरण में जाता हूँ।

भगवान ने उसे सुविख्यात धर्म का उपदेश दिया। फलतः सिंह सेनापति को बैठे-बैठे विमल धर्म-चक्षु उत्पन्न हुआ।

अन्त में उसने भगवान से प्रार्थना की, "भन्ते! भिक्षु-संघ के साथ कल मेरे घर भोजन स्वीकार करें।"

भगवान ने हामी भरते हुए कहा, "सिंह! तुम्हारा निमंत्रण स्वीकार है।" सेनापति ने आसन छोड़कर भगवान को प्रणाम किया और उठकर चला गया।

प्रातःकाल जब भोजन तैयार हो गया तब उसने भगवान को आने की सूचना दी। सूचना पाते ही भगवान भिक्षु-संघ के साथ सिंह सेनापति के घर जाकर आसन पर बैठ गए। निगंठ तो सिंह सेनापति से रूठे हुए थे। उसके विरुद्ध घूम-घूमकर चिल्ला-चिल्लाकर दुश्प्रचार करने लगे, "आज सिंह के भोज में मोटे पशु के मांस को पकाया गया है। कितनी बड़ी विडम्बना है कि श्रमण गौतम सिद्ध पुरुष होकर भी मांस का आस्वाद्य लेता है।"

निगंठों की गुस्ताखी का सिंह को जब पता चला तो वह भगवान के पास

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

गया और भगवान से बोला, "भन्ते। निगंठ चिल्ला-चिल्लाकर कह रहे हैं कि भगवान मांस खाता है।"

भगवान बोले, "जानो दो। निगंठ तो सदा से बुद्ध, धर्म तथा संघ की निन्दा करते हैं।"

भगवान और भिक्षु संघ ने डटकर भोजन किया। भोजनोपरान्त हाथ-मुँह धोये और आसन ग्रहण किए। सिंह सेनापति को धर्म कथा सुनाकर आसन से उठकर वह चले गए।

विशाखा

एक समय की बात है। भगवान श्रावस्ती में आराम जेतवन में विहार कर रहे थे। श्रावस्ती में एक परम श्रद्धालु महिला थी। उसका नाम था—विशाखा मृगार माता। जेतवन में भगवान के विहार करने का समाचार पाकर वह भगवान के पास गई और अभिवादन करके एक ओर बैठ गई। भगवान ने धर्म कथा सुनाकर उसे अनुप्राणित किया। वह भगवान के प्रति पूर्णरूप से समर्पित हो गई। वह भगवान को अपने महल में भोजन करवाना चाहती थी। अतः हाथ जोड़कर बोली, "भन्ते! कल भिक्षु-संघ के साथ हमारे घर भोजन करें।"

भगवान ने कहा, "स्वीकार है।"

इसके बाद उसने भगवान को नमस्कार किया और प्रदक्षिणा कर घर चली गई।

उस रात चातुर्दीपक घनघोर वर्षा होने लगी। भिक्षुओं को संबोधित करते हुए भगवान बोले, "भिक्षुओ। जेतवन की तरह चारों द्वीपों में मूसलाधार वर्षा हो रही है। बाहर खड़ा रहकर मेह वर्षा में स्नान करो।"

"अच्छा भन्ते! कहकर चीवर फेंककर मुक्त आकाश तले भिक्षु बूँदों से वे शरीर को तर करने लगे।"

उसी समय विशाखा मृगार माता के भोजनालय में भोजन तैयार हो गया। दासी को बुलाकर उसने उससे कहा, "दासी! भात तैयार है। आराम में जाकर भोजन-काल की सूचना दे आओ।"

जब दासी आराम के पास पहुँची तो देखी आराम में कोई भिक्षु नहीं है। सभी भिक्षु खुली हवा में निर्वस्त्र शरीर को नहला रहे हैं। वह चुपचाप लौट गई। मालकिन के पास जाकर बोली, "आर्ये! भिक्षु आराम में नहीं हैं। बाहर वे वर्षा-स्नान कर रहे हैं।"

विशाखा प्रत्युत्पन्न मति वाली थी। समझ गई आजीवक शरीर को वर्षा खिला

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

रहे हैं। पुनः उसने समय की सूचना देने के लिए दासी को आराम में भेजा। पर उस समय भिक्षु अपने-अपने चीवरों को लेकर विहार में चले गये थे। अतः आराम सूना था। बेचारी क्या करती लौट आई और मालकिन से बोली, "आर्ये। आराम सूना है।"

विशाखा ने तुरन्त भाँप लिया कि भिक्षु चीवरों के लेकर विहार में चले गये होंगे। इसलिए आराम सूना है। तीसरी बार पुनः दासी को आराम भेजा।

दासी को देखकर भगवान ने भिक्षुओं से कहा, "भिक्षुओ! भोजन का समय हो गया है। पात्र-चीवर तैयार कर लो।"

"भन्ते। अच्छा।"

भगवान बुद्ध विशाखा के कोठे पर भिक्षु-संघ के साथ बिछे आसन पर बैठ गए। डटकर सभी ने भोजन किया। जब सब लोग भोजन कर चुके तो विशाखा ने भगवान के हाथ से भोजन-पात्र हटाकर एक ओर बैठ गई।

भगवान को अभिवादन कर वह बोली, "भगवान! मैं आपसे आठ वर माँगती हूँ।"

"विशाखे। मैं वरों से परे हो गया हूँ।"

"भन्ते! जो विधि-विहित हो, निर्दोष हो।"

"विशाखे! बोलो?"

भन्ते! आठ वर इस प्रकार हैं—

1. मैं यावत् जीवन संघ को वर्षा की वर्षिसाटिका (वर्षा के लिये धोती) देना चाहती हूँ।
2. नवागन्तुकों को भोजन देना।
3. प्रस्थान करने वालों को भोजन देना।
4. रोगी को भोजन देना।
5. रोगी परिचारक को भोजन देना।
6. रोगी को दवा देना।
7. सदा सबेरे खिचड़ी देना।
8. भिक्षुणी संघ को उदक साटी (मासिक धर्म के समय पहनने का वस्त्र) देना चाहती हूँ।

भगवान बुद्ध को विशाखा की दूरदर्शिता को भाँपने में देर न लगी। उन्होंने प्रश्न किया, "विशाखे! किस गुण को देखकर तूने आठ वर माँगे?"

वह बोली, "भन्ते। जब चौमासा बिताकर भिक्षु श्रावस्ती में आकर आपसे पूछेंगे," भन्ते! अमुक नाम वाला भिक्षु मर गया। उसकी क्या गति होगी? क्या

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

परलोक है? उसके लिए आप श्रोत-आपत्ति-फल, सुकृदागामि-फल, अनागामि-फल या अर्हत्व का प्रकाशन करेंगे।"

भगवान बोले, "विशाखे! तुम्हारा कहना शत-प्रतिशत सही है। पर तुम आगुन्तक भिक्षुओं से क्या पूछोगी?"

भगवान! मैं उनके पास जाऊँगी और पूछूंगी," भन्ते! क्या मृत आर्य का कभी श्रावस्ती में आगन हुआ था? यदि उनसे यह सकारात्मक उत्तर मिलेगा—मृत भिक्षु श्रावस्ती में पधारा था तो मैं अवश्य यह निश्चय कर लूँगी—उस आर्य ने वार्षिक साटिका को या नवागन्तु भोजन को या गमिक भोजन को या रोगी भोजन को, या रोगी-परिचारका भोजन को, या रोगी भैषज्य को या सदा के यवागू को अवश्य ग्रहण किया होगा। उसको याद कर मेरा मन विभोर-आनन्द होगा, प्रमोद से प्रीति की निष्पत्ति होगी, प्रीति से काया को परम शान्ति प्राप्ति होगी, जब काया शान्त हो जायेगी तो सुखानुभूति होगी, सुखिनी अवस्था में मेरा मन समाधि को प्राप्त होगा और वह रोगी मेरी इन्द्रिय-भावना, बल-भावना, बोध्यांग भावना को समझेगा। भन्ते! इस गुण को देखकर मैंने आपसे आठ वर देने का आग्रह क्या है।"

"साधु! साधु! साधु! विशाखे! तूने जिन गुणों को परखकर आठ वर माँगे हैं, उनकी तुम्हें स्वीकृति देता हूँ।"

इतना ही नहीं, भगवान ने विशाखा मृगार माता का निम्नलिखित गाथाओं से अनुमोदन है।

"जो शीलवती, सुगत की शिष्या प्रमुदित हो अन्न, पान देती है।

कृपणता को छोड़कर शोक-हारक, सुखदायक, स्वर्ग-प्रद दान को देती है।

वह निर्मल, निर्दोष मार्ग को या दिव्यबल और आयु को प्राप्त होगी।

पुण्य की इच्छा वाली वह सुखिनी और निरोग हो चिरकाल तक स्वर्ग-लोक में प्रमोद करेगी।"

उपर्युक्त गाथाओं को सुनाने के बाद वह उठकर चले गए।

विशाखा को संबोधित करने के बाद भगवान ने भिक्षुओं को संबोधित किया—"भिक्षुओ! मैं तुम सबको वार्षिक साटिका, नवागंतुक-भोजन, गमिक-भोजन, रोगी-भोजन, रोगी-परिचारिक-भोजन, रोगी-भैषज्य, सदा के यवागू तथा भिक्षुणी-संघ को उदक साटी ग्रहण करने की अनुमति प्रदान करता हूँ।"

कपिलवस्तु की पुकार

प्रज्ञा जागने के बाद जब भगवान बुद्ध जगह-जगह जाकर राजाओं तथा तपस्वियों को धर्म का उपदेश देकर तथा विपश्यना का अभ्यास करवाकर अमृत-प्राप्ति के

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

ओर उन्मुख करने लगे तो यह कल्याणकारी संदेश कपिलवस्तु नरेश के कानों में पहुँचा।

हर पिता जब अपने यशस्वी पुत्र के मानव-कल्याण सम्बन्धी गुणों एवं मनुष्य के परोपकारी गुणों का आश्रवण करता है तो वह अपने पितृत्व को सार्थक समझने लगता है। शुद्धोधन ने भी जब यह सुना कि उनका पुत्र सिद्धार्थ गौतम अब राजकुमार नहीं अपितु तथागत, अर्हत, शास्ता बन गया है; दोनों अतियों से विमुक्त होकर मध्यम मार्ग का अन्वेषक एवं प्रवर्तक बन गया तो उनका मानस उसी प्रकार प्रफुल्लित हो गया जिस प्रकार प्रातःकालीन रवि-किरणों के स्पर्श से कमल खिल उठता है। उनका मन पुत्र-दर्शन के लिए विह्वल हो उठा।

शद्धोधन के दरबार में कालुदासी नाम का एक व्यक्ति राजा का विश्वस्त था। वह वाक्-पटु था। महाराज ने उसे संदेशवाहक बनाने के बाद कहा, "कालुदासी! एक कहावत है। बहता पानी एवं रमता योगी कहीं भी स्थिर नहीं रहता। सिद्धार्थ गौतम अब एक योगी है। वह सूर्य की किरणों की तरह अपने धर्मोपदेश को फैलाना चाहता है। अतः 'चरैवेति, चरैवेति' का पालन करता है। आज यहाँ है तो कल वहाँ।"

कालुदासी बोला, "महाराज! चिन्ता न करें। मैं भी एक कुशल धावक हूँ। जहाँ कहीं भी तथागत विहार कर रहे होंगे, पहुँच जाऊँगा।"

"कालुदासी! तुम मेरे विश्वस्त एवं वाक् चतुर सेवक हो। मेरी मनोकामना जैसे भी हो, पूरी करो।"

"महाराज! सेवक को आशीर्वाद दें।"

"कालुदासी! जिस कार्य के हेतु तुम जा रहे हो, उसमें तुम्हें सिद्धि प्राप्त हो।"

कालुदासी पता लगाते-लगाते उस स्थान पर पहुँच गया जहाँ भगवान भिक्षु-संघ के साथ विहार कर रहे थे। उसने भगवान को हाथ-जोड़कर प्रमाण किया और परिक्रमा करके एक किनारे बैठ गया।

भगवान ने उससे पूछा, "कालुदासी! यहाँ आगमन का क्या हेतु है?"

"भगवान! आपके पिता का संदेश लाया हूँ।"

"बतलाओ?"

"भगवान! महाराज शुद्धोधन ने कहा है कि जैसे सिद्धार्थ अन्य लोगों को शुद्ध धर्म का ज्ञान करवाकर उनके मन पर संचित मलों का उपशमन कर रहे हैं, वैसे ही मुझे भी दर्शन देकर, शील समाधि एवं प्रज्ञा से अवगत करावें।"

भगवान बोले, "कालुदासी! महाराज के विचारों का स्वागत है। तुम तो

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

अच्छी तरह जानते ही हो कि हर परिव्राजक को सिद्धि प्राप्त करने के बाद माता-पिता, पत्नी तथा पुरवासियों की भिक्षा ग्रहण करनी पड़ती है। वापस जाओ और महाराज से कहकर पूरे राज्य में ढिंढोरा पिटवा दो की बुद्धत्व प्राप्त करने के बाद सिद्धार्थ गौतम अपनी मातृभूमि का दर्शन करने आ रहे हैं।"

"भगवान! आप धन्य हैं। मैं महाराज की ओर से, सारी प्रजा की ओर से तथा अपनी ओर से कृतज्ञता विज्ञपित करता हूँ?" यह कहकर वह कपिलवस्तु वापस आ गया।

कपिलवस्तु के लिए भगवान बुद्ध का प्रस्थान

सोमवार का दिन था। रविवार को रात्रि के प्रथम प्रहर में भगवान बुद्ध ने आनन्द एवं भिक्षु संघ से विचार-विमर्श कर लिया था। अतः प्रातःकाल सभी भिक्षु नित्य-क्रिया सम्पन्न किए और नहाए-धोये। तत्पश्चात् सभागृह में बैठकर कुछ समय विपश्यना का अभ्यास किये। साधना पूरी होने के बाद भगवान ने उन्हें धर्म कथा का पान कराया। इसके बाद भिक्षु-संघ को संबोधित किए। फिर उन्होंने आनन्द को बुलाया।

बोले, "आनन्द! आज कपिलवस्तु को प्रस्थान करना है। बीच-बीच में जो जनपद मिलेंगे, उनके केन्द्र स्थान पर रुक-रुककर विहार करेंगे और धर्म-देशना देंगे।"

आनन्द बोला, "भगवान! आपका निर्णय अत्यन्त ही उत्तम है। सब भला तो जग भला, पर मातृभूमि का उद्धार हुआ तो विश्व का कल्याण समझें।

"आनन्द! हम लोग प्रजातंत्र और गणतंत्र के अनुगामी हैं। अतः सबकी राय ले लो।"

आनन्द ने एक-एक भिक्षु को भगवान के विचारों से अवगत कराया और अन्त में सबकी अनुमति पाकर भगवान से बोला, "भन्ते! सब सहमत हैं।"

"तो भिक्षुओ! चलो, चलें।"

आगे-आगे भगवान और उनके पीछे आनन्द और अन्य भिक्षु। जहाँ रात होती वहाँ रुक जाते और भिक्षा-भोजन से अपनी रसना को संतुष्ट करते।

शाक्य जनपद

कालुदासी के पैरों में पंख लग गया। उसने कपिलवस्तु पहुँचकर महाप्रजापति और राजा शुद्धोधन को यह सुखद समाचार दिया कि भगवान बुद्ध जनता-जनार्दन को दर्शन देने और दर्शन करने कपिलवस्तु आ रहे हैं। शुद्धोधन स्वागत की तैयारी में जुट गए।

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

भगवान के स्वदेश आगमन का समाचार दावाग्नि की तरह सारे गणराज्य में व्याप गया। सारे शाक्य भगवान का बाट उसी प्रकार जोहने लगे जैसे पपीहा कार्तिक माह के स्वाति नक्षत्र के मेघों की प्रतीक्षा करता है।

विरहाग्नि-विदग्धा

यशोधरा पात्यव्रत्य धर्म की साक्षात् मूर्ति एवं माननी नारी थी। रूप-लावण्य अद्भुत था उसका। निष्ठा, लगन और दृढ़ता के साथ शील के पाँचों तत्त्वों का वह रात-दिन पालन करती थी। मल तो उसके चित्त में था ही नहीं पर नारी-स्वाभिमान उसके मन में कूट-कूट कर भरा हुआ था। जब मगध में भगवान की तपस्या का पता शुद्धोधन को चला था तब पुत्र-मिलन के लिए आतुर हो उठे। उन्होंने यशोधरा से भी वहाँ चलने का आग्रह किया पर माननी ने महाराज के प्रस्ताव को तर्क के साथ ठुकरा दिया। पर, भगवान की याद में वह उसी तरह छटपटा रही थी, जैसे महाशक्ति सीता अशोक वन में राम के वियोग में झुलस रही थी। एक अन्तर अवश्य था--सीता परवश थीं और यशोधरा स्वतंत्र।

यशोधरा को पक्का विश्वास था कि सिद्धार्थ गौतम चाहे कुछ भी हो, एक न एक दिन उसके सामने अवश्य प्रकट होंगे। जब राजमहल में कालुदासी द्वारा भगवान बुद्ध की वापसी का समाचार मिला तो वह सोचने लगी, "मैं भगवान के सम्मान में कैसे स्वागत गीत गाऊँगी? रोते-रोते तो मेरी वाणी गूँगी हो गई है। पर जो भी हो, मैं उनके कमलवत चरणों पर पड़ी हुई रज का पान अवश्य करूँगी। आप मेरे पतिदेव हैं। जब तक आप इस धरा-धाम पर विराजमान रहेंगे तब तक मैं भी रहूँगी।"

वह भगवान के मिलन के अवसर पर कुछ भेंट देना चाहती थी पर जब गहन विचार करती है तो उसे यह अहसास होता है कि उन्हें देने के लिए मेरे पास कुछ भी नहीं है। शरीर तो अवश्य है पर वह तो नश्वर है। इस शरीर से कैसे सिद्धि प्राप्त करूँ। अपने कर्म का फल मनुष्य को अवश्य मिलता है। जैसा बीज बोया जायेगा, वैसा ही फल भी मिलेगा।

वह मन ही मन भगवान से प्रश्न करती है, "हे नाथ। आप तो शील, समाधि और प्रज्ञा का मार्ग अपना कर नर से नारायण बन गए पर मैं तो अबला की अबला ही रह गई। मैं आपकी उपासिका बनकर पूजा करूँगी। मैं अपनी अश्रुओं की वर्षा से आपके चरणों को धो-धोकर उसका चरणामृत पान करूँगी। विरह-बीज बोकर मैं रो-रोकर आपको प्राप्त करूँगी।"

प्रतीक्षा करते-करते वह थक गई। अतः उसके भावुक मन से यह उद्गार

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

निकल ही गया, भगवान को वापस लाने के लिए कपिलवस्तु से बहुत-से लोग गये पर कोई अभी तक वापस नहीं लौटा। हाय! नाथ अभी तक नहीं लौटे। उधर वह अमृत का पान कर रहे हैं और इधर मैं खारी आसुओं को गटक रही हूँ। अपनापन अपनाकर अपनी कथरी मैं स्वयं सिल लूँगी।

दर्शन की उत्कट प्रतीक्षा में वह बेचारी बेचैन होकर कहती है, "नाथ। अभी तक आपके आने का समय नहीं आया। मैं कब तक आपकी प्रतीक्षा करूँ?" शंका मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु है। शंका शब्द के उच्चारण मात्र से उसे पाप-बोध होता है। अतः भगवान से मन ही मन निवेदन करती है, "भगवान! इस अकिंचन को क्षमा करें।"

यशोधरा-राहुल

यशोधरा भगवान को ध्यान दिलाने लगी, "भगवान्! आप सारे विश्व को सुधर्म का पथ अवश्य दिलावें पर अपने घर को भूलें नहीं।"

वह अलक्ष्य भगवान से तर्क-वितर्क कर ही रही थी कि बीच में राहुल आ टपका। वह यशोधरा से प्रश्न करता है, "माँ। आज का दिन भी प्रतीक्षा करते-करते बीत गया पर पिताजी का कोई समाचार नहीं मिला। क्या ऐसा ही कल, परसों, नरसों और तरसों भी इन्तजार में चला जाएगा?"

यशोधरा बोली, "बेटे! मेरी गोद में तो चन्द्रमा जैसा पुत्र है। उसी से मनोरंजन कर शेष समय काट लूँगी।"

"माँ! मेरी तो यही इच्छा है कि जैसे-तैसे पिताजी के सन्निकट पहुँच जाऊँ पर तुम्हें अकेली छोड़कर कैसे जा सकता हूँ?"

यशोधरा बोली, "बेटा! तुम्हारे पिताजी मुझे अकेली छोड़कर चुपचाप चले गए। क्या तुम भी उन्हीं का अनुगमन करोगे?"

राहुल बोला, "माँ! कोई लड़की ढूँढ़कर मेरी शादी कर दो। मेरी अनुपस्थिति में बहू के साथ प्रसन्न रहना।"

यशोधरा बोली, "राहुल। मेरी चिन्ता छोड़। क्या तुम बहू को भी विरहाग्नि में झोंकना चाहते हो?"

राहुल बोला, "माँ! गलती से मुँह से यह शब्द निकल पड़ा। नादान हूँ। क्षमा करो।"

"बेटा! सुयोग का भी एक योग होता है। पर भाग्य में जो लिखा होता है, उसे भोगना पड़ता है।"

राहुल ने यशोधरा से पूछा, "माँ! क्या तुम्हें अपनी करनी पर खेद नहीं है?"

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

"बेटा! क्यों नहीं। दुःख तो मुझे अभी भी है।"

राहुल बोला, "माँ! तुमने तो दुःख स्वयं ओढ़ लिया है। क्या तपना तुम्हें अच्छा लगता है।"

"बेटे! तुम्हारे पिता ने क्या घोर तपस्या के ताप सहन नहीं किया है? तुम सतत एवं गंभीर अभ्यास का श्रम क्यों कर रहा है?"

"माँ! पिताजी को तो तपस्या करने से सिद्धि प्राप्त हो गई। पर, मुझे समझ मिल रही है।"

"बेटा! इसी प्रकार तप द्वारा मुझे अपनी चित्तवृत्ति को परिशुद्ध करने का लाभ प्राप्त हो रहा है। ताप एकमात्र मेरा साथी है। अपने दुःख में ही मुझे बहुत बड़ा सहारा मिलता है। मुझे दुःख से बहुत अधिक प्यार है क्योंकि इसके द्वारा मेरे मन में दूसरों के प्रति सहानुभूति एवं समता का भाव उत्पन्न होता है।"

"माँ! फिर तू सदैव रोया करती है?"

"बेटे! क्या करूँ? मुझे रोने की इच्छा होती है।"

"माँ! इच्छा की परतंत्रता अच्छी नहीं है। हमें मन का गुलाम नहीं अपितु उसका स्वामी बनना चाहिए।"

"बेटा! क्या तुम नहीं जानते कि मैं सदा अपने मन पर संयम, त्याग एवं दृढ़ इच्छाशक्ति की लगाम लगाए रहती हूँ। मैं अपने मन को दबाकर रखती हूँ। क्या कभी उसे साँस लेने का मौका न दूँ। मेरे चित्त पर पूर्व जन्म का जो मैल संगृहीत है, रो-रोकर उसका प्रक्षालन करती हूँ। मनुष्य केवल शोकावस्था में ही नहीं रोता बल्कि अह्लादावस्था में भी अश्रु-विसर्जन करता है। अश्रु-तीर्थ में सुख और दुःख का संगम होता है।"

"माँ! कितनी बड़ी बिडम्बना है। पिताजी के वियोग में भीतर से तुम रात-दिन रोया करती है और बाहर से झूठ-मूठ में मान प्रकट करती हो।"

"बेटा! मैं असत्य-भाषण नहीं करती। दुखी अवश्य हूँ पर धर्म-मार्ग पर दृढ़ता के साथ आरूढ़ हूँ।"

"माँ! पिता जी ने तुम्हें तो अपने पास आने से रोका नहीं है। तुमने तो स्वयं वहाँ जाने से इन्कार कर दिया।"

"बेटा! यह बात मुझसे मत पूछो। यदि तुम्हारा विवाह होगा तो तुम्हारी पत्नी तुमसे यह प्रश्न अवश्य पूछेगी।"

"माँ! तुम मेरे लिए एक पहेली बन गई हो। तुम्हारी सहेली कौन है? कल्पना।"

"बेटा! कल्पना ही अस्तित्व में आकर सत्य होती है।"

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

"माँ! मैं तो पिता के आने की कल्पना कर रहा हूँ पर वे नहीं आए।"

"बेटा! निराश मत हो। वे अवश्य आयेंगे।"

अचानक गली-गली में, महल-महल में कोलाहल होता है। समवेत स्वर में आवाज होती है—"हम सब बड़े भाग्यवान हैं। भगवान बुद्ध पधार रहे हैं।" यशोधरा भाव-विह्वल हो बोल उठती है। "ऐसा ही है। अब वे निश्चित रूप से आ गए।"

राहुल माँ से प्रश्न करता है, "माँ! क्या पिताजी आ रहे हैं?"

"हाँ, बेटा! ध्यान से सुन ले। अच्छा तुम्हें उनसे जो-जो चीजें माँगनी हैं, उनका चुनाव कर लो।"

यशोधरा का आत्मचिंतन

यशोधरा अपने मन से कहती है, "हे मेरे मन! अब तुम्हारी परीक्षा का समय आ गया है। सावधान रहना। बात न बिगड़ने पावे। उनके अभाव में मैंने तुम्हें बन्धन में बाँध रखा था। उस समय मुझे किसी प्रकार का लोभ न था पर अब तो वह नगर में पधार चुके हैं। देखो, उनके सम्मान में सारे नगर में नगाड़े बज रहे हैं। अब मेरे स्वामी कुछ ही कदम आगे हैं। मेरा सारा जीवन उन्हीं पर आश्रित है। यदि वह राजगृह से कपिलवस्तु पैदल आ सकते हैं तो मेरा घर तो केवल दो ही कदम की दूरी पर है। मेरे पास आने में कितनी देरी लगेगी। मेरा तो कोई कसूर नहीं है। पीठ तो उन्होंने फेरी है।"

सभी लोग भले ही आगे बढ़कर उनका दर्शन प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त करें। सबका उद्धार करने वाले की यदि मेरे पास आकर दर्शन देने की इच्छा होगी तो आ जायेंगे। मैं तो उनकी दासी हूँ। पर मैं यहीं रहूँगी।

भगवान बुद्ध और शुद्धोधन की भेंट

भगवान बुद्ध का कपिलवस्तु में पदार्पण हुआ, शुद्धोधन ने उनका भव्य स्वागत किया। अभिवादन करने के बाद महाराज शुद्धोधन बोले, "सिद्धार्थ! तुम्हें देखे कई वर्ष बीत गये। उत्सुकतापूर्वक सारा राजपरिवार एवं प्रजा वर्ग तुम्हारी बाट जोह रहा था। दर्शन देकर तुमने बड़ा पुनीत कार्य किया है।"

सिद्धार्थ गौतम बोले, "राजन्। इस संसार में कोई चीज स्थिर नहीं है। जो आज है वह कल नहीं रहेगी। सब कुछ अनित्य है। राग, द्वेष और मोह को त्याग दीजिए।"

शुद्धोधन बोले, "सिद्धार्थ! आज तुम्हारा राज्याभिषेक कर देना चाहता हूँ।"

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

"राजन्। मैं अब परिव्राजक हूँ। लोभ, लाभ, राग और वासना से विरत हूँ। राज्य तो नहीं लूँगा पर राज-उद्यान में भिक्षु-संघ को रहने की अनुमति अवश्य प्रदान करें।"

"राजा ने कहा, "तथास्तु।"

भगवान भिक्षु-संघ के साथ उद्यान में विहार करने लगे।

राजा क्या करते। राज-महल लौट गये।

भिक्षाटन करते हुए यशोधरा को पति परमेश्वर का दर्शन

दूसरे दिन भगवान बुद्ध भिक्षु-संघ के साथ चीवर पहने और हाथ में भिक्षापात्र लेकर नगर में भिक्षाटन करने लगे।

जब यशोधरा ने सिद्धार्थ को भिक्षा माँगते हुए देखा तो उसका मन कातर हो उठा। वह अपने उद्गारों को छिपा न सकी। बोली, "कपिलवस्तु नगर के राजकुमार भिक्षुक बनकर आये हैं। राजभोग से वह संतुष्ट नहीं हैं। इसलिये निर्धन, श्रेष्ठी और मजदूरों के घर जा-जाकर भिक्षा-पात्र सामने कर भीख माँग रहे हैं। भगवान इतने भूखे हैं कि धैर्य और संयम न रख सकें। मैं उनकी दासी कितने दिनों से उनके दर्शन की प्यासी हूँ। मैं अपनी और उनकी लज्जा लेकर बैठी हूँ। कितनी विचित्र बात है कि जो व्यक्ति स्वयं दूसरों को दान दे सकता है वही दूसरों के सामने हाथ पसार रहा है। जो दूसरों से भीख माँग रहा है वह अपने पुत्र राहुल को क्या शिक्षा देगा।"

शुद्धोधन का सड़क पर पुनः आगमन

गौतम बुद्ध की भीख माँगने की खबर वन की आग के समान महाराज के दरबार तक पहुँच गई। वह दौड़े-दौड़े अपने पुत्र के सामने आये और बोले, "सिद्धार्थ! मुझे शर्मिन्दा क्यों कर रहे हो? मुझमें इतनी सामर्थ्य तो है कि तुम्हें एवं तुम्हारे संघ को आजीवन भोजन करा सकता हूँ।"

भगवान बुद्ध बोले, "राजन्! यही हमारी वंश-परम्परा है।"

"सिद्धार्थ! यह अलीक है। हमारे वंश में जो भी उत्पन्न हुआ, उसने कभी भीख नहीं माँगी। क्षत्रिय, क्या कभी भीख माँगता है?"

"राजन्! मेरा वंश बुद्धों का वंश है। भिक्षाटन ही हमारे वंश के जीवन-यापन की परम्परा रही है।"

शुद्धोधन क्या करते, बोले, "सिद्धार्थ! हरि इच्छा बलवान!"

भगवान ने शुद्धोधन से कहा, "राजन्। सांसारिक प्रपंच एवं व्यामोह त्याग कर

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

सद्धर्म के अनुगामी बनो। अक्षय सुख की प्राप्ति के लिये शील का पालन करो।"

"सिद्धार्थ। मैं शील, समाधि और प्रज्ञा द्वारा अष्टांगिक मार्ग का पालन करूँगा।"

राजमहल में बुद्धदेव का आगमन

महाराज शुद्धोधन आदर एवं सम्मान के साथ भगवान बुद्ध को राजमहल में ले गए। सारा परिवार उनके सामने झुक गया। सबका अभिवादन स्वीकार करने के बाद तथागत ने ध्यान से चारों ओर निहारा पर कहीं भी राहुल एवं यशोधरा दिखलाई न पड़े। वस्तु स्थिति को वह भाँप गए। शुद्धोधन से उन्होंने प्रश्न पूछा, "राजन्! यशोधरा दिखलाई नहीं पड़ रही है। कहाँ है?"

"भन्ते! वह अपने महल में है। कहलवाया तो मैंने अवश्य था पर न तो वह आई और न ही राहुल आया।"

"राजन्! उसमें पातिव्रत्य धर्म का तेज एवं तपाग्नि की शक्ति समाहित है। वह नारी-जाति का शिरमौर है। पारिवारिक एवं सामाजिक इतिहास में उसका तथा उर्मिला का त्याग स्वर्णाक्षरों में अंकित किया जायेगा। मैं खुद उससे मिलने जाऊँगा।"

सर्वप्रथम राहुल ने तथागत को शुद्धोधन के साथ आते देखा। वह फूल कर कुप्पा हो गया। उछलकर कहने लगा, "माँ! पिताजी आ रहे हैं। अब तो सारे उत्पातों का उपशमन हो जायेगा। लो, अब तो गर्विता गोपा का स्वाभिमान रह गया। तुम्हें इनके सामने जितना रोना है, रो ले। ये स्वयं प्रकाशित प्रभात हैं और तुम प्रातःकालीन शबनम हो।"

भगवान चुपचाप राहुल की वाणी सुन रहे थे। वह बोलता ही चला जा रहा था। उसकी वाणी से एक ओर तो पिता का अतुलनीय महत्व एवं परोपकार उद्भासित हो रहा था और दूसरी ओर माँ का त्याग।

वह पुनः बोल उठा, "माँ। मुझे तुम्हारे अंचल के समान इनकी छाया पुण्यात्मा लगती है। कौन द्युति इतनी विमल हो सकती है!"

फिर राहुल पिता और माता दोनों की महत्ता का प्रतिपादन करता हुआ पिता से कहता है, "पिताजी। आपकी गहन तपस्या शब्दायमान हो रही है पर माँ की शब्द-रहित मौनता भी अधिक महत्वपूर्ण है। माँ की शुष्क काया में इतना अधिक जल भरा हुआ है कि उसका थाह लगाना दुष्कर है। क्या यह आश्चर्य की बात नहीं है? आपको तो घोर तपस्या द्वारा सिद्धि प्राप्त हुई है पर बेचारी माँ को तपने क्या लाभ मिला।"

बड़ा ही अजीब प्रश्न था राहुल का। भगवान ने पुत्र को सार-गर्भित उत्तर

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

दिया। वह राहुल से बोले, "बेटा। तुम्हारी माँ के सामने जब स्वयं अमिताभ का आगमन हो गया है तो उसे किसी अभिलषित वस्तु की क्या आवश्यकता है? क्या यह कम गौरव की बात है कि यशोधरा को तुम जैसा पुत्र मिला है।"

मनौअल

भगवान करुणनिधान थे। नारी जाति के प्रति उनके मन में अगाध-सम्मान था। यशोधरा से उन्हें अपूर्व दान लेना था। अतः यशोधरा के मनश्ताप को प्रकृतस्थ बनाने के लिए बोले, "मानवती यशोधरा! तुम्हारे स्वाभिमान की विजय हुई। अब अभिमान का विसर्जन कर दो। दात्री! तुम्हारे द्वार पर अपने आप तथागत आया है। मेरे लिए गरीब-अमीर, राजा-रंक सभी समान हैं। अतः तुम्हीं बताओ, किससे भिक्षा न लूँ। जो दुःखी और अज्ञानी हैं, उन्हें मैं अपनाने योग्य समझता हूँ। मैं इस बात को स्वीकार करता हूँ कि गौतम मानसिक दृष्टि से बड़ा कमजोर था। इसीलिए आत्मशुद्धि के लिए छिपकर गया। पर सौभाग्यवती इसका कितना कल्याणकारी परिणाम निकला। मैंने अमृत की खोज कर ली। अपना प्रिय जानकर सिद्धार्थ की निर्दयता को क्षमा कर दो। मैत्री, करुणा, मुदिता एवं उपेक्षा इन चारों ब्रह्म विहारों का पालन करो अब मैं शुद्ध भगवान बुद्ध बन गया हूँ।"

भगवान ने विमल भावों को सुनकर यशोधरा का मन शीलत एवं विमल हो गया। भाव-विभोर होकर वह बोल उठी, "संसार के भगवान! आओ। मेरे पास आकर आपने मेरी प्रतिष्ठा की रक्षा कर ली। आपने मुझ जैसी अकिंचन नारी को महान होते हुए भी जो महत्व एवं सम्मान दिया है, वह आपकी सबसे बड़ी विजय है। मैं तो संध्या का मार्ग जोह रही थी। पर आप प्रातःकाल ही आ गए। कितने सौभाग्य की बात है कि मेरे कपाट खुले हुए थे। अब आप फरमाएँ? आपको कौन-सा नया दान दूँ। अपने स्वामी को पाकर मैं सारे उलाहनों को भूल गई। एक ओर तो मेरी सारी जिज्ञासायें शान्त हो गईं और दूसरी संशय की अँधेरी रात विदीर्ण हो गई। यह प्रणति ही मेरी उन्नति है। मेरा प्रेम सफल हो गया। जब आपकी कृपा से मैं भवसागर से पार हो गई तो चिन्ता क्यों करूँ? कृपाकर मेरे सिर पर आपने हाथ रखा है। मैं अपने आपको आपके चरणों पर न्यौछावर करती हूँ। मैं अपनी खारी आँसुओं का चरणामृत बनाकर पान करूँगी।"

यशोधरा को आश्वस्त करते हुए बुद्ध बोले, "गोपे! कातर मत हो। नारी कभी भी हीन नहीं होती। वह मानसिक एवं शारीरिक दृष्टि से दाया, ममता, त्याग एवं उदारता की मूर्ति होती है। कठिन तपस्या से जब मैं शक्तिहीन हो गया था तो सुजाता की खीर से मेरी प्राण रक्षा हुई। मार जब मेरी तपस्या को भंग करने आया

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

तो तुम्हारे रूप-लावण्य एवं सुखद समर्पण को याद कर उसे मार भगाया। किसी मधुर स्वर वाली नारी के कण्ठ से मैंने मन का यह मंत्र सुना था कि अति अधिक नहीं करनी चाहिए। अधिक तानने से तन्त्र के तार-तार बिखर जायेंगे। सचमुच तुमने सही ढंग से पत्नी-धर्म का पालन किया है।"

यशोधरा ने कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहा, "भोग! तू यहाँ से दूर चला जा। मेरे लिए योग मार्ग ही श्रेष्ठ है।"

इसके बाद राहुल से उसने कहा, "बेटा! तुम्हारे पिता ने जिस बुद्धत्व की परम्परा को पुनर्जीवित किया है, उसमें शामिल हो जा।"

राहुल की दीक्षा

राहुल ने भगवान से कहा, "तात! मैं आपके चरणों की वन्दना कर रहा हूँ। मुझे अष्टांगिक मार्ग सिखलाएँ! शील, समाधि और प्रज्ञा का अभ्यास करवायें। कृपाकर मेरे असत् विचारों का शमन कर सत्य एवं ज्ञान-मार्ग की ओर उन्मुख करें।"

बुद्ध ने राहुल से कहा, "वत्स! आज तुम्हारे त्याग से मैं कृतार्थ हो गया। उत्तराधिकार के रूप में मध्यम मार्ग का अनुगमन करो। तत्त्वज्ञान एवं अमृत दोनों साथ प्राप्त करो। बेटे! अब तुम बुद्ध, धर्म और संघ की शरण ग्रहण करो?"

राहुल पिता के आदेश का पालन करते हुए समर्पित भाव से बोल उठा—

बुद्धं शरणं गच्छामि।
धम्मं शरणं गच्छामि।
संघ शरणं गच्छामि॥

यशोधरा ने भी बुद्ध, धर्म एवं संघ की शरण ग्रहण कर ली।

शाक्य राजकुमारों की प्रव्रज्या

भगवान राहुल को प्रव्रज्या देकर कपिलवस्तु से मल्लों के कस्बे (निगम) अनुपिया चले गए और वहीं पर विहार करने लगे। शाक्य नौजवान राहुल के प्रव्रजित होने के बाद सुधर्म में शामिल होने के लिए उत्कंठित हो गए।

शाक्य कुलोत्पन्न शुक्लोदन के दो चिरंजीवी थे। अनिरुद्ध और महानाम। इन दोनों में से सर्वप्रथम प्रव्रज्या की भावना महानाम के मन में उपजी। अनिरुद्ध से अनुमति लेना आवश्यक था। अतः वह अनिरुद्ध के पास गया और बोला, "तात अनिरुद्ध! राहुल तो प्रव्रजित हो गया, पर हम अभी प्रव्रजित नहीं हुए। बोलो तुम प्रव्रजित होगे या मैं।"

अनिरुद्ध बोला, "महानाम! मैं तो जन्म से सुकुमार हूँ। अतः तुम्हीं गृह-त्याग करो?"

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

महानाम ने अनिरुद्ध को समझाते हुए कहा, "अनिरुद्ध! गृहस्थी का माया जाल सुरसा के मुँह के समान विकराल है। हमारे पास सैंकड़ों एकड़ खेत हैं। रबी की बोआई क्वार और कार्तिक में होती है और कटाई चैत-बैशाख में। खरीफ की बोआई आषाढ़ में होती और कटाई क्वार में। बोआई, जोताई, कटिया, सिंचाई, दवाई, ओसाई, ढोआई आदि काम हर साल करवाना पड़ता है।"

अनिरुद्ध को कृषि-कार्य की समस्याओं एवं कठिनाइयों का सम्यक ज्ञान हो गया। बोला, "महानाम! कामों का कोई अन्त नहीं है। वासनाओं एवं कामनाओं का अन्त कहाँ है?"

अनिरुद्ध की हाँ में हाँ मिलाते हुए महानाम बोला, "अनिरुद्ध! गृहस्थी के कामों का अन्त नहीं है।"

अनिरुद्ध शरीर एवं मन दोनों से सुकुमार था। उसे गार्हस्थ्य जीवन से प्रब्रजित जीवन कल्याणकारी और शुभ लगा। तुरन्त उसका मन वैराग्योन्मुखी हो उठा। उसने महानाम से कहा, "महानाम! गृहस्थी का उत्तरदायित्व तुम लो। मैं संन्यास लूँगा।"

महानाम बोला, "जैसी इच्छा हो, वैसा करो।"

अंतिम निर्णय लेने के बाद अनिरुद्ध माँ के पास गया और चरण-रज माथे पर लगाकर बोला, "माँ! मुझे प्रब्रज्या लेने की आज्ञा प्रदान करें?"

माँ बोली, "अनिरुद्ध! मैं तुम्हारी और महानाम दोनों की माँ हूँ। पुत्रों के प्रति माँ का आजीवन प्रेम रहता है। अतः मैं तुम्हें प्रब्रज्या की अनुमति कैसे दूँ?"

अनिरुद्ध का संकल्प अटल था। उसने दोबारा यही प्रार्थना की पर उत्तर नकारात्मक रहा। संकल्पी हार कब मानता है। तीसरी बार उसने प्रार्थना की। उसकी माँ चतुर थी। उसे यह बात ज्ञात थी कि शाक्य जनपद का शासक भद्दिय सांसारिकता में आसक्त है। अतः वह वैभव नहीं त्याग सकता। अच्छा उपाय देखकर बोली, "अनिरुद्ध! यदि भद्दिय तुम्हारे साथ प्रब्रजित होने के लिए तैयार हो तो मैं तुम्हें अनुमति दे सकती हूँ।"

अनिरुद्ध भद्दिय के पास गया और बोला, "मेरी माँ ने तुम्हारे साथ प्रब्रज्या की अनुमति दी है। भद्दिय! मेरी प्रब्रज्या तुम्हारे अधीन है।"

भद्दिय बोला, "अनिरुद्ध! मुझे मायाजाल प्रिय लगता है। अकेले प्रब्रज्या ग्रहण कर लो। मैं अपनी अधीनता से तुम्हें मुक्त करता हूँ।"

अनिरुद्ध बोला, "भद्दिय! तुम मेरे अंतरंग मित्र हो। अतः मेरी माँ की इच्छा की संपूर्ति के लिए हम दोनों को साथ-साथ प्रब्रजित होना है।

भद्दिय बोला, "अगर ऐसा है तो सात वर्ष की प्रतीक्षा करो?"

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

अनिरुद्ध बोला, "भद्दिय! इतना विलम्ब अच्छा नहीं है।"

भद्दिय क्या करता? समय-सीमा घटाता चला गया। पर अनिरुद्ध रिरियाता रहा। भद्दिय का दिल करुणा से भर गया। अन्त में उसने कहा, "अनिरुद्ध! केवल सात दिन रुको। राज्य का उत्तरदायित्व भाइयों एवं पुत्रों को सौंपकर मैं तुम्हारे साथ प्रव्रजित हो जाऊँगा।"

हामी भरकर अनिरुद्ध सात दिन रुक गया। सप्ताहांत के बाद भद्दिय, अनिरुद्ध, आनन्द, भृगु, किम्बल जैसे ही प्रस्थान के लिए उद्यत हुए, देवदत्त ने उन्हें देख लिया। उसने मन ही मन सोचा सिद्धार्थ गौतम और मेरे बीच साँप और नेवले जैसी शत्रुता है। सामने से तो उसे जीत नहीं सकता हूँ। पर बाहर से उसका अनुयायी और भीतर से उसका दुश्मन बनकर घात-प्रतिघात कर सकता हूँ। यह सोचकर वह भी शाक्य कुमारों के साथ जाने के लिए उद्यत हो गया।

चले थे तो सब चतुरंगिणी सेना लेकर पर कुछ दूर जाने के बाद अपने नाई से बोले, "उपाली। हमने अपने गहने और कीमती वस्त्रों को उतारकर गठरी में बाँध दिया है। उनसे तुम्हारे परिवार का पालन-पोषण हो जायेगा। गठरी लो और सेना के साथ कपिलवस्तु लौट जाओ।"

उपाली ने गठरी ग्रहण कर ली। छओ शाक्य भगवान के दर्शन के लिये अग्रसर हो गए।

लागी लगन छोटे न

उपाली का जन्म एक नाई परिवार में हुआ था। बचपन से ही उसे शाक्य कुमारों की सेवा में जोत दिया गया। वह स्वभाव से भीरु तथा लगन का पक्का था। वह शाक्यों द्वारा प्रदत्त आभूषणों और वस्त्रों की गठरी लेकर कपिलवस्तु की ओर लौटा तो अवश्य पर उसके मन में शंका का भूत सवार हो गया कि गठरी के साथ जब लोग मुझे देखेंगे तो सोचेंगे कि लालच में आकर इसने अपने साथियों को मार डाला है। शक में आकर चण्ड शाक्य मुझे मार डालेंगे। अतः उसने गठरी को एक पेड़ की डाल में टांग दिया और शाक्यों के पीछे-पीछे चल दिया।

जब शाक्यों की निगाह उस पर पड़ी तो वे पूछ बैठे, "उपाली! तुम हम लोगों के पीछे लौट क्यों आए?"

"आर्य-पुत्रो! मेरा मन भगवान के दर्शन के लिए लालायित हो उठा। भोग की जगह त्याग उत्तम है। अतः गठरी को पेड़ की डाल पर लटकाकर महानुभावों के पीछे-पीछे चल दिया। जहाँ मालिक वहाँ सेवक।"

शाक्य बोले, "उपाली! अच्छा किया। कपिलवस्तु न जाकर हमारे पीछे-पीछे चल

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

दिया। तुम्हें अकेला वापस देखकर चण्ड शाक्यों के मन में यह शंका अवश्य होती कि इसने राजकुमारों की हत्या की है। क्रोधान्ध होकर वे तुम्हारा गला घोंट देते।"

चलते-चलते सातो अनूपिया पहुँचे। भगवान की वन्दना और प्रदक्षिणा करके एक किनारे बैठ गए। अल्प विश्राम के बाद शाक्य-कुमारों ने भगवान बुद्ध से निवेदन किया—

"भन्ते! सेवक का उद्धार मालिकों से पहले होना चाहिए। आप सर्वप्रथम उपाली को अहंकार विनष्ट क्षत्रियों के सद्विचार से भगवान की प्रसन्नता की सीमा न रही। उन्होंने सर्वप्रथम उपाली को प्रव्रज्या और उपसम्पदा दी और प्रव्रज्या दें।" बाद में शाक्य-कुमारों को।

भद्दिय विद्यानुरागी था। लगन, निष्ठा एवं एकाग्रचित्तता से एक वर्ष के अन्दर ही वह तीन विद्यायों में निष्णात हो गया। अनिरुद्ध ने दिव्यचक्षु को प्राप्त किया और आनन्द ने सोतापत्ति फल को प्राप्त किया।

देवदत्त तामसिक वृत्ति का था। ईर्ष्या एवं द्वेषाग्नि से उसका क्रूर मन सदा जलता रहता था। वह सिद्धि नहीं, ऋद्धि का आकांक्षी था। अतः उसने पृथक्जनों (=अनार्यों) वाली ऋद्धि को सम्पादित किया।

कौशाम्बी

भगवान बुद्ध अनूप्रिया से कौशाम्बी की ओर चल पड़े। कौशाम्बी पहुँचकर वह घोषिता राम में विहार करने लगे। भिक्षु संघ के साथ देवदत्त भी वहाँ पहुँच गया। एक दिन एकान्त में बैठकर कुचक्र-मग्न हो गया। सोचने लगा—मुझे लाभ और सत्कार चाहिए। अपने इस अभीष्ट को पूरा करने के लिये मैं किसे प्रसादित करूँ? अचानक उसे अजातशत्रु का ध्यान आया।

अपने लक्ष्य को पूरा करने के लिए कम्बल, चीवर तथा भिक्षा-पात्र लेकर वह राजगृह की ओर चल पड़ा। बहुरुपिया तो था ही। राजगृह पहुँचकर उसने एक बालक का रूप धारण कर लिया और सांकली मेखला (=तगड़ी) पहन कर अजातशत्रु की गोद में बैठ गया। अजातशत्रु डर गया। मौका पाकर देवदत्त राजकुमार से बोला, "अजातशत्रु!

"क्या तुम्हें भय लग रहा है?"

"हाँ, पर तुम कौन हो?"

"कुमार! मैं देवदत्त हूँ।"

"भन्ते! यदि सचमुच तुम देवदत्त हो तो असली रूप में प्रकट हो।"

देवदत्त का मन मयूर नाचने लगा। संघाटी, पात्र-चीवर को धारण कर वह

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

अपने असली रूप में अजातशत्रु के सामने खड़ा हो गया। राजकुमार देवदत्त के अद्भुत चमत्कार से अभिभूत हो गया।

राजा तो था ही। पाँच सौ रथों के साथ सायं-प्रातः देवदत्त का दर्शन करने लगा। प्रतिदिन देवदत्त तथा उसके साथियों के आहार के लिए पाँच सौ थालियों की समुचित व्यवस्था हो गई।

महन्ताई के लिये देवदत्त की ललक

कामनाओं का कभी अन्त नहीं होता। एक सम्पन्न होती है और दूसरी पैदा होती है। लाभ, सत्कार की उपलब्धि के बाद देवदत्त का मन भिक्षु-संघ की महन्ताई के लिए ललक उठा। लालच बुरी बला है। जैसे ही देवदत्त के मन में महन्ताई प्राप्त करने का विचार उत्पन्न हुआ, उसका योगबल मिट्टी में मिल गया।

कौशाम्बी में विहार करके भगवान राजगृह चले गए। वहाँ कलन्दक निवाय के वेणुवन में विहार करने लगे। भगवान के दर्शन के लिए वहाँ बहुत से भिक्षु पहुँचे और अभिवादन कर एक ओर बैठ गए। थोड़ी देर बाद भिक्षुओं ने भगवान से कहा–

"भन्ते। राजकुमार अजातशत्रु सायं-प्रातः उपस्थान को जाता है।"

भगवान बोले, "भिक्षुओ। देवदत्त के लाभ, सत्कार-श्लोक की अभिलाषा मत करो। अजातशत्रु प्रातः-सायं देवदत्त के उपस्थान में जायेगा और भोजन के लिए देवदत्त के पास पाँच सौ स्थाली-पाक भेजेगा। उससे देवदत्त के कुशल धर्मों की वृद्धि नहीं अपितु हानि होगी।"

सभी भिक्षु सावधान हो गये। उनका चेहरा सत्य-बोध से खिल उठा। पुनः भगवान कहने लगे–

"भिक्षुओ। जिस प्रकार केला अपने वध के लिये फल देता है, उसी प्रकार लाभ सत्कार-श्लोक देवदत्त को ले बीतेगा। जैसे बाँस और नरकट फल देते ही स्वयं विनष्ट हो जाते हैं और इसी प्रकार अश्वतरी (=खचरी) का गर्भ-धारण खुद उसके विनाश का कारण बनता है। वैसे ही देवदत्त का लाभ सत्कार-श्लोक उसके विनाश का मूल कारण बनेगा।"

"वृथा न जाहि देव-रिसि वाणी।" मृत्यु के बाद महामौद्गल्यायन के सेवक कुकुध का जन्म मनोमय (देव) लोक में हुआ। एक दिन वह (कुकुध देवपुत्र) महामौद्गल्यायन के पास आया और बोला, "भन्ते। देवदत्त के मन में जैसे ही यह इच्छा हुई–मैं भिक्षुसंघ की महन्ताई ग्रहण करूँ, वैसे ही उसका योगबल रसातल में चला गया।" ऐसा कहकर कुकुध अदृश्य हो गया।

मौद्गल्यायन दौड़े-दौड़े भगवान के पास आए और कुकुध देवपुत्र के उद्गारों

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

से भगवान को अवगत कराए।

भगवान तो अन्तर्यामी थे। प्रज्ञा-चक्षु थे। मौद्गल्यायन से पूछ बैठे, "क्या तुमने चित्त द्वारा विचार करके जाना, कि जो कुछ कुकुध देवपुत्र ने कहा है, वह सत्य है।"

"भन्ते। हाँ। कुकुध देवपुत्र ने जो कुछ कहा है, वह सत्य है।"

देवदत्त का कर्म

बड़ी परिषद में राजा एवं भिक्षु शान्ति के साथ बैठे हुए थे। भगवान उन्हें धर्मोपदेश कर रहे थे। देवदत्त भगवान के पास गया और हाथ जोड़कर बोला, "भन्ते। अब आपकी उम्र अधिक हो गई है। अतः आप अब निश्चिन्त होकर विहार करें। भिक्षु-संघ का उत्तरदायित्व मुझे सौंप दें। मैं भिक्षु-संघ को सुचारु रूप से संचालित करूँगा।"

भगवान बोले, "देवदत्त! भिक्षु-संघ का संचालन एवं व्यवस्थापन एक दुरूह कार्य है। अतः इसे पाने का दुस्साहस मत करो।"

दूसरी बार भी देवदत्त ने भिक्षु-संघ की माँग की पर भगवान ने उसे स्वीकृति नहीं दी। देवदत्त जन्म से ही दुष्ट प्रकृति का था। अभिमान तो उसमें था पर स्वाभिमान नहीं था।

तीसरी बार भी उसने भगवान से भिक्षु-संघ की माँग की पर भगवान ने उसकी प्रार्थना को स्वीकार नहीं किया।

भगवान ने दो टूक शब्दों में देवदत्त से कहा, "देवदत्त! तुम मुर्दे हो। तुम थूक हो। जब मैं सारिपुत्र मौद्गल्यायन जैसे विनम्र एवं मेधावी व्यक्ति को भिक्षु-संघ को नहीं सौंप सकता तो तुम्हारे जैसे वाममार्गी को भिक्षु-संघ कैसे सौंपूँ?"

देवदत्त के मन में बचपन में सिद्धार्थ के विरुद्ध जो विद्वेष का विरवा पनपा था, हरा-भरा होकर लहराने लगा। वह आग-बबूला हो गया और कहने लगा—"भगवान की दृष्टि निरपेक्ष नहीं अपितु सापेक्ष है। राजा के सामने भारी परिषद में उन्होंने मुझे फेंका थूक कहकर अपमानित किया और सारिपुत्र मौद्गल्यायन को बढ़ावा दिया।" क्रोधाभिभूत होकर वह परिषद को छोड़कर बाहर चला गया।

देवदत्त के जाने के बाद भिक्षु-संघ को संबोधित कर भगवान बोले—

"भिक्षुओ। संघ राजगृह में देवदत्त के असली रूप का प्रकाश करे। राजा को बताए कि प्रारम्भ में देवदत्त का चरित्र अच्छा था पर अब वह आत्मकेन्द्रित हो गया है। अतः अब वह काया, मनसा और वाणी द्वारा जो कार्य करता है, उसके लिए बुद्ध, धर्म और संघ जिम्मेदार नहीं है। वह खुद उसका जिम्मेवार है।"

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

भिक्षु-संघ ने भगवान के वाक्यों का दुहराकर उनके प्रस्ताव और कथन का समर्थन किया।

संघ और भगवान ने देवदत्त के असली चरित्र को राजा के सामने प्रस्तुत करने का उत्तरदायित्व सारिपुत्र, मौद्गल्यायन को सौंप दिया। भगवान के प्रस्ताव को स्वीकार भिक्षुसंघ के साथ मौद्गल्यायन राजगृह में प्रविष्ट होकर राजा से बोला, "राजन्! प्रारम्भ में देवदत्त अच्छाई की ओर उन्मुख हुआ था पर अब वह पतनोन्मुख हो गया है।"

भिक्षुओं ने समवेत स्वर में आयुष्मान मौद्गल्यायन के कथन का समर्थन करते हुए कहा, "राजन्! सारिपुत्र का कथन बिलकुल सत्य है।

अजातशत्रु को पितृ-विद्रोह के लिए उकसाना

देवदत्त षड्यंत्रकारी था। दूसरे के घर में द्वेषाग्नि जलाकर पिता-पुत्र के बीच में वैमनस्य उत्पन्न करना उसके जीवन का मुख्य लक्ष्य था। वह साँप था साँप। हर किसी को डँसता था। जैसे उल्लू जहाँ बैठता है, उस चमन को उजाड़ देता है वैसे ही जो देवदत्त को शरण देता था, उसे उजाड़ने का वह हर संभव प्रयास करता था।

वह अजातशत्रु के शान्त एवं सुखी जीवन को नष्ट करना चाहता था। पिता और पुत्र के बीच विद्रोह की खाई खोदना चाहता था। अतः अपने अभीष्ट को पूरा करने के लिए वह राजकुमार के पास गया।

मुस्कराते हुए बोला, "राजकुमार अजातशत्रु! सत्य एवं त्रेता युग में मनुष्य दीर्घायु हुआ करता था पर अब वह अल्पायु हो गया है। मृत्यु कब आयेगी, कहाँ आयेगी, किस रूप में आयेगी? कोई नहीं जानता। राम भी नहीं जान सके और कृष्ण भी मौत का अन्दाजा कहाँ लगा सके। पता नहीं कब मर जाओ। एक गुप्त बात है, उस पर आचरण करो। पिता की हत्या कर सिंहासनासीन हो जाओ और मैं सिद्धार्थ गौतम को स्वर्ग में फेंककर उनका स्थान ग्रहण कर लूँ।"

अजातशत्रु अविवेकी एवं लोभी था। अस्त्र-शस्त्र धारण कर मध्याह्न में ही अन्तःपुर में घुस गया। महामात्यों को शंका हुई, वे उसे पकड़ लिए और पूछे–

"कुमार! तुम्हारी क्या मनसा है?"

"पिता की हत्या।"

"तुम्हें किसने उत्साहित किया?"

"आर्य देवदत्त ने।"

सभी मंत्री दुविधा में पड़ गए। स्वयं तो न अजात शत्रु को दण्ड दे सकते थे, न ही देवदत्त को और न ही भिक्षु संघ को। सर्वसम्मति से निर्णय हुआ कि

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

अजात शत्रु को मगध नरेश बिम्बिसार के समक्ष उपस्थित किया जाय। वे उसे लेकर महाराज श्रेणिक बिम्बिसार के पास गये। मगध नरेश को अजातशत्रु के षड्यंत्र से अवगत कराया गया।

मगध नरेश ने अजातशत्रु से प्रश्न किया—

"कुमार! किस लक्ष्य-प्राप्ति के लिए मुझे मारना चाहते थे?"

"देव! राज्य चाहता हूँ।"

"ठीक है। लो, आज से राज्य तुम्हारा है।"

भगवान बुद्ध की हत्या की योजना

देवदत्त के मन में भगवान बुद्ध के प्रति हिंसा की अग्नि इतनी प्रबल हो गई थी कि वह रात-दिन बेचैन रहता था। उसे रात में नींद नहीं आती थी। वह भगवान बुद्ध की इहलीला समाप्त करना चाहता था अपने अभीष्ट को पूरा करने के लिए वह अजातशत्रु के पास गया और बोला—

"राजन्! अपने आदमियों को आदेश देकर श्रमण गौतम को मरवा दें।"

राजकुमार अजातशत्रु ने न सोचा न विचारा, तुरन्त अनुचरों को आदेश दे दिया—

"भणे! आर्य देवदत्त जैसा कहें, वैसा करो?"

देवदत्त उनको साथ लेकर कुछ दूर गया और फिर रुक गया। उसके मन का शैतान बड़ा ही कर्मठ था। उसने एक आदमी से कहा, "श्रमण गौतम अपने स्थान पर है। उसकी हत्या कर इस पथ से लौटना।"

उसने उस रास्ते पर दो आदमियों को बैठाया और बोला, "जो आदमी इस मार्ग से गुजरे, उसका गला घोंटकर इस मार्ग से आओ।"

दूसरे रास्ते पर भी चार आदमियों को तैनात किया और उनसे कहा, "इस मार्ग से आने वाले चार पुरुषों को यमराजपुरी भेजकर इस मार्ग से लौटो।"

तीसरे मार्ग पर आठ आदमियों को बैठाकर चार लौटने वाले आदमियों को मारने का आदेश दिया। इसी प्रकार चौथे मार्ग पर सोलह आदमियों को बैठाकर लौटने वाले आठ आदमियों को मारने की आज्ञा दी।

जब पहला अकेला आदमी ढाल-तलवार लेकर भगवान के पास पहुँचा तो भगवान ने कहा, "आवुस! आओ। भय त्याग दो।"

भगवान का दर्शन पाते ही उस व्यक्ति का विवेक जाग पड़ा। शस्त्र दूर फेंककर वह भगवान के चरणों पर गिर पड़ा। वन्दना करने के बाद उसने क्षमा-याचना की।

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

भगवान ने कहा, "आवुस! तुमने अपना अपराध स्वीकार कर लिया। अब तू मैल रहित हो।"

भगवान के धर्मोपदेश से उसे धर्म-चक्षु उत्पन्न हुआ।

अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हुए वह बोला, "भगवान! आज से मैं आपका उपासक हूँ।"

भगवान ने उस पुरुष से कहा, "आवुस! जिस मार्ग से तुम आए हो, उस पर तुम्हारी हत्या के लिये दो आदमी बैठे हैं। अतः मेरे बताए हुए मार्ग का अनुसरण करो?"

जब पहले आदमी की बाट जोहते-जोहते विलम्ब हो गया तो दोनों आदमी वृक्ष तले बैठे हुए भगवान के पास गए और अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। धर्मकथा सुनाकर भगवान ने उन्हें धर्म-चक्षु उत्पन्न किया और दूसरे मार्ग से लौटने का संकेत दिया।

इस प्रकार क्रमशः चारों, आठों और सोलहों आदमी भगवान की शरण में आए और शरणागत उपासक बन गये।

अकेला आदमी देवदत्त के पास गया और बोला, "भन्ते! भगवान महानुभाव हैं। अतः मैं उनके सामने नतमस्तक हो गया।" दुष्ट देवदत्त अपना-सा मुँह लेकर रह गया।

पत्थर-प्रहार

क्रोध, लोभ, अहंकार, ईर्ष्या, द्वेष एवं प्रमाद मनुष्यता के कट्टर शत्रु हैं। जिसके सिर ये अशुभ विचार सवार होते हैं, उसके विवेक को हर लेते हैं। देवदत्त के अन्दर वे सारे अवगुण कुण्डली मारकर बैठे हुए थे। अतः बार-बार प्रयास करने के बाद भी जब वह बुद्ध को कोई हानि न पहुँचा सका तब भी चुप नहीं बैठा। सदा भगवान को मारने का प्रयास करता रहा।

एक समय भगवान बुद्ध गृध्रकूट पर्वत की छाया में धीरे-धीरे परिभ्रमण कर रहे थे। देवदत्त तो इसी अवसर की ताक में था। न आव देखा न ताव, झट से पर्वत पर चढ़ गया। वहाँ एक बड़ी शिला पड़ी हुई। शक्तिशाली तो था ही, दोनों हाथों से शिला को उठाकर भगवान बुद्ध के ऊपर फेंक दिया। पर, दो पर्वत-कूटों ने गिरती हुई शिला को रोक लिया। उस शिला से एक पपड़ी निकलकर भगवान के पैरों पर गिर पड़ी। घायल पैर से खून की धारा निकलने लगी। भगवान ने जब ऊपर देखा तो देवदत्त वहाँ खड़ा था।

प्रतिक्रिया प्रकट करते हुए भगवान ने कहा, "देवदत्त! तुम्हारा चित्त अशुभ

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

क्लेषों से कलुषित है। इसीलिए द्वेष-युक्तचित्त से तुमने पत्थर मारकर मेरे पैर से खून निकाल दिया।"

इसके बाद भगवान ने भिक्षुओं से कहा, "भिक्षुओ! देवदत्त ने जो यह अकुशल कर्म किया है, वह मोक्ष-बाधक है।"

नालागिरी हाथी

दुष्ट, मूर्ख, शठ, क्रूर, कृतघ्न तथा बहके मन वाला व्यक्ति जीवन में अशान्त ही रहता है। देवदत्त का चित्त अवगुणों का आगार था। असली चीज उसकी समझ में नहीं आती थी। भगवान की हत्या का प्रयास उसने कई बार किया पर हर बार उसे असफलता का मुँह देखना पड़ा। फिर भी वह चुप कहाँ बैठा?

राजगृह में एक मदमत्त, नर-संहारक विशाल हाथी था। उसके सामने जो भी प्राणी पड़ता, उसे सूँड़ से पकड़कर ऊपर लोका देता था और गिरने पर उसे अपने आगे के पैरों से कुचल देता था। उसका नाम सुनकर लोग थर्रा उठते थे।

देवदत्त षड्यंत्र-संरचना में माहिर था। उसके मन में नालागिरि हाथी से भगवान को कुचलवाने की बात उपजी। अपने अभीष्ट को पूरा करने के लिए वह पीलवान से जा मिला। उसे उत्कोच देने का प्रलोभन देकर बोला, "पीलवान! जिस समय श्रमण सिद्धार्थ नगर में भिक्षाटन के लिए मार्ग पर चलने लगे, उसी समय नालागिरि को छोड़कर उन्हें कुचलवा दो?"

"भन्ते! मैं आपके अभीष्ट को अवश्य पूरा करूँगा।"

राजगृह में भगवान भिक्षु-संघ के साथ राजमार्ग पर चलने लगे तो पीलवान ने नालागिरि के पैरों की जंजीर को निकालकर सड़क पर छोड़ दिया। वह सूँड़ ऊपर उठाकर चिंघाड़ता हुआ भगवान की ओर चल पड़ा। चंड नालागिरि को देखकर भिक्षु भगवान से बोले, "भन्ते! सामने देखें? मानव-हंता नालागिरि आ रहा है। हमें सड़क से हट जाना चाहिए।" भगवान ने भिक्षुओं की चेतावनी पर ध्यान नहीं दिया। वह तो अन्तर्यामी थे। प्रज्ञा-चक्षु थे। उन्हें यह ज्ञात हो गया कि नालागिरि का चित्त दुःखी है, क्षुब्ध है। इसीलिये वह क्रोधातुर है। उनके मन में नालागिरि के प्रति करुणा का सागर लहराने लगा। मैत्री का भाव उत्पन्न हुआ। उनका मैत्री भाव नालागिरि के चित्त में भी लहराने लगा। उसका सारा क्रोध और मद काफूर हो गया। वह भगवान के सामने जाकर आगे के दोनों पैरों को मोड़कर बैठ गया और सूँड़ से भगवान के चरणों को चूमने लगा। भगवान ने अपने कर कमलों से उसके मस्तक का स्पर्श किया। हाथी का मन शीतल हो गया। उसने भगवान की चरण-धूल को लेकर सिर पर डाला और भगवान को गौर से देखता

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

हुआ पीठ की ओर लौटता रहा। अन्त में वह अपने स्थान पर लौट गया।

जनता देवदत्त की कोसने लगी। लोग कहने लगे, "देवदत्त! समाज और मानवता का शत्रु है और भगवान मनुष्यता के आभूषण है। उस दिन से भगवान के लाभ-सत्कार में चारु चाँद लग गया। देवदत्त सबकी नजरों से गिर पड़ा।"

अशुभ कर्मों का फल

पराजय, अपयश, कुटिल आचरण तथा द्वेष के कारण देवदत्त समाज की नजरों से नीचे गिर गया। अस्तित्वहीन होकर दर-दर भटकता और भिक्षार्जन द्वारा अपना उदर भरता रहा। उसकी दीनहीन दशा को देखकर लोग कहने लगे, "शाक्य पुत्र देवदत्त की दुर्दशा तो देखो? कैसे भीख माँग-माँग कर खाता है!"

कुछ भिक्षुओं ने जब भगवान को देवदत्त की दयनीय परिस्थितियों से अवगत कराया तो भगवान ने उनसे पूछा, "भिक्षुओ! क्या सचमुच उसका अधःपतन हो गया है?"

"भगवान! हाँ।"

देवदत्त द्वारा संघ में फूट डालने का प्रयास

देवदत्त के मस्तिष्क में कुचक्र पवन-चक्की की तरह सदैव घूमा करता था। संघ, संगठन, समूह में बहुत बड़ी शक्ति अन्तर्निहित होती है। अगर उसमें फूट का बीज डाल दिया जाये तो वह अनार के दानों के समान बिखर जायेगा। देवदत्त के मन में जैसे ही संघ-विस्फोट की भावना उपजी, वह कोकालिक कटमोर-तिस्सक तथा खंडदेवी-पुत्र समुद्रदत्त के पास गया। उनके पास जाकर बोला, "आवुसो! आओ चलें श्रमण गौतम का चक्र-भेद करें?"

वे दोनों देवदत्त के विचारों से सहमत हो गए। तीनों एक साथ भगवान के पास गए और प्रणाम कर एक ओर बैठ गए। देवदत्त ने भगवान से कहा—

"भन्ते! कितना अच्छा होगा कि भिक्षु जिन्दगीभर आरण्यक रहें।"

भगवान ने कहा, "देवदत्त! रुक जाओ। प्रत्येक भिक्षु स्वतंत्र है। उसकी मर्जी हो चाहे आरण्यक हो, चाहे गाँव में विचरे, चाहे पिंडपातिक हो, चाहे निमंत्रण खाए, चाहे पाँसुकूलिक हो, चाहे गृहस्थ द्वारा प्रदत्त चीवर धारण करे। देवदत्त क्या तुम यह नहीं जानते कि मैंने भिक्षुओं को आठ महीने वृक्ष-तले रहने की आज्ञा दी है?"

जब भगवान ने पाँचों बातों की अनुमति देवदत्त को नहीं दी तो वह कोकालिक कटमोर-तिस्सक तथा खंडदेवी-पुत्र समुद्रदत्त के साथ वहाँ से उठकर चला गया। वह भिक्षुओं को उकसा-उकसा कर संघ को तोड़ने का प्रयास करने

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

लगा। जब भिक्षुओं द्वारा भगवान को संघ-भेदन की बात ज्ञात हुई तो भगवान बोले, "बस देवदत्त! संघ में फूट मत डालो। यह एक जघन्य अपराध है। संघ में फूट डालने वाले को कल्प भर नरक में रहता पड़ता है।"

पूर्वाह्न का समय था। आनन्द राजगृह में भिक्षार्जन के लिए आया। जैसे ही देवदत्त की दृष्टि आनन्द पर पड़ी, वह उनके पास पहुँच गया। पास पहुँचकर उनसे कहने लगा, "आवुस आनन्द! आज से मैं भिक्षु-संघ से अलग उपोसथ करूँगा।"

उसकी बातों को सुनकर आनन्द मौन रहे। भिक्षार्जित भोजन करने के बाद वह भगवान के पास गए। अभिवादन कर एक ओर बैठ गए। अल्प विश्राम के बाद आनन्द ने भगवान से कहा, "भन्ते! आज देवदत्त संघ को फोड़ेगा।"

संघ-विग्रह की बात सुनने के बाद भगवान के मुँह से यह उदान निकल पड़ा—

साधु के साथ भलाई सुकर है पर पापी के साथ भलाई दुष्कर है।

पापी के साथ पाप सुकर है, आर्यों के साथ पाप दुष्कर है।

संघ से देवदत्त का विलगाव

कृष्ण चतुदर्शी थी। देवदत्त के सामने वैशाली के पाँच सौ वज्जिपुत्तक बैठे हुए थे। वे सच्चाई से अनभिज्ञ थे। उनको संबोधित करते हुए देवदत्त बोला, "आवुसो। मैंने श्रवण गौतम से पाँच वस्तुओं की माँग की पर उन्होंने मेरी माँग को अस्वीकार दिया। अतः हम अब इन पाँचों बातों को व्यवहार में लायेंगे। शलाका सामने है। जिनको मेरे द्वारा वांछित पाँचों वस्तुएँ पसन्द हों, वे हाथ में शलाका ग्रहण करें।"

बेचारे असलियत तो जानते नहीं थे। शास्ता के प्रस्ताव को स्वीकार कर शलाका ग्रहण कर ली। देवदत्त संघ-भेदन-क्रिया में सफल हो गया। अपने पाँच सौ भिक्षुओं को साथ लेकर वह गयासीस[1] की ओर चल दिया।

सारिपुत्र एवं मौद्गल्यायन भगवान के पास गये। बोले, "भगवान! देवदत्त ने संघ को फोड़ दिया और पाँच सौ भिक्षुओं को अपना अनुगामी बनाकर गया सीस चला गया।"

भगवान बोले, "सारिपुत्र! शीघ्र गयासीस जाओ और उन भिक्षुओं को गर्त में गिरने से बचा लो।"

"अच्छा भन्ते!" कहकर सारिपुत्र एवं मौद्गल्यायन उस परिषद में पहुँच गए जहाँ देवदत्त धर्म-उपदेश कर रहा था। उन्हें देखकर देवदत्त कहने लगा, "भिक्षुओ! मेरा धर्म सुआख्यात है। इसलिये मेरे उपदेश को सुनने के लिए सारिपुत्र एवं मौद्गल्यायन पधार रहे हैं।"

1. ब्रह्मयोनि पर्वत (गया)

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

बीच में कोकालिक कहने लगा, "देवदत्त! उन दोनों पर विश्वास मत करो क्योंकि दोनों की नीयत अच्छी नहीं है। देवदत्त बोला, "कोकालिक! अविश्वास मत करो। उन्हें मेरे धर्म पर विश्वास है।"

आगन्तुकों को आधा आसन देते हुए देवदत्त बोला, "सारिपुत्र! आसन ग्रहण करें।"

मौद्गल्यायन भी एक आसन लेकर बैठ गए।

देवदत्त जब भिक्षुओं को कथा सुनाते-सुनाते थक गया तब सारिपुत्र से बोला, "सारिपुत्र! मैं थककर चूर हो गया हूँ। अब मैं सोऊँगा। मेरी जगह पर धर्म-देशना करें।"

सारिपुत्र बोला, "अच्छा, आवुस!"

सारिपुत्र ने आदेशना-प्रातिहार्य (=व्याख्यान के चमत्कार) तथा अनुशासनीय-प्रातिहार्य के साथ भिक्षुओं को धर्मोपदेश दिया। महामौद्गल्यायन चुप कैसे रहते? उन्होंने ऋद्धि-प्रातिहार्य (=योग-बल के चमत्कार) के साथ धर्म-देशना की। दोनों आयुष्मानों के धर्म-उपदेश से उन पाँच सौ भिक्षुओं को विमल धर्म-चक्षु उत्पन्न हुआ। उन्हें यह अभिज्ञान हुआ कि जो उत्पन्न होने वाला है, वह विनाश होने वाला है।

भिक्षुओं को जब विमल धर्म-चक्षु उत्पन्न हो गया तो सारिपुत्र ने उनसे कहा, "आवुसो! जो भगवान बुद्ध के धर्म को पसंद करता है, वह मेरे साथ उनके पास चले।"

पाँच सौ भिक्षु प्रसन्नता से झूठ उठे। वे सारिपुत्र एवं मौद्गल्यायन के साथ वेणुवन चले गये क्योंकि भगवान बुद्ध उस समय वहीं विहार कर रहे थे। भगवान के पास पहुँचकर सारिपुत्र बोला, "भन्ते! फूट डालने वाले अनुयायी भिक्षुओं को पुनः उपसम्पदा मिले।"

भगवान ने कहा, "सारिपुत्र! यदि तुम उन्हें उपसम्पदा देना चाहते तो पहले फूट डालने वाले अनुयायी भिक्षुओं को थुल्लच्चयी की देशना (=क्षमापन) करा।"

नारियों को प्रव्रज्या

भगवान बुद्ध ने सामूहिक साधना के लिये भिक्षु-संघ की प्रतिष्ठा कर दी पर नारियों को बहुत दिनों तक प्रव्रज्या और उपसंपदा के अधिकार से वंचित रखा गया। सर्वप्रथम कपिलवस्तु की शाक्य कुल की नारियाँ घर-बार छोड़कर प्रव्रज्या ग्रहण के लिये उत्कंठित हुईं। महाप्रजापति गौतमी ने शाक्य-नारियों के नेतृत्व का भार अपने हाथ में ले लिया। जिस समय कपिलवस्तु में प्रव्रज्या ग्रहण करने के लिए नारियों का सम्मेलन पर सम्मेलन हो रहा था, संयोग से उसी समय भगवान बुद्ध कपिलवस्तु के न्यग्रोधाराम में विहार कर रहे थे। महाप्रजापति को सुनहला अवसर

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

प्राप्त हो गया। चली गईं, भगवान के पास।

वन्दना और प्रदक्षिणा के बाद बोलीं, "भगवान। आप अपनी अमृतोपम वाणी द्वारा पुरुषों को मोक्ष-प्राप्ति का मार्ग बतला रहे हैं पर अभी तक आपने किसी नारी को विनय-धर्म में प्रव्रजित नहीं किया? उन्हें सृष्टि का अधिष्ठात्री तो कहा जाता है पर आज तक साधना-आराधना तथा प्रव्रजित होने के हक से उन्हें वंचित ही रखा गया है। आपसे प्रार्थना है कि मुझे प्रव्रज्या और उपसंपदा देकर नारियों के लिए अपने धर्म का द्वार उन्मुक्त कर दें।"

"गौतमी! तुम्हारा कटाक्ष तो सही है पर मेरे द्वारा दर्शित धर्म में नारियों के प्रव्रज्या का विधान नहीं है।"

महप्रजापति महारानी थी। हार नहीं मानी। दुबारा ही नहीं अपितु तिबारा भी वही प्रार्थना दुहराई। पर....। बेचारी क्या करती। श्रद्धा और सम्मान के साथ तथागत की वन्दना की और प्रदक्षिणा करके लौट गई। रोते-रोते उसकी आँखें सूज गईं। मन विदग्ध हो गया।

वैशाली

भगवान एक स्थान पर अधिक समय तक नहीं ठहरते थे। कपिलवस्तु से वैशाली चले गये और वहाँ महावन की कूटागारशाला में विहार करने लगे।

नारियों में समर्पण का भाव दृढ़ होता है। एक बार जिस लक्ष्य की सिद्धि की बात मन में ठान लेती हैं, लाख अवमानना सहनी पड़े, उसे पूरा किए बिना पलभर भी शान्त नहीं बैठती हैं। महाप्रजापति केवल वात्सल्यमयी ही नहीं अपितु पुण्यात्मा भी थीं। वह वैशाली गमन के लिये तत्पर हो उठीं। उनके चारों ओर शाक्य-नारियों का मेला लग गया। नागिन से सबके काले-काले बाल कट गए। मुंड मुँडने लगे। काषाय वस्त्र धारण कर सभी चल पड़ीं वैशाली की ओर। महाप्रजापति गौतम कोमलांगी थी। रथ के बिना कभी पैदल नहीं चली थीं। पदयात्रा से सारा शरीर श्लथ एवं धूल-धूसरित हो गया था। पैर सूज आए। आँखों से अश्रु-धारा प्रवहमान हो रही थी। जाकर महवन की कूटागारशाला के सिंहद्वार पर शाक्य-नारियों के साथ खड़ी हो गईं। संयोग से आनन्द की निगाह गौतमी पर पड़ गई। पास जाकर पूछा, "गौतमी। तुम्हारे पैर सूजे हुए क्यों हैं?"

"आनन्द! मैंने पदयात्रा जो की है।"

"गौतमी! यहाँ आने का क्या हेतु है?"

"भन्ते! हम प्रव्रज्या ग्रहण करना चाहते हैं पर भगवान हमें इसकी अनुमति नहीं दे रहे हैं?"

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

"अच्छा, गौतमी! तुम सब यहीं रुको। भगवान से मैं बुद्ध-धर्म में नारी-प्रवेश एवं प्रव्रज्या की प्रार्थना करता हूँ।"

"भन्ते। आपकी आज्ञा सिर माथे पर है। हम आपकी प्रतीक्षा करेंगे।"

भगवान के पास जाकर आनन्द बोला, "भन्ते! महाप्रजापति सिर मुड़ाकर काषाय वस्त्र धारण कर कूटागारशाला के मुख्य द्वारा पर खड़ी हैं। दुखियारी हैं दुखियारी। महारानी को बुध-धर्म में प्रव्रज्या लेने से क्यों रोक रहे हैं?"

"आनन्द! मेरे द्वारा प्रकाशित धर्म में नारी-प्रव्रज्या का विधान नहीं है। नारियों को दीक्षा देने की जिद मत करो।"

आनन्द बोला, "भगवान। आपके द्वारा प्रदर्शित विनय-धर्म तो उन्मुक्त आकाश-सा है। इसके नीचे रहने का अधिकार जितना पुरुष को है उतना ही नारियों को भी होना चाहिए। आपने अनेक दलितों को प्रव्रजित किया है। फिर नारियों को प्रव्रज्या से वंचित क्यों रखना चाहते हैं? समाज में दलित एवं नारी दोनों ही शोषण के केन्द्रबिन्दु हैं। मानव-समाज को शोषण विमुक्त बनाना हमारे धर्म का प्रमुख लक्ष्य है।"

आनन्द की बात सुनकर भगवान मौन हो गये।

आनन्द केवल सत्यनिष्ठ ही नहीं अपितु बुद्धि से प्रखर भी था। उसने अपने आप विचार किया कि भगवान प्रथम प्रकार से नारियों को प्रव्रज्या देने की आज्ञा प्रदान नहीं करेंगे। अतः मैं दूसरे ढंग से उसी बात को उनके सामने प्रस्तुत करूँगा। अपने निश्चय को कार्य रूप में परिणत करने के लिए साहस बटोर कर बोला, "भन्ते! क्या तथागत द्वारा प्रकाशित धर्म में घर बार छोड़कर आई हुई नारियाँ स्रोत-आपत्ति फल, सकृदागामि-फल, अनागामि-फल, अर्हत्व-फल को साक्षात् कर सकती है?"

"आनन्द! हाँ।"

आनन्द बोला, "भन्ते। यदि आपके द्वारा दर्शित धर्म में प्रव्रजित नारियाँ अर्हत्व-फल का साक्षात् करने योग्य हैं तो उन्हें प्रव्रज्या अवश्य मिलनी चाहिए।"

"आनन्द! धर्म-विनय में प्रव्रज्या पाने के लिए आठ नियम हैं। यदि महाप्रजापति उन आठ गुरु-धर्मों को पूरा करने के तत्पर हों, तो उन्हें प्रव्रज्या अवश्य मिले।"

"भगवान! आप उन आठ गुरु-धर्मों का विवेचन करें?"

"आनन्द! आठ गुरु-धर्म इस प्रकार हैं—"

1. सौ वर्ष की उपसम्पदा पाई भिक्षुणी को भी उसी दिन के उपसम्पन्न भिक्षु को अंजलि जोड़कर अभिवादन करना पड़ेगा। इस धर्म का सत्कारपूर्वक, गौरवपूर्वक मानकर, पूजकर आजीवन पालन करना पड़ेगा।

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

2. भिक्षु का उपगमन (=धर्मश्रवणार्थ आगमन) करना चाहिए।
3. हर आधे महीने भिक्षुणी को भिक्षु-संघ से प्रार्थना करनी चाहिए।
4. चौमासा बाद भिक्षुणी को (भिक्षु, भिक्षुणी) दोनों संघों में दिखलाई पड़ें।
5. जिस भिक्षुणी ने गुरु-धर्म स्वीकार कर लिया है, उसे दोनों संघों में पक्ष मानता करनी चाहिए।
6. भिक्षु को भिक्षुणी गाली न दे।
7. आज से भिक्षुणियों का भिक्षुओं को कुछ कहने का रास्ता बन्द हुआ।
8. पर, भिक्षुओं का भिक्षुणियों को कहने का रास्ता उन्मुक्त है।

आनन्द बोला, "भगवान! आठों गुरु-धर्म श्लाघ्यनीय हैं।"

"आनन्द! महाप्रजापति को यदि ये आठ गुरु-धर्म मान्य हों तो उपसम्पदा अवश्य मिले।"

आनन्द महाप्रजापति के पास गया। उन्हें आठों गुरु-धर्मों से अवगत कराने के बाद बोला, "गौतमी। यदि तुम्हें भगवान के मुँह से निकली शर्तें मंजूर हैं तो उपसम्पदा अवश्य मिलेगी।"

महाप्रजापति बोली, "आनन्द। मुझे आठों गुरु-धर्म स्वीकार हैं।"

महाप्रजापति के निर्णय को सुनने के बाद आनन्द भगवान के पास जाकर बोला, "भन्ते। महाप्रजापति ने आजीवन आठों गुरु-धर्मों के पालन करने का आश्वासन दिया है।"

भगवान ने कहा, "आनन्द। नारियों को प्रव्रज्या और उपसम्पदा मिले पर.... ।"

"भन्ते। आप रुक क्यों गए?"

"आनन्द! जहाँ प्रव्रजित भिक्षुणियाँ रहेंगी वहाँ ब्रह्मचर्य चिर-स्थायी नहीं रह सकता।"

आनन्द द्वारा अनुमति पाने पर गौतमी भगवान के पास गईं। वन्दना और परिक्रमा करके एक ओर खड़ी हो गईं। थोड़ी देर बाद बोलीं, "भन्ते! मुझे इन शाक्यनियों के साथ क्या करना चाहिए। क्या उन्हें भी धर्म-देशना मिलेगी?"

भगवान बोले, "महाप्रजापति! उन्हें खाली हाथ नहीं लौटना पड़ेगा।"

महाप्रजापति को भगवान ने धर्म-कथा कहकर समुत्तेजित, संप्रहर्षित किया। उसके बाद वह प्रदक्षिणा कर चली गईं।

नारियों को प्रव्रज्या

भगवान ने भिक्षु-संघ को संबोधित करने के बाद कहा, "भिक्षुओ। मैं नारियों को भिक्षुणी बनकर उपसम्पदा प्राप्त करने की अनुमति देता हूँ।"

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

लक्ष्य-पूर्ति के बाद शाक्यनियाँ फूली नहीं समाईं। प्रजापति के पास जाकर बोलीं, "महाप्रजापति! हमें तो उपसम्पदा मिल गई पर आपको प्रव्रज्या नहीं मिली।"

चुपचाप गौतमी आनन्द के पास गई और बोलीं, "आनन्द। भिक्षुणियाँ मुझसे कहती हैं कि उन्हें उपसम्पदा मिल गई। मुझे उपसम्पदा नहीं मिली।"

तुरन्त आनन्द भगवान के पास गया और बोला, "भन्ते! भिक्षुणियों ने गौतमी से कहा है, मुझे उपसम्पदा मिल गई पर आपको उपसम्पदा नहीं मिली।"

भगवान बोले, "आनन्द। गौतमी को तो उसी समय उपसम्पदा मिल गई जिस क्षण उसने आठों गुरु-धर्म स्वीकार कर लिये।"

अभिवादन का अधिकार

महाप्रजापति गौतमी के सद्प्रयास से जिज्ञासु और मुमुक्षु नारियों को भिक्षु-संघ में प्रवेश की अनुज्ञा तो मिल गई। पर, पुरुष शासित समाज की तरह यहाँ भी पुरुष भिक्षुओं को प्रधान तथा भिक्षुणियों को गौण स्थान मिला। प्रव्रज्या और उपसम्पदा भले ही नारी को पुरुष भिक्षु से पहले मिली हो, उसे झख मारकर जिस भिक्षु को उसके बाद उपसम्पदा मिली हो, उसे प्रणाम करना पड़ता था। संघ में नारी और पुरूष के अधिकारगत भेद-भाव को देखकर गौतमी का मन आन्दोलित हो उठा।

उपसम्पदा तो आनन्द को गौतमी से बहुत पहले मिल चुकी थी पर उम्र की दृष्टि से वह आनन्द से बहुत बड़ी थीं। इतना ही नहीं, वह पद की दृष्टि से आनन्द की चाची थी। झख मारकर उसे अपने अभीष्ट की पूर्ति के लिए आनन्द के पास जाना पड़ा। संघ की मर्यादाओं एवं नियमों का समग्र रूप में पालन करती हुई वह आनन्द का अभिवादन कर एक ओर खड़ी हो गईं।

उन्हें देखकर आनन्द बोला, "गौतमी! किस हेतु आना हुआ है?"

वह बोलीं, "भन्ते! मैं भगवान से एक वर माँगना चाहती हूँ।"

"कहिए? गौतमी!"

"आनन्द! अभी तक भिक्षुओं और भिक्षुणियों के अधिकारों में व्यापक वैषम्य है। मेरी यह अभिलाषा है कि जिन भिक्षुओं को किसी भिक्षुणी से बाद में प्रव्रज्या और उपसंपदा प्राप्त हुई है, वे हाथ जोड़कर उनका अभिवादन, प्रत्युत्थान एवं यथोचित सत्कार करें।"

आनन्द बोला, "गौतमी! तुम्हारे विचारों का स्वागत है। मैं भगवान के पास जाकर उन्हें आपके अभीप्सित विचारों से अवगत कराता हूँ।"

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

भगवान के पास जाकर आनन्द बोला, "भगवान! महाप्रजापति गौतमी का एक प्रस्ताव है?"

"आनन्द! बताओ?"

"भगवान! उनका यह विनम्र निवेदन है कि प्रव्रज्या एवं उपसम्पदा की तिथि को ध्यान में रखकर भिक्षुओं एवं भिक्षुणियों को आपस में अभिवादन, प्रत्युत्थान, यथोचित सत्कार एवं हाथ जोड़ने की अनुज्ञा प्रदान की जाये।"

भगवान बोले, "आनन्द। संघ में इसके लिए न तो कोई स्थान है और न ही कोई अवकाश कि भगवान नारियों (=मातृग्राम) को अभिवादन, प्रत्युत्थान, हाथ जोड़कर आदर-सत्कार की अनुमति प्रदान करें। जब समकालीन तीर्थिक पुरुषों को नारियों के अभिवादन की अनुज्ञा नहीं देता तो तथागत कैसे भिक्षुओं को यह अनुमति दे सकते हैं कि वे अपने से पहले प्रव्रजित भिक्षुणियों को हाथ जोड़कर सम्मान दें।"

भगवान ने इस ज्वलन्त प्रसंग को उपशमित नहीं किया। भिक्षु-संघ के सामने इसे पेशकर बोले, "भिक्षुओ। भिक्षुणियों को अभिवादन, प्रत्युत्थान, हाथ जोड़ने यथोचित सत्कार आदि नहीं करना चाहिए। यदि कोई भिक्षु संघ के इस नियम का उल्लंघन करता है तो उसे दुक्कटा दोष का भागी होना पड़ेगा।"

शिक्षापद का अधिकार

आनन्द भगवान के पास से उठकर गौतमी के पास गया और उन्हें भगवान द्वारा पारित संघ की आचार-संहिता से अवगत कराया। भगवान और संघ के निर्णय को श्रद्धापूर्वक उन्होंने स्वीकार कर लिया। बाद में वह भगवान के पास गईं और उन्हें अभिवादन कर एक ओर खड़ी हो गईं।

भगवान ने कहा, "महाप्रजापति! क्या कुछ कहना चाहती हो?"

"भगवान! एक स्पष्टीकरण करवाना चाहती हूँ। यदि आज्ञा हो? तो प्रस्तुत करूँ?"

"आज्ञा है।"

"भन्ते! भिक्षुओं एवं भिक्षुणियों के कुछ शिक्षा-पद एक समान हैं। भिक्षुणियाँ उनका पालन कैसे करें?"

"गौतमी। जिस प्रकार भिक्षु उनका अभ्यास करते हैं उसी प्रकार भिक्षुणियाँ भी उन शिक्षापदों का अभ्यास करें।"

"भन्ते! एक और बात पूछनी है?"

"पूछो?"

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

"भगवान! जो आचार-नियम भिक्षु एवं भिक्षुणियों के लिए अलग-अलग हैं, उनका अनुपालन एवं अभ्यास भिक्षुणियाँ कैसे करें?"

"गौतमी! निर्दिष्ट विधान को ध्यान में रखकर उनका अभ्यास करना चाहिए।"

भिक्षु-संघ और सैनिक

देश एवं समाज का संचालन-सूत्र हर युग में पृथ्वीपतियों, श्रेष्ठी वर्ग एवं गणाध्यक्षों के हाथों में रहा है। सिद्धार्थ गौतम के समय में भी लगभग इसी प्रकार की व्यवस्था थी। भगवान बुद्ध मध्यम मार्ग के अनुष्ठाता थे। सामाजिक अर्थ-वैषम्य से वह भलीभाँति अवगत थे। पर सामाजिक शान्ति को बनाए रखने के लिए वह राजाओं तथा महाजनों का भड़काना नहीं चाहते थे। राजा तो उस समय जनता-जनार्दन का प्रतिनिधि माना जाता था।

बौद्ध-काल में और आज भी किसी राज्य या देश का अस्तित्व सैनिक शक्ति पर निर्भर रहता है। जब भगवान शास्ता हो गए तो मगध-नरेश बिम्बसार उनके पक्के अनुयायी बन गए। बहुत बड़ी सेना थी उनके पास। जब जम्बूद्वीप में भिक्षु बनने की दौड़ प्रारम्भ हुई तो बिम्बिसार की सेना के सैनिक क्षत्रियत्व त्याग कर बौद्ध भिक्षु बन गए। प्रब्रज्या की इस प्रवृति से सेनानायक चिन्तातुर हो उठे। वे बिम्बिसार के पास गए और बोले, "राजन्! सेना के लिए भिक्षु-संघ काल बन गया है।"

बिम्बिसार ने पूछा, "सेनानायक! समझा नहीं। साफ-साफ समझाओ?"

"महाराज! सैनिक अपने उत्तरदायित्व से च्युत होकर भिक्षु बन गए हैं।"

"सेनानायक! उन्हें क्या दण्ड दिया जाये?"

"राजन्! प्रब्रजित होने वाले सैनिकों का सिर कलम करके धड़ से अलग कर देना चाहिए। न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी।"

महाराज ने पुनः उप-सेनानायक से पूछा, "उप-सेनापति! अनुशासक (=भिक्षु) बनाते समय विधि वाक्यों को पढ़ाने वाले को क्या दण्ड मिलना चाहिए?"

"महाराज! अनुशासक की जिह्वा को कटारी से दो फाँक कर देनी चाहिए और संघ की पसली को तोड़ देनी चाहिए।"[1]

मगध-नरेश सेना के अधिकारियों से विचार-विमर्श कर उन्हें साथ लेकर भगवान के पास गए। अभिवादन के उपरान्त उनकी परिक्रमा किए और एक किनारे हाथ जोड़ कर खड़े हो गए।

भगवान बुद्ध ने उनसे पूछा, "राजन्। किस हेतु आगमन हुआ है?"

"भन्ते! एक प्रश्न है। यदि आज्ञा हो तो पूँछू?"

---

1. महावग्ग 1/3/4/2 (विनय पिटक, अनुवादक, राहुल) पृ. 116-117

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

भगवान बुद्ध बोले, "राजन्! आज्ञा है। खुशी से पूछिए?"

"भगवान। सैनिक ही राज्य एवं सारी प्रजा की रक्षा करता है। यदि हमारे सभी सैनिक भिक्षु बन जायेंगे तो हम दूसरे नरेश के पराधीन हो जायेंगे।"

"राजन्! धैर्य धारण कर शान्त रहें।"

इसके बाद भगवान ने भिक्षुसंघ को संबोधित किया और साफ-साफ निर्देश दिया, "भिक्षुओ। राजसैनिकों की प्रव्रज्या नहीं देनी चाहिए।"[1]

भिक्षुसंघ तथा दास

भगवान बुद्ध के समय में भी दास प्रथा सुरसा की तरह मुँह बाए खड़ी थी। राजा और गणाध्यक्ष के बाद महाजनों का समाज पर वर्चस्व था। बेचारा दीन-हीन किसान अर्थाभाव के कारण अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए महाजनों से भारी ब्याज दर से ऋण लेता था। जब कर्ज चुका नहीं पाता था तो उसे महाजन अपना दास बना लेता था। कर्ज लेने वाले आजीवन कर्ज देने वाले के गुलाम बन जाते थे। आजीवन उन्हें ताड़ना और दुत्कार मिलती थी। स्वतंत्रता किसे प्यारी नहीं होती।

जब भिक्षु पैदल चल-चलकर सुधर्म का चक्र चलाने लगे तो अनेक कर्जदार भिक्षु बनने लगे। भिक्षुसंघ की इस प्रवृति को देखकर महाजन बौखला उठे। कई महाजन संगठित होकर भगवान के पास गए। अभिवादन और परिक्रमा करके एक ओर खड़े हो गए।

भगवान ने पूछा, "महाजनो। किसलिए आना हुआ है?"

"भगवान! हमारे कर्जदार गुलाम बनने के भय से भिक्षु बन रहे हैं। यदि उनके इस दुस्साहस पर रोक नहीं लगाई गई तो हमारा पीढ़ी-दर-पीढ़ी का धंधा चौपट हो जायेगा।"

भगवान ने कहा, "महाजनो! शान्त रहो?"

तुरन्त उन्होंने भिक्षु-संघ को संबोधित कर यह घोषणा की, "भिक्षुओ। ऋणी को प्रव्रज्या नहीं देनी चाहिए।"[2]

यह घोषणा दास-दासियों के स्वार्थ पर हमला था। बेचारे क्या करते? चिल्लाने लगे। उनके विरोध-प्रदर्शन को नजरअंदाज करते हुए भगवान ने पुनः यह उद्घोषणा की, "भिक्षुओ। दास को प्रव्रज्या नहीं देनी चाहिए।"[3]

---

1. महावग्ग, (राहुल द्वारा अनूदित पटिक) पृ. 116-117
2. महावग्ग 1/3/4/8; वही पृ. 118
3. महावग्ग, (राहुल द्वारा अनूदित पटिक) पृ. 118

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

महाप्रजापति और भगवान बुद्ध का अन्तिम वार्तालाप

विपश्यना का दृढ़ता के साथ नियमित अभ्यास करते-करते साधक एवं साधिका को विमल चक्षु प्राप्त हो जाता है। अतः अनागत का उसे उसी प्रकार ज्ञान हो जाता है जिस प्रकार महाभारत के संजय को धृतराष्ट्र के पास बैठे-बैठे कुरुक्षेत्र युद्ध का सारा वृतान्त स्वतः ज्ञात हो जाता था। भगवान बुद्ध के सौजन्य एवं औदार्य से महाप्रजापति को प्रब्रज्या प्राप्त हुई थी। भगवान की अमृतमयी वाणी से उन्हें सुधर्म की कथा सुनने का सुअवसर प्राप्त हुआ। शील, समाधि एवं प्रज्ञा का अभ्यास करने से उन्हें विमल चक्षु प्राप्त हुआ। मृत्यु से पूर्व ही उन्हें ऐहिक-लीला की समाप्ति की बेला का संकेत मिल गया था। अतः वह भगवान बुद्ध के पास पहुँचीं। अभिवादन करके उन्होंने भगवान की तीन बार प्रदक्षिणा की। इसके बाद एक किनारे खड़ी हो गईं।

भगवान उनको देखकर पूछ बैठे, "आयुष्मती महाप्रजापति गौतमी! किस हेतु आगमन हुआ है?"

"भगवान! एक जिज्ञासा है। यदि आज्ञा हो, तो कहूँ?"

"गौतमी! प्रसन्नता की बात है। जो पूछना हो, पूछो?"

"भगवान! अब मैं पार्थिव काया से मुक्ति चाहती हूँ। आपकी अमृतोपम वाणी से मुझे जो धर्म-कथा सुनने का सुअवसर प्राप्त हुआ, उससे मैं आध्यात्मिक, आधिभौतिक एवं आधिदैविक—तीनों तापों से विमुक्त हो गई। अतः आप मुझे मोक्ष की अनुमति प्रदान करें।"

भगवान ने कहा, "तथास्तु।"

यशोधरा द्वारा भगवान का अंतिम दर्शन

तपस्विनी यशोधरा का जीवन नारी जाति के इतिहास में स्वाभिमान, प्राप्ति पातिव्रत्य एवं माननी की दृष्टि से स्वर्ण अक्षरांक्ति है। प्रथम वियोगावस्था में वह स्वयं भगवान के पास नहीं गई, सिद्धावस्था की प्राप्ति के बाद भगवान को स्वयं उसके पास आना पड़ा। वह दृढ़ निष्ठ, संकल्पशील, वीर्यवान एवं तपोनिष्ठ नारी थी। प्रब्रज्या ग्रहण के पूर्व उसने अपने मन को एकाग्र कर लिया था। वह इन्द्रियों की दासी नहीं थी, इन्द्रियाँ उसकी दासी थीं। प्रज्ञा द्वारा उसे यह ज्ञात हो गया कि उसकी ऐहिक लीला अतिशीघ्र समाप्त होने वाली थी। अपनी मृत्यु की सूचना भगवान को देना उसे औचित्यपूर्ण लगा।

भगवान भिक्षुओं को धर्म-कथा सुनाकर हाथ-पैर धोकर एक शिलासन पर बैठे थे। अभिवादन करके यशोधरा ने सात बार परिक्रमा कर एक ओर खड़ी हो गई।

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

भगवान ने उससे प्रश्न किया, "यशोधरा! क्या तुझे कुछ कहना है?"

"भन्ते! हाँ।"

"तो कहो?"

"भगवान। अब मेरी आयु का अठहत्तरवां वर्ष चल रहा है।"

"यशोधरा! मुझे ज्ञात है।"

"धन्यवाद।"

भगवान ने पुनः यशोधरा से पूछा, "क्या तुम जानती हो कि इस समय मेरी उम्र क्या है?"

"हाँ! भगवान! अब आप अस्सी वर्ष में प्रविष्ट हो चुके हैं।"

भगवान बोले, "यशोधरा! तुम्हारे कथनानुसार मैं तुमसे दो वर्ष बड़ा हूँ।"

"हाँ।" कहकर वह कहने लगी, "भगवान! मुझे स्पष्ट रूप से यह आभास हो रहा है कि आज की रात्रि मेरे जीवन की अंतिम वेला है।"

यशोधरा का स्वर संयत एवं अटल था। भगवान तो अन्तर्यामी थे। जान गए यशोधरा प्रज्ञा-प्राप्त नारी है। माननी भूलकर भी मुझसे मरने की अनुमति नहीं माँगेगी। यह उसका जन्मसिद्ध अधिकार है। वह सामान्य भिक्षुणी नहीं अपितु नारी जाति का गौरव है।

भगवान स्वयं बोल उठे, "यशोधरा! तुम्हारा आकलन सही है। पर मुझसे तुम्हारी क्या अपेक्षा है?"

"भगवान! नर-नारी दोनों ही अपने-अपने भाग्य के निर्माता स्वयं हैं। मरते समय हर व्यक्ति का सत्कर्म ही उसके साथ रहता है। पति का सत्यकर्म न तो पत्नी के काम आता है और न ही पत्नी का सद्धर्म पति के काम आता है। नारी मैं अवश्य हूँ पर मोक्ष की अधिकारिणी हूँ। मुझे स्वतः अर्जित पुण्य से मोक्ष अवश्य मिलेगा। मैं आपकी शरण नहीं अपितु अपनी शरण आप हूँ।"

भगवान जान गए यशोधरा जीवन के सभी बंधनों को काट चुकी है। धर्म ही उसका सम्बल है। उसका भी यह अंतिम जन्म है। उन्होंने वास्तविक यथास्थिति का बोध कराते हुए कहा, "यशोधरा! सचमुच तुम सर्वज्ञ हो। अब तुम जन्म-मरण के चक्र से मुक्त हो गई हो। मैं भी तुम्हें मुक्त कर रहा हूँ। अब न तुम्हारा पुनर्जन्म होगा और न मेरा।"

"भगवान! आप मेरे जीवन के मार्ग-दर्शक रहे हैं। धर्म-बल मुझे आप द्वारा मिला है। अतः मैं आपके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करती हूँ।"

"यशोधरा! स्वीकार है।"

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

भगवान बुद्ध का राहुल को अंतिम उपदेश

भगवान बुद्ध एक जगह पर अधिक दिनों तक निवास नहीं करते थे। एक जगह से दूसरी जगह आते-जाते रहते थे। वह राजगृह के वेणुवन में विहार कर रहे थे। उस समय परिव्राजक राहुल अम्बलट्ठिका में बसेरा बनाये हुए थे। भगवान प्रातःकाल से लेकर दोपहर तक समाधिस्थ रहे। समाधि से उठकर कुछ समय विश्राम किए और अपराह्न होते ही अम्बलट्ठिका की ओर चल पड़े। अचानक राहुल की निगाह राजमार्ग की ओर पड़ गई। भगवान को अपने विहार की ओर आते देखकर उसके चित्त में ज्ञान और सम्मान की गंगा उमड़ पड़ी। उठकर कम्बल हाथ में उठाकर झाड़ा-पोंछा और एक शिला पर बिछा दिया। चरण-प्रक्षालन के लिए लोटे में पानी दरवाजे के पास रख दिया।

भगवान तीव्रगामी थे। अल्प प्रयास के बाद अम्बलट्ठिका में पहुँच गये। हाथ-पैर धोकर आसन ग्रहण किए। राहुल ने दोनों हाथ जोड़कर अभिवादन किया और परिक्रमा करके एक किनारे खड़ा हो गया।

भगवान ने कहा, "राहुल! अभी तुम नौजवान हो। तपस्वी तो अवश्य बन गए पर जीवन की व्यावहारिक बातों से अनभिज्ञ हो। नित्य-प्रति व्यवहार में आने वाली कुछ बातों का तुम्हें अभिज्ञान कराना चाहता हूँ।"

"भगवान! आप तो शास्ता हैं। अर्हत हैं। आप जो उपदेश देंगे, उसे मैं निष्ठा, लगन एवं श्रद्धा के साथ पूरा करूँगा।"

"राहुल! तुम सद्धर्म के अनुयायी हो। सत्यपालन ही इस सुधर्म का श्रेय और प्रेय है। अतः हँसी-मजाक में भी कभी असत्य-भाषण मत करना।"

"भगवान! आपने मुझे जो शिक्षा दी है, मैं आजीवन उसका पालन करूँगा।"

"राहुल! किसी कार्य को करने से पहले अच्छी तरह गुनो और धुनो और यदि वह तुम्हारी बुद्धि को उचित लगे तो उसे करो।"

"भगवान! आपकी सलाह अक्षरशः सत्य है। यदि कोई व्यक्ति बिना सोचे-विचारे काम करता है, उसे बाद में पछताना पड़ता है। कहा भी गया है—"बिना विचारे जो करे, सो पाछे पछताय।"

"राहुल! कार्य दो प्रकार के होते हैं—पहला आत्मकेन्द्रित एवं दूसरा परोपकारी। जिस कार्य को करने से दूसरों का अहित होता है, वह कष्टदायी होता है। अतः इस प्रकार के कार्य से बाज आना चाहिए। यदि तुम्हें ऐसा अहसास हो कि जिस काम की ओर तुम अग्रसर हो रहे हो, वह परमार्थी एवं कल्याणकारी है तो उसे लाग से करना चाहिए।"

"भगवान! कितना मानवीय है, आपका यह उपदेश।"

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

भगवान के मन में यह भाव उत्पन्न हुआ, क्यों न परम कल्याणी ब्रह्मविहार से राहुल को अवगत करा दूँ? बताने के पहले उन्होंने राहुल से पूछा, "राहुल! चार कल्याणकारी ब्रह्म-विहार हैं। क्या तुम उनका नित्यशः पालन करोगे?"

"हाँ। भगवान! उनको समझावें?"

राहुल। पहला है—मैत्री।

"भगवान! मैत्री-भावना से क्या लाभ होगा?"

"राहुल। नित्य-प्रति मैत्री-भावना का अभ्यास करने से दौरात्म्य का उपशमन होता है।"

"भगवान! और दूसरा?"

"राहुल! दूसरे को करुणा-भावना कहते हैं। करुणा का अभ्यास करने से झुँझलाहट और क्रोध का विनाश होता है।"

राहुल का विवेक जाग उठा। उसका मन श्रद्धा और विश्वास से आप्लावित हो उठा। वह बोला, "भगवान! करुणा-भाव मानवता का आभूषण है। यदि सबके मन में करुणा की गंगा प्रवहमान होने लगे तो चप्पा-चप्पा धरती पर प्रेम, सौहार्द और भाईचारे की बेलि लहलहा उठे।"

"राहुल! मुदिता ब्रह्मविहार का चौथा सोपान है। इसका अभ्यास करने से उद्वेग, असंतोष एवं अशान्ति का शमन होता और विरक्ति का प्रादुर्भाव होता है।"

"भगवान! बड़ा ही मंगलदायक है—मुदिता का भाव।"

"राहुल! चौथा ब्रह्म-विहार है—उपेक्षा। उपेक्षा-भावना का अभ्यास करने से मन की चंचलता काफूर हो जाती है।"

"भगवान! काम और राग से विमुक्ति का क्या उपाय है?"

"राहुल! चितैकाग्रता के ये दोनों भाव कट्टर दुश्मन हैं। इनको दूर करने का सबसे उत्तम उपाय है—शरीर के अशुभ रूप का चिन्तन है। जैसे, श्मशान पर शव पर टूटते हुए कौवों, सियारों, गिद्धों और कुत्तों को देखना है। शरीर क्या है? मांस, रक्त, अस्थिपंजर, पीप आदि का पुँज है शरीर।"

"भगवान! आपका स्पष्टीकरण कितना मंगलकारी है!"

"राहुल! अनित्य बोध होते ही अहंकार का विनाश हो जायेगा।"

"भगवान मुझे यह संप्रज्ञान हो गया कि जो कुछ उत्पन्न होने वाला है वह क्षणभंगुर है, नश्वर है। संसार की कोई वस्तु नित्य एवं शाश्वत नहीं है।"

भगवान ने उपदेश देकर राहुल के विमल-चक्षु को उन्मीलित कर दिया। हाथ-जोड़कर उसने भगवान का अभिनन्दन किया।

भगवान उठकर चारिका के लिए चल पड़े।

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

वैशाली का उद्धार एवं त्याग

राहुल को उपदेश देने के बाद भगवान राजगृह के गृध्रकूट पर्वत पर पहुँचे और वहाँ के शान्त वातावरण में विहार करने लगे। कुछ ही दिन ठहरे थे कि उसका मन अम्बलट्ठिका की उन्मुख हो गया। आनन्द से बोले, "चलो, अम्बलट्ठिका चलें।"

"भगवान! आपकी आज्ञा शिरोधार्य है।"

बस क्या? महान भिक्षु-संघ के साथ भगवान अम्बलट्ठिका पहुँच गये। वहाँ के भिक्षुओं एवं गृहस्थों ने भगवान तथा उनके साथ आए हुए भिक्षुओं का भव्य स्वागत किया। दो-चार दिन ठहरकर वहाँ के लोगों को भगवान अपनी विमल वाणी से धर्मामृत का पान कराते रहे। एक दिन प्रातःकाल स्नान-ध्यान से निवृत्त होकर बोले, "आनन्द! भिक्षु-संघ के साथ नालन्दा चलना है।"

"भगवान! मैं आपके आदेश से सबको सूचित कर तैयार होने को कहता हूँ।"

"ठीक है।"

नालन्दा पहुँचकर भगवान वहाँ कुछ समय विश्राम किये और वहाँ से पाटलीग्राम पहुँचे पर वहाँ भी अधिक दिनों तक नहीं रुके। वहाँ से चलकर कोटिग्राम पहुँचे। वहाँ के श्रेष्ठी भिक्षु-संघ के लिए भोज का आयोजन करते रहे। बदले में भगवान उन्हें सुधर्मों के गुणों से अवगत कराते रहे। दो-चार दिन के बाद भिक्षुसंघ को साथ लेकर चारिका करते-करते भगवान नादिका पहुँचे। वहाँ के रम्य परिवेश में भगवान कुछ समय विचरण किए और फिर वैशाली की ओर अग्रसर हुए।

दुर्भाग्य से उस समय वैशाली अकालग्रस्त था। राजा प्रजा दोनों इन्द्र के कोप के भाजन थे। उस समय इन्द्र को वर्षा का मालिक माना जाता था। अतः हर वर्ष में एक दिन सारे भारत के निवासी इन्द्रदेव की पूजा-अर्चना करते थे। इन्द्रदेव की पूजा-अर्चना में वैशाली-नरेश और उनकी पूजा से कोई त्रुटि हो गई थी। रुष्ट होकर इन्द्र ने वर्षा पर रोक लगा दी। अतः उनकी कुदृष्टि से वैशाली में भयंकर अकाल पड़ गया।

सारी पृथ्वी दुर्भिक्ष के चपेट में आ गई। ताल-तलैया, पोखरे, झील, कुएँ सभी सूख गए। धरती पर बड़ी-बड़ी दरारें पड़ गईं। फसलें, पेड़-पौधे सूख गए। पशु-पक्षी, कीड़े-मकोड़े मरने लगे। निर्धन काल के मुख में जाने लगे। अन्न और जल के अभाव में सर्वत्र त्राहि माम! त्राहि माम! का क्रन्दन सुनाई पड़ने लगा।

भगवान बुद्ध के आगमन का समाचार सुनकर वैशाली नरेश बिम्बिसार फूले न समाये। मन में विचार करने लगे कि भगवान के चरणों की धूलि जब वैशाली की भूमि मस्तक पर चढ़ायेगी तो इन्द्र अवश्य प्रसन्न होगा और हमारे राज्य में अविलम्ब वर्षा होने लगेगी! उन्होंने मंत्रि-परिषद की बैठक बुलाई।

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

वैशाली निगण्ठनाथ पुत्र (=महावीर की जन्मभूमि) होने के कारण जैनधर्म का गढ़ था। मंत्रिपरिषद में कुछ जैनी भी थे। जमकर भगवान के बुलावे के विषय में बहस हुई। पर अन्ततोगत्वा भगवान को निमंत्रण भेजने का प्रस्ताव पारित हो गया। बिम्बिसार ने राजपुरोहित के सुपुत्र एवं अपने मित्र महाली लिच्छवी को निमंत्रित करने के लिए भगवान के पास भेजा। दोनों भगवान के पास पहुँचे। अभिवादन करके परिक्रमा किये और हाथ जोड़कर एक ओर खड़े हो गए।

भगवान ने पूछा, "आप लोग किस हेतु यहाँ आए हैं?"

"भगवान! हम वैशाली नरेश बिम्बिसार के संदेशवाहक हैं।"

"महाराज बिम्बिसार का क्या संदेश है?"

"भगवान! यही कि आप भिक्षुसंघ सहित राजधानी पहुँचकर महाराज को कृतार्थ करें।"

भगवान ने कहा, "महाराज बिम्बिसार का निमंत्रण स्वीकार है।"

संदेशवाहक बोले, "भगवान! भिक्षुसंघ के साथ चलने की कृपा करें।"

"ठीक है।"

भिक्षुसंघ के साथ बुद्ध ने जैसे वज्जियों की धरती पर चरण रखा, इन्द्र प्रसन्न हो गये। घनघोर वर्षा होने लगी। जल के सभी स्रोत मूसलाधार वर्षा होने के कारण अल्पकाल में ही आकण्ठ लबालब हो गये।

चल-अचल सभी प्राणियों में आशा की लहर जाग उठी। वर्षा होने का सारा श्रेय वैशालीवासी भगवान को देने लगे। तहे दिल से लोगों ने भगवान, आनन्द तथा पाँच सौ भिक्षुओं का स्वागत किया। भगवान की महिमा से अभिभूत होकर पर धर्मावलम्बियों ने भगवान के सद्धर्म की ग्रहण किया।

चातुर्मास का आगमन होते ही भगवान स्वयं तो वेणुवन चल गए पर भिक्षुओं को उन्होंने वैशाली में ही वर्षावास का आदेश दिया।

वेणुवन में चातुर्मास बिताने के उपरान्त भगवान वैशाली वापस आ गए। एक दिन पूर्वाह्न-काल में वह चीवर धारण कर हाथ में भिक्षा पात्र लेकर वैशाली में भिक्षाटन के लिए प्रविष्ट हुए। भिक्षा-ग्रहण के बाद वह वैशाली को ध्यान से देखने लगे। आनन्द की निगाह उन पर पड़ गई।

आनन्द ने पूछा, "भगवान! इतना एकाग्रचित्त होकर वैशाली को क्यों देख रहे हैं?"

"आनन्द! मेरा अस्सीवाँ वर्ष चल रहा है न। यह वैशाली का अंतिम दर्शन है।"

विदाई-बेला में उन्होंने स्मृति के रूप में अपना भिक्षा-पात्र वैशाली के लोगों को भेंट कर दिया।

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

चुन्द की मेहमानी

वैशाली से बिदा होकर भगवान चारिका के लिए चल पड़े। चलते-चलते वह भण्डग्राम पहुँचे। वहाँ डेरा डालकर कुछ दिन तक विहार करते रहे। उसके बाद उन्होंने हट्ठी ग्राम में कुछ दिन विश्राम किया। दो-चार दिन ठहरकर वह भोग नगर पहुँच गये। वहाँ के लोगों ने उनका तथा भिक्षु-संघ का श्रद्धा के साथ भव्य स्वागत किया। भगवान वहाँ के लोगों को धर्मोपदेश देकर सत्य मार्ग पर चलने के लिये प्रेरणा देते रहे। वहाँ भी अधिक समय नहीं रुके। उन्हें तो घूम-घूमकर धर्म-देशना देनी थी। इसलिये चातुर्मास को छोड़कर कहीं अधिक समय तक नहीं रुकते थे।

एक दिन आनन्द से बोले, "भन्ते! पावा के लिए प्रस्थान करना है।"

"भगवान! बड़ा ही शुभ विचार है आपका। अभी भिक्षुओं को तैयार होने के लिए कहता हूँ।"

पावा में एक वैभवशाली स्वर्णकार था। अकूत धन और अचल सम्पत्ति थी उसके पास। गाँव से सटा हुआ उसके पास एक विशाल आम्रवन था। आम्रवन के पास ही एक लम्बा-चौड़ा और गहरा जलाशय था। उसका जल विमल, शीतल एवं पारदर्शी था।

भगवान भिक्षुओं के साथ आम्रवन में पहुँचे। वहाँ का शान्त एवं रम्य परिवेश उन्हें भा गया। मुड़कर आनन्द से बोले, "आयुष्मान! यह भव्य स्थान ठहरने योग्य है।"

आनन्द बोला, "भगवान! शान्त वातावरण भी है और पीने तथा स्नान करने योग्य जलाशय भी है।"

"तो, भिक्षुओं से बोलो, यहीं डेरा डाल दें।"

"भगवान! आपके आदेश का तुरन्त पालन होगा।"

सभी भिक्षु धूल-धूसरित एवं थके मांदे थे। सामान किनारे पर रखकर जलाशय में कूद पड़े। तरो-ताजा होकर बाहर आये और अपना-अपना चीवर सुखाने लगे।

आम्रवन में भगवान के ठहरने की भनक जैसे ही चुन्द के कानों में पड़ी, उसने नौकरों को कूँड़ा, भरुका, पत्तल, लाई, चूड़ा और गुड़ लेकर जलाशय पर चलने का आदेश दिया। आगे-आगे चुन्द और पीछे-पीछे सामान लेकर नौकर। भगवान के पास जाकर चुन्द ने उनका अभिवादन किया और एक ओर खड़ा होकर नौकरों को आदेश दिया, "नौकरो! भिक्षुओं के लिए आसन बिछा दो और रस तैयार करो।"

आदेश की देरी थी। आसन लग गया। शरबत तैयार हो गया।

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

चुन्द ने हाथ जोड़कर निवेदन किया, "भगवान! भिक्षुओं सहित जलपान ग्रहण करें। 'तथास्तु।' कहकर भगवान भिक्षुओं के साथ आसन पर बैठ गए। लाई, चूड़ा चर्वण कर सभी लोग रसपान करने लगे।"

अल्पाहार के बाद भगवान ने भिक्षुओं को धर्मोपदेश दिया। एकाग्रचित्त से चुन्द ने भी धर्मोपदेश सुना। अविलम्ब वह श्रोतापन्न हो गया। उसके मन में दान एवं आतिथ्य-सत्कार का भाव जाग उठा।

हाथ जोड़कर चुन्द बोला, "भगवान! कल आप भिक्षुसंघ के साथ हमारे घर पर भोजन करें।"

भगवान बोले, "चुन्द! तुम एक श्रद्धालु एवं विश्वसनीय सद्गृहस्थ हो। तुम्हारा भोज-निमंत्रण स्वीकार है।"

चुन्द के हृदय में आनन्द की हिलोरें तरंगित होने लगीं। आनन-फानन में घर पहुँचा। नौकरों-चाकरों को फल, सब्जी, दूध, दही, घी आदि खरीदने के लिए बाजार भेजा।

उस समय गृहस्थों की तरह भिक्षु भी सूकर का मांस बड़े चाव से खाते थे। अतः चिक को भेजकर सूकर के छौने का मांस मँगवाया। हलवाई मिठाइयाँ बनाने लगे, रसोइये खीर, पूड़ी और पकवान तैयार करने लगे। बावर्ची पाकशाला में सूकर-मद्दव पकाने लगा।

भोजन तैयार होने के बाद चुन्द का सेवक भिक्षुसंघ के पास बैठे हुए भगवान से बोला, "भोजन तैयार है। भिक्षु-संघ के साथ स्वामी के घर पर चलकर भोजन करें।"

"चलो, आसन लगवाओ। हम सभी को लेकर आ रहे हैं।"

चीवर धारण कर, हाथ में भोजन-पात्र लेकर आगे-आगे भगवान और उनके पीछे-पीछे भिक्षु चुन्द के घर की ओर अग्रसर हुए।

चुन्द के द्वार पर पहुँचकर भगवान के साथ सभी भिक्षु हाथ-मुँह धोकर आसन पर बैठ गये। नौकरों के साथ चुन्द भी भगवान को भोजन परोसने लगा। बड़ा स्वादिष्ट भोजन था। 'सूकर-मद्दव' भगवान को अच्छा लगा।

भोजनोपरान्त भगवान ने चुन्द तथा उसके परिवार को धर्मोपदेश सुनाया और फिर वहाँ से उठकर आम्रवन की ओर चल पड़े।

'सूकर-मद्दव' भगवान के लिये कष्टकारी बन गया। भयंकर, उदर-पीड़ा होने लगी। मरोड़ के साथ-साथ रक्त-स्राव होने लगा। 'स्मृति सम्प्रजन के साथ भगवान ने असह्य पीड़ा को सहन किया।

जब कुछ स्वास्थ्य लाभ हुआ तो भगवान ने आनन्द से कहा, "आनन्द!

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

आम्रवन से तुरन्त कुशीनारा को प्रस्थान करो।"

"भगवान! आपकी आज्ञा से भिक्षु-संघ को अविलम्ब अवगत कराता हूँ।"

भिक्षु-संघ के साथ भगवान कुशीनारा की ओर चल पड़े।

शालवन में दो शाल वृक्षों के मध्य विश्राम

भगवान आगे-आगे और भिक्षुसंघ उनका अनुगमन कर रहा था। रक्तस्राव और उदर-पीड़ा के कारण भगवान बहुत निर्बल हो गए थे। थोड़ी भी दूर नहीं चल पाए थे कि थककर चूर हो गए। क्या करें? रोगग्रस्तता और वह भी पेट की, अपना प्रभाव थोड़े ही छोड़ती है। हार मानकर राजमार्ग से हटकर एक पेड़ की छाया तले बैठ गए।

आनन्द से बोले, "आनन्द! संघाटी बिछा दो, विश्राम करूँगा।"

"भगवान! घबड़ाएँ नहीं, अभी मैं जमीन पर संघाटी (बौद्ध भिक्षुओं का चीवर) बिछा देता हूँ।"

"आनन्द! शीघ्रता करो?"

"अच्छा।" कहकर आनन्द ने चीवर को चार बार चौपत कर जमीन पर बिछा दिया। उसके बाद भगवान से बोला, "भन्ते! आसन लग गया। उस पर विश्राम करने की कृपा करें।"

आसनासीन होने के बाद भगवान बोले, "आनन्द! प्यास से तालु सूखा जा रहा है। पानी पिलाओ?"

"भगवान्! सन्निकट काकुत्थ नदी है। बड़ा ही निर्मल और शीतल जल है उसका। आसानी से तट तक पहुँचा जा सकता है। चलें, हाथ-मुँह धोकर शीतल और स्वादिष्ट वारि से प्यास बुझाएँ।"

भगवान बोले, "आनन्द! निर्बल हो गया हूँ। नीचे उतरने की सामर्थ्य मुझमें नहीं है। क्या आस-पास कोई जलाशय नहीं है?"

"है तो अवश्य, भगवान! पर पानी मटमैला है उसका। अतः पीने योग्य नहीं है।"

"आनन्द! का बरखा·जब किरखी सुखानी? पानी जैसा भी हो, लाओ, पीऊँगा।"

"भगवान! अभी लाता हूँ।"

आनन्द जलाशय से पानी लाया और भगवान ने उसका पानी पीकर अपनी प्यास बुझाई। विश्राम थकावट दूर करने का सर्वोत्कृष्ट साधन है। कुछ समय विश्राम करने के बाद भगवान के शरीर में स्फूर्ति आ गई। वह उठकर काकुत्थ नदी

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

की ओर चल पड़े। सारा भिक्षुसंघ उनके साथ-साथ काकुत्थ के तट पर पहुँच गया।

अचानक भगवान के मुँह से निकल पड़ा, "आनन्द! सचमुच काकुत्थ का जल शीलत, निर्मल एवं पारदर्शी है।"

आनन्द बोला, "भगवान! यह नदी सदानीरा है।"

भगवान ने भिक्षुओं से कहा, "भिक्षुओ! देखते क्या हो? पानी में कूद पड़ो और शरीर को मलमल कर नहाओ।"

अक्लमन्द को इशारा काफी! सभी भिक्षु नदी में कूद पड़े। तैर-तैर कर काया शीतल किए। भगवान भी पानी में प्रविष्ट हुए और खूब नहाए। बाद में शीतल जल का पान कर बाहर निकल आए। भिक्षु भी उनका अनुसरण किए।

आम्रवन पहुँचकर भगवान ने कहा, "भिक्षुओ! धूप में अपने-अपने चीवर सुख लो और विश्राम करो। मैं भी विश्राम कर रहा हूँ।"

थोड़ी देर विश्राम करने के बाद भगवान उठ गए और भिक्षुओं को चलने का आदेश दिए।

आनन्द बोला, "भगवान! कहाँ चलना है?"

"आनन्द! हिरण्यवती नदी के दूसरे किनारे पर कुसीनारा का उपवन है। वहाँ मल्लों का शालवन है। बड़ा ही रम्य, शान्त एवं शीतल स्थान है वह। शीघ्र वहाँ के लिए प्रस्थान करो।"

"भगवान! नेतृत्व करें। हम आपका अनुसरण करेंगे।"

भिक्षुओं के साथ भगवान हिरण्यवती के दूसरे किनारे पर पहुँच गए। शालवन में भगवान ने जोड़े शाल के वृक्षों के बीच जगह देखी। जगह उन्हें भा गई। आनन्द से बोले, "आनन्द! दोनों शाल वृक्षों के बीच जो जगह है, उसी पर संघाटी बिछा दो। यही मेरी मृत्यु-स्थल बनेगी। यहीं मैं विश्राम करूँगा।"

आनन-फानन में संघाटी बिछ गई और भगवान उस पर पसर गए।

सुभद्र को दीक्षा

कुशीनारा में एक परिब्राजक भी ठहरा हुआ था। नाम था उसका सुभद्र। जैसे ही उसे यह पता चला कि आज रात के पिछले पहर भगवान बुद्ध का महानिर्वाण हो जाएगा। उसके मन में एक ज्वलन्त प्रश्न जागा कि कौन श्रमण है और कौन श्रमण नहीं है। इसका निराकरण वह भगवान से करवाना चाहता था। ढूँढ़ते-ढूँढ़ते वह मल्लों के शालवन पहुँचा। बाहर आनन्द मिला। सुभद्र ने उससे निवेदन किया, "आनन्द! मुझे भगवान के दर्शन करा दो।"

आनन्द बोला, "सुभद्र! संभव नहीं है। भगवान कष्ट में हैं। उनके विश्राम

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

में बाधा मत डालो।"

सुभद्र ने दूसरी बार ही नहीं अपितु तीसरी बार भी यही निवेदन किया पर आनन्द ने उसे भगवान से मिलने की अनुमति नहीं दी। भगवान दोनों के वार्तालाप को सुन रहे थे। करुणा के सागर तो थे ही। बोले, "आनन्द! सुभद्र का मन संशय के मायाजाल में पड़कर बवण्डर की तरह चक्कर खा रहा है। उसका शंका-निवारण होना आवश्यक है। भेज दो, उसे मेरे पास।"

आनन्द बोला, "सुभद्र! भगवान तुम्हें बुला रहे हैं। अन्दर जाओ।"

सुभद्र अन्दर गया। अभिवादन कर उनका कुशल क्षेम पूछकर एक ओर बैठ गया।

भगवान ने कहा, "सुभद्र। जो पूछना है, पूछो।"

"भगवान! पूर्ण काश्यप, मक्खली गोशाल, अजित केश कम्बली, पकुधकच्चायन, संजय, वेलट्ठी-पुत्र तथा निगुण्ठ-नाथ पुत्र आदि परिब्राजकों में कौन से लोगों ने आपसे सत्य-ज्ञान प्राप्त किया है और कौन से लोग नहीं। उनमें से कौन श्रमण है और कौन नहीं?"

"सुभद्र! भ्रमजाल में मत पड़ो। एकाग्रचित हो जाओ। मैं तुमको धर्मोपदेश दे रहा हूं। ध्यान से सुनो?"

सुभद्र बोला, "भगवान! ध्यानस्थ हूँ। धर्म-देशना दें।"

"सुभद्र! जिस मत में आर्य अष्टांगिक मार्ग नहीं है, उसमें कोई भी श्रमण नहीं है। हमारा धर्म-विनय (=मत) अष्टांगिक मार्ग है। अतः हमारे धर्म में श्रोतापन्न भी हैं, श्रमण भी हैं, सुकृतागामी भी हैं, अनागामी भी हैं और अर्हत भी हैं। यदि हमारे धर्म में सम्यक जीवी होंगे तो इस धरती पर सदैव अर्हत मिलेगा।"

सुभद्र बोला, "भगवान! कितने वर्षों से आप सद्धर्म-पक्ष ग्रहण किये हुए हैं?"

"सुभद्र! लगभग इक्यावन वर्ष से।"

सुभद्र बोला, "अद्भुत है श्रमण गौतम, अद्भुत है श्रमण गौतम। आपने सुधर्म का ज्ञान करवाकर मुझे विमल चक्षु प्रदान किया है। अतः मैं बुद्ध, धर्म और संघ की शरण ग्रहण करता हूँ।"

सुभद्र के दृढ़ संकल्प एवं निश्चय को सुनकर भगवान ने आनन्द से कहा, "आनन्द! सुभद्र को संघ में प्रविष्ट कर लो।"

"भगवान। आपकी आज्ञा का अनुपालन होगा।"

सुभद्र की खुशी का ठिकाना न रहा। बोला, "आनन्द! भगवान ने स्वयं अपने हाथों आपको दीक्षा दी है। कितने भाग्यशाली हैं आप!"

"सुभद्र! तुम्हारे बारे में भी यही सत्य है।"

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

अन्तिम वेला में आनन्द को कुछ निर्देश

आनन्द भगवान बुद्ध के पास बैठा हुआ था। वह भगवान का रात-दिन का साथी था। भगवान ने कहा, "मैं तुम्हें सत्य से अवगत कराना चाहता हूँ। यद्यपि विपश्यना के द्वारा तुमने यथागत ज्ञान का अनुभव कर लिया है फिर भी अन्तिम समय में मैं पुनः दुहरा रहा हूँ। यदि तुम्हारे मन में कोई पश्न हो तो पूछो।"

"भगवान! भारतवर्ष ही नहीं अपितु सारा संसार इस चक्कर में पड़ा हुआ है कि ईश्वर और आत्मा अजर-अमर हैं। क्या आत्मा सचमुच अजर, अमर, अक्लेद्य और अनित्य है?"

"आनन्द! जब ईश्वर ही अमर नहीं है तो आत्मा के होने का प्रश्न ही कहाँ उठता है। आत्मा जैसी कोई नित्य वस्तु नहीं है। आत्मा नहीं बल्कि चेतना का एक प्रवाह है जो सदा नष्ट होते तथा न पैदा होते चेतना बिन्दुओं का धारा मात्र है। धारा में एकत्व ख्याल हो सकता है।"

"भगवान! निर्वाण क्या है?"

"आनन्द! निर्वाण वह अवस्था है जिसमें चेतना प्रवाह निरुद्ध हो जाते हैं।"

"भगवान! आपके विचारों से मैं शत-प्रतिशत सहमत हूँ।"

"भगवान! आपके मोक्ष के बाद मेरा मार्गदर्शन कौन करेगा?"

"आनन्द! मेरी अनुपस्थिति में मेरे द्वारा पढ़ाया और सिखाया गया धर्म-विनय ही तुम्हारा शास्त्ता होगा।"

"भगवान! क्या शिष्टाचार के लिए पारस्परिक संबोधन की प्रथा ज्यों की त्यों बरकरार रहनी चाहिए?"

"नहीं, आनन्द! वयोवृद्ध भिक्षु छोटे भिक्षु का नाम लेकर या आवुसो कहकर पुकार सकता है पर छोटी उम्र का भिक्षु बड़े भिक्षु को या तो उसका गोत्र लेकर पुकारे या भन्ते कहे।"

"भगवान! छन्न अविनीत एवं जिद्दी है। संघ के लिए वह बहुत बड़ी समस्या है। उसे कैसे सुधारा जाये?"

"आनन्द! मेरे बाद उसे ब्रह्मदण्ड मिलना चाहिए।"

"भगवान! ब्रह्मदण्ड से आपका क्या अभिप्राय है?"

"आनन्द! मेरे कहने का मतलब यह है कि उसे पारस्परिक विचार-विनिमय का अवसर न प्रदान किया जावै।"

"भगवान! सभी भिक्षुओं का आपके सुधर्म पर अटल विश्वास एवं श्रद्धा है। अब आप उन्हें कुछ उपदेश दें।"

"आनन्द! अति श्लाघ्यनीय है तुम्हारा विचार।"

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

भगवान ने अपने धर्म के अनुगामियों से कहा, "भिक्षुओ! मैं तुम लोगों को याद दिलाता हूँ कि सभी संस्कार अनित्य है। आलस्य का परित्याग कर अभीष्ट प्राप्ति के लिए प्रयत्न करते रहो।"

महानिर्वाण

भगवान बुद्ध को महानिर्वाण-काल का पूर्वाभास हो गया। अन्तरंग साथी आनन्द ही तो था। महानिर्वाण की ओर संकेत करते हुए उससे बोले, "आनन्द! महानिर्वाण दस्तक दे रहा है।"

"भगवान! आपका महानिर्वाण कहाँ होगा?"

"यहीं, जहाँ संघाटी पर विश्राम कर रहा हूँ।"

"भगवान! लोक-कल्याण के लिए कुछ दिन और जीने की कृपा करें।"

"नहीं, आनन्द! अस्सी वर्ष का हो गया हूँ। अन्तिम समय आ गया है। आज तक महाकाल को कौन टाल सका है।"

प्रिय का महाप्रस्थान केवल सामान्य व्यक्ति को ही नहीं अपितु महाविपक्षियों के मन को भी दहला देता है। आनन्द शोकाभिभूत हो गया। भगवान का नैकट्य छोड़कर दूर चला गया। आँखों से अश्रुपात होने लगा।

अपने पास आनन्द को न देखकर भगवान ने भिक्षुओं से पूछा आनन्द कहाँ है?

एक भिक्षु बोला, "भगवान! स्थविर आनन्द दूर खड़े होकर रो रहे हैं।"

"भिक्षु! उसे शीघ्र बुला लाओ।"

"अच्छा, भगवान!"

वह भिक्षु आनन्द को बुला लाया। आनन्द लौटकर भगवान के पास बैठ गया।

भगवान बोले, "आनन्द। जगत-लीला बड़ी विचित्र है। विवाह के बाद जैसे एक दुल्हन माता-पिता और प्रियजनों से बिछुड़कर ससुराल चली जाती है वैसे जीवन-धारा शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर में प्रविष्ट हो जाती है। सम्बन्ध बनता भी रहता है और टूटता भी रहता है। कोई भी सम्बन्ध स्थिर नहीं होता।"

आनन्द बोला, "भगवान! आपके सत्य-विश्लेषण से मेरे मन पर जो शोक का आवरण पड़ गया था, विदीर्ण हो गया।"

"आनन्द! बड़ी से बड़ी उपलब्धियाँ दृढ़ प्रयत्न और सतत अभ्यास से प्राप्त होती हैं। प्रयास करते रहो। तुम्हें भी आस्रवों से मुक्ति मिलेगी।"

"भगवान! आपके अनुदेश का पालन करूँगा।"

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

"आनन्द! तुम मानवीय गरिमा से युक्त हो। तुमसे मिलकर प्रत्येक व्यक्ति का मन उसी प्रकार खिल उठता है जैसे प्रातःकालीन सूर्य-रश्मियों के स्पर्श से कमल खिल उठता है। तुम्हें देखकर हर एक व्यक्ति आनन्द-विभोर हो उठता है। तुम्हारी वाणी भी प्रियतर है। पर, तुम्हारा मौन अच्छा नहीं लगता।"

"भगवान! एक निवेदन करना चाहता हूँ।"

"कहो।"

"भगवान! चम्पा, राजगृह, श्रावस्ती, साकेत, कौशाम्बी तथा वाराणसी जैसे बड़े नगरों में महानिर्वाण करें।"

"आनन्द! कुशीनारा किसी समय महाराज महासुदर्शन की राजधानी था। राजधानी का नाम था केशवती। मैं यहीं अमृतत्व को प्राप्त करूँगा।"

"भगवान! आपकी इच्छा।"

"आनन्द! प्रकृति का कितना बड़ा चमत्कार है! मेरा जन्म भी शाल वृक्ष की छाया तले हुआ और महानिर्वाण भी दो शाल वृक्षों के मध्य हो रहा है।"

प्रकृति तेरी लीला
कहियो
कहत न जाय।

आनन्द ने पूछा, "भगवान! और कोई आदेश?"

"हाँ। कुशीनारा के मल्लों को सूचित करवा दो कि तथागत का महानिर्वाण आज रात के तीसरे पहर होगा।"

वैशाख पूर्णिमा थी। सारी प्रकृति धवल चाँदनी में नहा रही थी। रात का तीसरा पहर आया। तथागत का महानिर्वाण हो गया। महानिर्वाण ईसा पूर्व 483 में हुआ।

भगवान के परिनिर्वाण काल का समाचार सुनते ही कुशीनारा के सभी मल्ल परिवार सहित उनके पार्थिव शरीर का दर्शन करने लिए एकत्र हो गये। भीड़ का वारापार नहीं था। अतः आनन्द के निर्देशानुसार परिवार का प्रधान नश्वर शरीर के पास आता और चरणों की वन्दना करके चल देता था।

जब दर्शनार्थियों की भीड़ छँट गई तब कुशीनारा के प्रमुख मल्लों ने कहा, "आनन्द! तथागत के पार्थिव शरीर की अंत्येष्टि श्रमणों की रीति-रिवाज के अनुसार होनी चाहिए। अंतिम संस्कार के लिए जो भी करणीय हो, हमें समझाएँ।"

"मल्लो! तथागत का अंतिम संस्कार महाराजाओं की तरह होना चाहिए। पहले उनके पार्थिव शरीर को नये कपड़े से लपेटा जाये। फिर उसे ऊन और रुई से लपेटा जाये। तदोपरान्त उसे पाँच सौ बार नये कपड़े में लपेटा जाये।"

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

मल्लों ने कहा, "स्थविर आनन्द! आपका सुझाव प्रशंसनीय है पर तथागत का दर्शन करने के लिए दूर-दराज से लोग आयेंगे। अश्वारोही नौजवान कस्बों और नगरों में जा-जाकर डुग्गी पिटवाकर आम जनता को तथागत के परिनिर्वाण का संदेश दे रहे हैं। अंतिम दर्शन की प्रक्रिया कई दिनों तक चलेगी। अतः बड़ा सवाल यह है कि शव को छः दिन तक कैसे सुरक्षित रखा जाये?"

आनन्द बोला, "मल्लो! एक बड़ा लोहे का कड़ाहा लाओ। उसे तेल से लबालव भर दो। लाश को तेल भरे कड़ाह में सावधानी से रख दो। ऊपर से उसे लोहे के ढक्कन से ढक दो। दर्शनार्थी आते-जाते रहें। कई दिन लाश सुरक्षित रहेगी।"

मल्ल बोले, "स्थविर आनन्द! कितने दूरदर्शी और अनुभवी हैं आप—लाश के चारों ओर भिक्षु और मल्ल बैठे हुए हैं। डरकर गिद्ध, चील, सियार, कुत्ते आदि पास नहीं फटकेंगे।

मल्लों ने आनन्द के निर्देश का कड़ाई से पालन किया। अंतिम संस्कार तक तथागत के शरीर को नये कपड़े, ऊन, रुई से सजा-धजाकर तेल भरे कड़ाह में रख दिये। दर्शनार्थी आते और दर्शन करके चले जाते। छः दिनों तक जनता फूल, माला, इत्र, सुगंधियाँ आदि लाश पर चढ़ाती रही। कुछ लोग नाच-गाकर, ढोल, मृदंग, नगाड़ा तुरही बजा-बजाकर भगवान के प्रति आदर-सत्कार प्रकट करते रहे।

सातवें दिन मल्लों की चैत्य-भूमि में मुकुट-बंधन नाम की जगह थी। मल्लों के आदमी वहाँ जाकर चन्दन की चिता सजा दिए।

मल्लों के आठ प्रमुख मल्ल मूड़ मुड़ाकर कुशीनारा के पावन जल में स्नान किए और नये कपड़े धारण किये। कड़ाहा से शव को निकाल कर अर्थी पर रखे और कंधे पर उठाकर मुकुट-बंधन पहुँच गये। चिता तो तैयार ही थी। लाश को चिता पर रखकर कई मन गाय का घी ऊपर से उड़ेल दिया गया। आग लगते ही चिता धधक उठी। दो घंटे में नश्वर शरीर भस्म होकर राख में परिणत हो गया।

अस्थि-बँटवारा

जब चिताग्नि शीतल हो गई तो मल्लों ने अस्थि-अवशेष को एक स्वर्णकलश में भरकर ऊपर से उस पर ढक्कन लगा दिया। कुशीनारा के मल्ल वीरता एवं युद्ध-कौशल के लिए प्रख्यात थे। मुखिया के आदेशानुसार कुछ मल्ल नौजवान भाला, तलवार और तीर-कमान से लैश होकर फूल-कलश की रखवाली करने लगे। श्रद्धालु लोग अस्थि-कलश पर फूलमाला, रोरी, अबीर चढ़ाकर, चन्दन की लकड़ी और धूप जलाकर अपनी श्रद्धा और भक्ति प्रकट करने लगे। इस प्रकार रात-दिन

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

भगवान बुद्ध के अस्थि-अवशेष की पूजा अर्चना होने लगी।

जब भगवान के पार्थिव शरीर के दाह-संस्कार का संदेश मगधराज अजातशत्रु, वैशाली के लिच्छवियों, कपिलवस्तु के शाक्यों, अहकप्य के वल्लियों, रामगाम के वल्लियों एवं पावा के मल्लों के पास पहुँचा तो वे अविलम्ब अपने-अपने दूतों को कुशीनारा के मुकुट-बंधन नामक स्थान पर भेज दिए। उक्त स्थान पर पहुँचकर वे अस्थि-अवशेष में अपने-अपने मालिक का हिस्सा माँगने लगे। वेठ द्वीप का एक ब्राह्मण भी अस्थि-अवशेष में अपना हिस्सा जताने लगा।

अस्थि-अवशेष में अधिक लोगों की माँग सुनकर कुशीनारा के मल्ल ताव में आ गए। सीना तानकर घोषणा कर दिये, "कुशीनारा का शाल उपवन एवं मुकुटबन्धन जहाँ क्रमशः भगवान का परिनिर्वाण एवं पार्थिव शरीर का अग्निदाह हुआ है, हमारे राज्य की सीमा में पड़ता है। अतः भगवान के फूल पर केवल हमारा अधिकार है। अतः चिता-भस्म का एक कण भी किसी को नहीं मिलेगा।"

कलह बढ़ जाता, बात बिगड़ जाती, रक्त की धारा बह जाती। पर, सौभाग्य से वहाँ सुलझा हुआ एक समझौतावादी, समन्वयवादी एवं मानवतावादी ब्राह्मण आ पहुँचा नाम था उसका द्रोण। वह घेराबन्दी को तोड़कर जमाव के बीच में चला गया।

उच्च स्वर में बोला, "अस्थि-अवशेष के इच्छुक सज्जनो! क्या आप लोग मेरी मध्यस्थता स्वीकार कर सकते हैं?"

एक स्वर में सभी लोगों ने कहा, "द्रोण जी। आप एक सत्यनिष्ठ, शिष्ट, शीलवान, अपरिग्रही एवं न्यायप्रिय ब्राह्मण हैं। हम सभी आपकी मध्यस्थता सादर स्वीकार करते हैं।"

"तो, सज्जनो! एकाग्रचित्त से सुनो! सिद्धार्थ गौतम शास्ता होने के बाद बाल-वृद्ध, स्त्री-पुरुष, राजा-रंक, मालिक-दास, वाणिक-किसान सभी को यही शिक्षा देते रहे कि धैर्य धारण कर संयम एवं नियम के साथ पाँचों शीलों का पालन करते हुए सबका मंगल मनाओ। भाईचारे का प्रचार करो।"

द्रोण ब्राह्मण की औचित्यपूर्ण एवं सारगर्भित बातों को सुनकर सभी नरेश पानी-पानी हो गए। एक स्वर में बोले, "द्रोण। मानवों एवं देवों में भगवान सबसे बड़े थे। हमें उनके आचरण एवं गुणों को जीवन में धारण करना चाहिए। इससे हमारा भी कल्याण होगा और दूसरों का भी कल्याण होगा। उनकी अस्थियों के लिए लड़ना-झगड़ना उनका अपमान है। आप जो भी निर्णय करेंगे, हमें मान्य होगा।"

द्रोण बोला, "सज्जनों तीन बार प्रण करो।"

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

सभी लोग बोले, "द्रोण! आप हमारे सरपंच हैं। आपका निर्णय हमें मान्य है, मान्य है, मान्य है।"

अस्थि-अवशेषों को आठ हिस्सों में बराबर बाँटकर द्रोण बोला, "आठ जनपदों के गणमान्य प्रतिनिधि यहाँ विराजमान हैं। आगे आएँ और क्रमशः एक-एक हिस्सा ग्रहण कर अपने जनपद में स्तूप-निर्माण कर पूजा-अर्चना करें।"

कुशीनारा के मल्ल जितने बलवान थे उतने ही बड़े न्यायी भी थे।

उनका मुखिया बोल उठा, "भूदेव! यदि एक हिस्सा आप भी ग्रहण करें तो हमें अच्छा लगेगा।"

द्रोण बोला, "कुशीनारा के वीरो! अन्य लोगों को वितरित करने के बाद मैं अपना हिस्सा ग्रहण कर लूँगा।"

मल्ल बोले, "आपकी इच्छा।"

द्रोण जब आठ जनपदों के प्रतिनिधियों को अस्थियों का आठों हिस्सा बाँट चुका तब बोला, "सज्जनो। यदि अस्थि-कलश मुझे मिल जाये तो इस पर मैं भी स्तूप बनवाऊँगा।"

उपस्थित लोग बोल उठे, "तथास्तु।"

□□□

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham

CC-0. Lal Bahadur Shastri University, Delhi. Digitized by Sarvagya Sharada Peetham